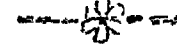
ओझा निबन्ध संग्रह

द्वितीय भाग



[साहित्य-सस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ के इतिहास और पुरातत्व-विभाग के तत्वावधान मे सम्पादित]

लेखक

स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

१९५४

साहित्य-संस्थान,

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

प्रकाशक:—
अध्यक्ष, साहित्य-संस्थान,
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण, मार्च १९५४
मूल्य ६)

मुद्रक—
व्यवस्थापक

प्रकाशकीय निवेदन

राजस्थान के प्राचीन साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास एव कला विषयक शोध–कार्य को राजस्थान के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये अत्यावश्यक और सर्वथा अनिवार्य समझ कर राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ,) उदयपुर ने वि० सं० १९९९ में "साहित्य-संस्थान" की स्थापना की. थी। संस्था की योजनानुसार साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण प्रवृतियाँ प्रारम्भ की गई थी जो अब बहुत कुछ विकसित और विस्तृत हो चुकी हैं, जैसे —

१. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, २. राजस्थान में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, ३. चारण साहित्य-संग्रह, ४. लोक साहित्य-संग्रह, ५. राजस्थानी कहावत माला, ६. महाकवि सूर्यमल आसन, ७. स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन, ८. पृथ्वीराज रासो सम्पादन कार्य, ९. अध्ययन गृह तथा संग्रहालय १०, इतिहास एवं पुरातत्व कार्य. ११. शोध–पत्रिका, एवं १२. राजस्थान–साहित्य आदि।

साहित्य-संस्थान की उपयुक्त विभिन्न प्रवृतियों में 'इतिहास एवं पुरातत्व कार्य' भी एक मुख्य और महत्व पूर्ण प्रवृत्ति है। इस प्रवत्ति विशेष के द्वारा राजस्थान और भारत की पुरातन इतिहास-सामग्री की शोध-खोज करना तथा इतिहास का कार्य करने वालों को यथा संभव साधन सुविधाये देकर आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करने का नम्र किन्तु आवश्यक प्रयत्न किया जाता है। स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने

को देख कर अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित निबन्ध सम्पादन और प्रकाशन के लिये प्रदान कर दिये थे। स्व० डॉ० ओझाजी भारतीय इतिहासकारों और पुरातत्व वेत्ताओं में प्रमुख और अग्रणी विद्वान थे। राजस्थान की अन्धकाराच्छन्न ऐतिहासिक सामग्री को सर्व प्रथम व्यापक रूप से प्रकाश मे लाने का महान श्रेय स्व० डॉ० ओझाजी को ही प्राप्त है। इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में भी स्व० डॉ० ओझाजी ने जो महत्वपूर्ण देन दी है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती।

स्व० डॉ० ओझाजी ने वर्षो के परिश्रम से तय्यार किये गये अपने ये निबन्ध जिस आशा और विश्वास के साथ 'साहित्य–संस्थान' को दे दिये थे उसके अनुकूल सस्थान कितना साबित होगा, यह तो भविष्य ही बता सकेगा, लेकिन इतना अवश्य हम यहाँ कह सकते हैं कि "साहित्य–संस्थान" की जो योजना और कल्पना है, यदि साधन–सुविधाओं के साथ विद्वानों का सहयोग जैसा आज मिल रहा है, आगे भी मिलता रहा तो निश्चय ही हम बहुत कुछ कर गुजरने की स्थिति मे होंगे। स्व० डॉ० ओझाजी के इन निबन्धों के सम्पादन कार्य मे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० रमाशंकर हेड ऑफ दि हिस्ट्री-डिपार्टमेंट, विश्व विद्यालय काशी ने हमारे विभागीय-सम्पादक का मार्ग प्रदर्शन कर जो उपयोगी और महत्वपूर्ण सुझाव दिये, उसके लिये संस्थान की ओर से मैं उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इसी प्रकार महाराज कुमार डॉ० रघुबीरसिंह सीतामऊ और डॉ० दशरथ शर्मा, दिल्ली ने समय समय पर जो महत्वपूर्ण सहायता दी है, उसके लिये मैं उनका आभारी हू, यद्यपि केवल आभार प्रदर्शित कर उक्त दोनों विद्वान महोदयों की साहित्य–संस्थान के विकास कार्य मे की गई और की जा रही सेवा के मूल्य को नहीं आंका जा सकता है, और सच तो यह है कि श्री महाराज कुमार और श्री दशरथजी साहित्य–संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, के उन प्रमुख विद्वान स्तम्भों में से प्रमुख है, जिनके बिना 'संस्थान' का काम चल ही नहीं सकता है। इसलिये इन दोनों विद्वान महोदयों के प्रति आभार प्रदर्शित करना केवल रस्म अदायगी मात्र ही है।

"ओझा–निबन्ध संग्रह" के सम्पादन ओर प्रकाशन कार्य में 'साहित्य-संस्थान' के 'इतिहास एवं पुरातत्व कार्य' के संयोजक श्री नाथूलालजी व्यास को जितना परिश्रम करना पड़ा है, उतना अन्य किसी को भी नहीं, श्री व्यासजी ने वर्षों तक

स्व० डॉ० गौरीशंकरजी ओझा के पास रहकर उनके काम में हाथ बटाया है, इसलिये श्री ओझाजी की दृष्टि मति को जितनी ये सही रूप में समझ सकते हैं, उतनी शायद ही अन्य कोई समझता हो। 'साहित्य-संस्थान' के इतिहास और पुरातत्व के काम को जमाने का प्रयत्न भी श्री व्यासजी का ही है। अत. उनको उनके परिश्रम के लिये धन्यवाद देकर या आभार प्रदर्शित कर उनकी सेवा के मूल्य को कम करने की मेरी इच्छा नहीं है। श्री व्यासजी का तो यह अपना कार्य ही है।

प्रस्तुत निबन्धों का प्रकाशन काफी समय पूर्व कर दिया जाना चाहिये था, परन्तु संस्थान की अपनी कठिनाइयों के कारण आज से पूर्व नहीं हो सका, और यदि अभी भी राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठ मन्त्री श्री भगवतीलालजी भट्ट ने राजस्थान सरकार से आवेदन-निवेदन और दौड धूप कर प्रकाशन सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया होता तो न जाने कब प्रस्तुत 'निबन्ध-संग्रह' प्रकाशित हो पाता, श्री भट्टजी की प्रेरणा और परिश्रम से ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका है।

अन्त मे मैं राजस्थान-सरकार, उसके मंत्री गण तथा शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने "ओझा निबन्ध-संग्रह" के प्रकाशन-कार्य के लिये आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन मे पूर्ण सहयोग दिया है। राजस्थान और भारत मे ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए काफी गुंजायश और अनिवार्य आवश्यकता है। यदि प्रान्तीय सरकारों का प्रोत्साहन पूर्ण उदार सहयोग निरन्तर मिलता रहे तो इतिहास की महत्वपूर्ण कमी आसानी से दूर की जा सकती है। ऐतिहासिक अनुसंधान के काम गंभीर और गवेषणा पूर्ण तो हैं ही, परन्तु अधिक व्यय और श्रम साध्य भी हैं, इस कारण बिना सरकारी सहायता के ऐसे काम अधिक परिणामकारी नहीं हो सकते हैं। आशा है, राजस्थान सरकार और उसका शिक्षा-सचिवालय ऐसी ऐतिहासिक सामग्री की शोध-खोज और प्रकाशन के लिये आवश्यक सहयोग और सहायता देता रहने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नही करेगा।

और विचारकों का मैं उनके सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हूं। यह तो उन्हीं का काम है, उन्हीं के लिये है। अतः उन्हें ही करना है।

साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर [राज०]

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

प्राक्कथन

स्वर्गीय विद्या-वाचस्पति श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के समस्त निबन्धों का यह विस्तृत "ओझा-निबन्ध सग्रह" राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान उदयपुर का एक महत्वपूर्ण एव अनूठा प्रकाशन-साहस है। स्वर्गीय ओझाजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व अपने समस्त निबन्ध 'साहित्य-संस्थान-विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को भेट दे दिये थे, और तभी से इस संग्रह के प्रकाशन की आतुर कामना बनी हुई थी, ओझाजी ने अपने समस्त निबन्ध राजस्थान, विश्व विद्यापीठ उदयपुर को इसलिये दिये थे कि वे इस संस्था को अपने ज्ञान की विरासता के लिये जहॉ पात्र मानते थे, वहॉ उनको इस बात की खुशी थी कि उदयपुर मे एक जन-प्रयत्न साध्य विश्व विद्यापीठ की स्थापना तथा विकास किया जा रहा है।

निस्संदेह "ओझा निबन्ध संग्रह" के प्रकाशन मे आवश्यकता से अधिक देर हुई है, इसके कई कारण है, सबसे बड़ा कारण इसके सम्पादन-क्रम का है, यह उचित ही था कि ओझाजी के समस्त लेखो के सम्पादन में भारत-प्रसिद्ध इतिहास-वेताओ का सहयोग प्राप्त किया जाय। यही अभिलाषा और प्रयत्न इस ग्रन्थ-रत्न के प्रकाशन की देरी का भी कारण बने, यह आभार मानना होगा कि ओझाजी के सुपुत्र श्री रामेश्वरलालजी ने हमारी इस समीचीन कठिनाई का अनुभव किया और आज दिन तक धैर्य रखा।

ओझाजी राजपूताना के इतिहास के एक भीमकाय अग्रणी थे, धुरन्धर तो वे थे ही, परन्तु राजपूताने की ऐतिहासिक संघर्ष-जर्जर मानवता के शताब्दियों तक के घटनाचक्र के एक व्यासकार भी थे। राजपूताने के अनेक ख्यात राज्य-वंशों-उसकी बिखरी एवं अनेक रण-भूमियों के ओझाजी विशिष्ट ज्ञाता थे। अद्वितीय इतिहासज्ञ

ओझाजी थे इसमें किसे सन्देह हो सकता है? इन सबके उपरान्त ओझाजी पन-घटों, मन्दिरों, धर्मशालाओं, खण्डहरों, गढ़ों, किलों और विजन स्थानों के मौन पाषाण शिलालेखों के महान् विद्यार्थी थे, भारत की प्राचीन लिपियाँ अपने सहज ही अन-जान अर्थ उनके सामने मानों स्वयं खोल कर रख देती थी, ताम्रपत्र, पट्टे-परवाने और रेकार्ड ओझाजी के लिये सहज पाठ्य थे। सच तो यह है कि इतिहास की प्रत्येक प्रकार की सामग्री ओझाजी की शिष्य थी। आचार्य गौरीशंकर ओझा अपने इसी विशाल ज्ञान के कारण इतिहास का एक मानव-पर्यायवाची हो गये हैं।

यह सही है कि ओझाजी ने एक अग्रदूत की भाँति इतिहास का प्रणयन किया है। वंशावलियों, घटना क्रमों और अन्य ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर राजपूताने के राज्य-वंशों को सामने रख कर उस मतिमान ने राजपूताने के इतिहास का शिवाला खड़ा किया है। परन्तु यह ओझा निबन्ध संग्रह प्रमाणित कर देगा कि ओझाजी ने भारतीय इतिहास की प्राचीन पग-डण्डियों, खडहरों, ताम्र पत्रों, और उनके विवादास्पद इतिहास-प्रसंगों एवं व्यक्तियों को अछूता नहीं छोड़ा है, परोक्षतः ओझा ने भारतीय प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास की कई मार्ग दिशाएँ खोली हैं, तथा कई प्रश्नों का उत्तर दिया है, एवं कई कसोटियाँ ओर प्रसंग कायम किये हैं। ओझा निबन्ध संग्रह के विषयों पर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होता है कि सूक्ष्म किन्तु विशाल इतिहास-नयन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय अतीत को एकाग्र होकर देख रहा है। रोमाञ्च और प्रेरणा इन लेखों से मिलती है. और भारतवर्ष की अतीत शताब्दियाँ अपने अनूठे और अचूक व्यक्तियों को हमें आज वर्तमान में. जीवन के चित्रों की भाँति भेंट देती है।

ओझा हमारे इतिहास का महान् ब्रह्मचारी है. और यही "ओझा-निबन्ध-संग्रह" का महत्व है।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ
पीठस्थविर अधिकरण
उदयपुर [राज०]

जनार्दनराय नागर
पीठस्थविर

प्रस्तावना

[श्री डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए०, डी० लिट्]

गुरुवर श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के निबन्ध संग्रह के लिए किसी विशेष प्रस्तावना की आवश्यकता न होते हुए भी मैं दो चार शब्द लिख कर साहित्य संस्थान के अध्यक्षजी के आदेश का पालन कर रहा हूँ। ओझाजी के नाम से हिन्दी साहित्य और भारतीय इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी परिचित है। जब विद्वानों के क्षेत्र में हिन्दी की इस समय से कहीं कम पूछ थी, ओझाजी ने अपने ग्रन्थों को हिन्दी मे लिखने का निश्चय कर अपनी दूरदर्शिता और देश भक्ति का परिचय दिया था। हिन्दी साहित्य के अनेक अङ्गों की श्रीवृद्धि इस महान् निश्चय का आनुसङ्गिक फल है।

निबन्ध संग्रह के दूसरे भाग में दो प्रकरण हैं। मुख्यतः पहले में हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले निबन्धों को रखा गया है। इनकी विचार विमर्शमयी शैली हिन्दी के लिये किसी समय नयी वस्तु थी। कई पुरानी स्थापनाओं का ओझाजी ने खण्डन किया किन्तु इनकी भाषा मे न कभी अशिष्टता आई और न इन्होंने पूर्व पक्ष को विपरीत रूप देने का प्रयत्न किया। सत्य की गवेषणा आपका मुख्य ध्येय था। सत्य को आवृत और विक्षिप्त करने वाली स्थापनाओं से आपकी सत्य प्रणयिनी कुशाग्र बुद्धि को स्वभावत कुछ क्लेश रहा होगा। संग्रह में 'अनन्द विक्रम सम्वत् की कल्पना' नाम का प्रबन्ध सर्व प्रथम रखा गया है। पण्ड्याजी ने रासो के सम्वतों को असंगत देखकर उनकी संगति बैठाने का किस तरह अनेक रूप से प्रयास किया, इसकी रोचक कथा ओझाजी के निबन्ध में वर्तमान है। यह सम्भव है कि ओझाजी स्वयं कुछ बातों को ध्यान में रख न सके हों, या समन्वयात्मक दृष्टि से देखने पर वे उसे कुछ अन्य रूप देते, किन्तु जिस रूप मे भी निबन्ध हमारे सामने

हुई हैं इसका दिग्दर्शन भी अनेक विद्वानों ने किया है रासो पर कुछ विवेचनात्मक पुस्तकें भी पिछले तीन चार साल मे प्रकाशित हुई हैं। इस तमाम नवीन सामग्री और रासो के पाँचों रूपान्तरों के आधार पर इस विषय का नये सिरे से मूल्याङ्कन आवश्यक है।

संग्रह का तीसरा लेख विमल प्रबन्ध और विमल पर है। इसमें अनेक कल्पित कथाओं का निराकरण करते हुए ओझाजी ने शिलालेखादि के आधार पर आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिर विमल वसही के निर्माता दण्डनायक विमल की सच्ची जीवनी दी है। शिल्पकला की दृष्टि से विमल वसही आबू का सबसे सुन्दर मन्दिर है। सैन्य सञ्चालन मे भी यह वस्तुपाल से शायद कुछ बढ कर ही रहा हो, किन्तु वस्तुपाल स्वयं कवि और कवियों का आश्रयदाता था, इसी कारण से उसे विमल से कहीं अधिक ख्याति मिली।

'बीसल दे रासो' का निर्माण काल ओझाजी ने संवत् १०७२ निश्चित किया है। किन्तु इससे अनेक विद्वानों को कुछ सन्देह है। जिन उदाहरणों को स्वय ओझाजी ने पृष्ठ १५२ पर प्रस्तुत किया है उनसे मिलान करने पर भी 'बीसल दे रासो' की भाषा पर्याप्त नवीन ठहरती है। इसे कुछ पुरानी ढूढाड़ी माने तो सम्भवतः अनुपयुक्त न हो। घटनावली इतिहास की दृष्टि से अधिकांश में असंगत है। देवड़े, सोनिगरे, बून्दी के हाडे आदि कुछ राजपूत जातियां संवत् १०७२ में उपस्थित या इतनी प्रसिद्ध भी न थी कि उनका वर्णन काव्य मे किया जा सके। वर्णित नगरों मे भी उस समय कई वर्तमान न थे। ओझाजी की यह स्थापना भी कि विग्रहराज तृतीय ने भोज की पुत्री राजमती से विवाह किया कुछ संदेहास्पद है। भोज का समकालीन चौहान राजा वीर्यराम था। उसके बाद उसका छोटा भाई चामुण्डराज गद्दी पर बैठा। चामुण्डराज का पुत्र दुर्लभराज मुसलमानों से लडता हुआ मारा गया। इसका छोटा भाई विग्रहराज परमार राजा उदयादित्य का समकालीन था। उसने उदयादित्य को गुजरात के कर्ण के विरुद्ध सहायता दी। इसलिये वह सम्वत् ११२० से ११५० के बीच मे वर्तमान रहा होगा। भोज अपनी मृत्यु के समय ४५ वर्ष तक राज्य कर चुका था। इसलिये संवत् १११२ में वह काफी वृद्ध रहा होगा, सवत् ११२० के बाद भी उसकी कोई ऐसी नव वयस्क पुत्री वर्तमान थी या नहीं – जो विग्रहराज तृतीय से विवाह कर सके? शायद उदयादित्य को ही विग्रहराज का श्वसुर मानने

से कुछ दोष का परिहार हो सके। नाल्ह जैसे परवर्ती कवि के लिये भोज के बन्धु उदयादित्य को ही भोज मान लेना कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु यह भी केवल अनुमान मात्र है। बीसलदेरासो के समय के निर्धारण के लिये अभी उसके समुचित सम्पादन की आवश्यकता है।

सग्रह के पॉचवें लेख में कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात का सारांश और उसका जायमी के पद्मावत से तुलनात्मक अध्ययन है। ओझाजी का अनुमान है कि पद्मिनी सभवत' सिंगोली के जागीरदार की पुत्री रही हो। यह असम्भव तो नहीं है, किन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पद्मावती की कथा पद्मावत से कहीं प्राचीन है। उसका पर्याप्त प्राचीन स्वरूप हम कल्कि पुराण में देख सकते हैं। उसमें भी पद्मावती सिहलदेश की राजकुमारी है, नायक उत्तर देशीय है और हीरामन का स्थान सर्वर तोते ने लिया है।

जटमल अच्छा कवि था। और उसके अनेक अन्य ग्रन्थ भी सूचित या प्रकाशित हो चुके हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इसका जटमल ग्रन्थावली के रूप में सम्पादन किया है।

सग्रह के दूसरे प्रकरण में इतिहास और पुरातत्व के लेख संग्रहीत है। यह ओझाजी का निजी विषय था, और इन की सामग्री प्राय इतनी ठोस है कि उस पर अँगुली तक उठाना कठिन है।

इस प्रकरण के पहले लेख में ओझाजी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि वि० सं० १५०० और उसके पीछे तक राणियों के जो नाम ख्यातों में दिये हुए हैं, वे बहुत विश्वास योग्य नही है।

दूसरा लेख भीमदेव के दानपत्र के विपय मे है। इसके संवत् ९३ को सह सवत् मान कर डॉ० फ्लीट ने अनुमान किया था कि वह चौलुक्य राज्य भीमदेव द्वितीय का दानपत्र है। ओझाजी ने भीमदेव प्रथम के प्रकाशित दानपत्रों के बल पर सिद्ध किया है कि यह दानपत्र वास्तव मे भीमदेव प्रथम का है और उसका सम्वत ९३ वास्तव में विक्रम सम्वत् १०९३ है।

तीसरे लेख में श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के आक्षेपो का उत्तर देते हुए पुनः यह स्थापना कीगई है कि दानपत्र का समय वि० स० १०९३ था।

चौथा लेख चित्तौड़ के किले पर गुजरात के सोलंकी राजाओं के अधिकार के विषय में है। इसकी दूसरी पंक्ति मे वि० सं० १२०७ के स्थान पर गलती से सं० ११०७ छप गया है। कुमारपाल ने सज्जन को चित्तौड़ का दण्डनायक बनाया। इसके नायक का उल्लेख केवल जैन ग्रंथों मे ही नहीं,स्वयं चित्तौड़ के एक शिलालेख मे भी वर्तमान है। शाकम्भरी और अजमेर के अधिश्वर और कुमार पाल के प्रबल शत्रु विग्रह राज चतुर्थ के हाथों सज्जन की मृत्यु हुई। चौहानों ने उसके सब हाथी हस्तगत किये और मेवाड़ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र अमर-गाङ्गेय को हटा कर पृथ्वीराज द्वितीय जब गद्दी पर बैठा तो उसने गुहिल वंश से सम्भवत: मैत्री की। पृथ्वीराज द्वितीय के उतराधिकारी सोमेश्वर और गुहिलराज सामन्तसिह को सोलंकी अजयपाल से युद्ध करना पड़ा, जिससे भी गुहिलों और चौहानों की तत्कालीन मैत्री सिद्ध होती है। कुछ समय के बाद मेवाड़ मे घरेलू झगड़ों के कारण सोलंकियों को चित्तौड़ पर अपना अधिकार जमाने का अवसर मिला।

ओझाजी ने यशोवर्मा के राज्य तक परमारों को चित्तौड़ का स्वामी माना है, सो भी प्रायः निश्चित है। जिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली से सिद्ध है कि परमार राजा नरवर्मा के समय चित्तौड़ उसके अधिकार मे था। यशोवर्मा, नरवर्मा का उतराधिकारी था।

चित्तौड़ पुन कब स्वतन्त्र हुआ, यह एक विचारणीय प्रश्न है। ओझाजी ने सामन्तसिह तक ही अपने विमर्श की समाप्ति कर इसका पूरा उतर नहीं दिया है किन्तु 'हम्मीर मद मर्दन', 'सुकृत संकीर्तन' और कीर्तिकौमुदी के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सोलकी भीमदेव द्वितीय के राज्य काल मे ही मेवाड़ फिर स्वतत्र हो गया। इल्तुत्मिश (सन् १२११–१२३६) ने जब मेवाड़ पर आक्रमण किया, उस समय वह स्वतन्त्र राज्य के रूप मे था।

द्वितीय प्रकरण का पांचवां लेख चौलुक्य राजा भीमदेव द्वितीय के सामन्त महाराजाधिराज अमृतपालदेव के सं० १२४२ के दानपत्र के विषय में है। यह मेवाड़ और डूंगरपुर राज्यो के इतिहासो के लिये विशेष उपयोगी है। इससे सिद्ध है कि मेवाड का राज्य खो देने पर कुछ समय के बाद सामन्तसिंह को अपना नया राज्य डूंगरपुर भी छोड़ना पड़ा और भीमदेव चोलुक्य ने कुछ समय के लिये वहां अपना अधिकार कर लिया। अमृतपालदेव इसी का सामन्त था। गुहिल सामन्तसिंह को हम पृथ्वीराज तृतीय का मित्र माने तो इस दान पत्र से सिद्ध है कि यह मैत्री भीमदेव द्वितीय के विरुद्ध कुछ विशेष कार्य कर सिद्ध न हुई। संवत् १२४४

से पूर्व भीमदेव द्वितीय और पृथ्वीराज तृतीय की, कुछ समय के संघर्ष के बाद सन्धि हो चुकी थी। शायद इस संघर्ष का मेवाड़ और बागड़ के राज्यों से भी कुछ संबन्ध रहा हो।

छठे लेख मे ओझाजी ने राज्याभिषेक के समय पृथ्वीराज चौहान की अवस्था का विचार किया है। अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध है कि पृथ्वीराज ने उस समय तक शैशवावस्था पार न की थी। खरतरगच्छ पट्टावली भी जो वास्तव मे सम सामयिक ग्रन्थ है (यद्यपि ओझाजी उसे ऐसा नहीं मानते) कहीं इस बात का निर्देश नहीं करती कि पृथ्वीराज की आयु संवत् १२३९ मे कुछ बहुत बड़ी थी। पृथ्वीराज ने या यों कहिये उसकी सेना ओर मन्त्रि मण्डल ने उस समय से कुछ पूर्व भद्दापक देश पर विजय प्राप्त की थी। भद्दापक की स्थिति कुछ संदिग्ध है। राजशेखर के अवतरणों से केवल हमें इतना ज्ञात है कि टक्कों और मरुदेशियों की तरह ये अपभ्रंश भाषी थे। पृथ्वीराज तृतीय के समय अजमेर, नागोर, हांसी, सरसा, दिल्ली आदि चौहानों के हाथ मे थे। भद्दाषक देश की स्थिति इनसे सूचित प्रान्त से बाहर रही होगी।

सातवां लेख राठौड़ों और गहरवारों के विषय मे है। ओझाजी ने सुपुष्ट प्रमाणों द्वारा इन दो राजपूत वंशों की भिन्नता सिद्ध की है। काठियावाड के गोहिल नाम का प्रबन्ध ओझाजी के उदयपुर के इतिहास मे भी प्रकाशित हो चुका है। ये गोहिल वास्तव मे मेवाड़ के गुहिल वंशी शालिवाहन के वंशज है ओर सूर्यवंशी हैं।

नवम लेख, एक परमार वंशीय दानपत्र के विषय में है। यह इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके बिना आबू के परमारों का इतिहास बहुत कुछ अपूर्ण था। 'राजस्थान क्षितिज' जैसे कम प्रचार के पत्र मे प्रकाशित होने के कारण यह लेख अब तक पूरी ख्याति न प्राप्त कर सका है।

श्री ओझा निबन्ध संग्रह के जो लेख मुद्रित होकर मेरे पास पहुँच चुके हैं मैंने सामान्यत: उनका निर्देश और कुछ मूल्यांकन किया है। संग्रह के कुछ टिप्पण मैं इसके प्रकाशन से पूर्व देख चुका हूँ। कुछ परिवर्तन भी यत्र तत्र मैंने किये हैं। सम्पादन-कार्य अधिकांश में मेरे परम श्रद्धेय मित्र और गुरुवर श्री ओझाजी के पुराने सहकारी श्री नाथूलालजी व्यास ने किया है। मेरा यह सौभाग्य है कि साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर ने मुझे भी इस पुनीत कार्य मे कुछ सहयोग देने का अवसर प्रदान किया है। स्वास्थ्याभाव और अवकाशाभाव से मैं कुछ विशेष न कर सका, इसका मुझे खेद है।

———

विषय सूचि

(द्वितीय भाग)

पृष्ठ संख्या

पहला प्रकरण—साहित्य

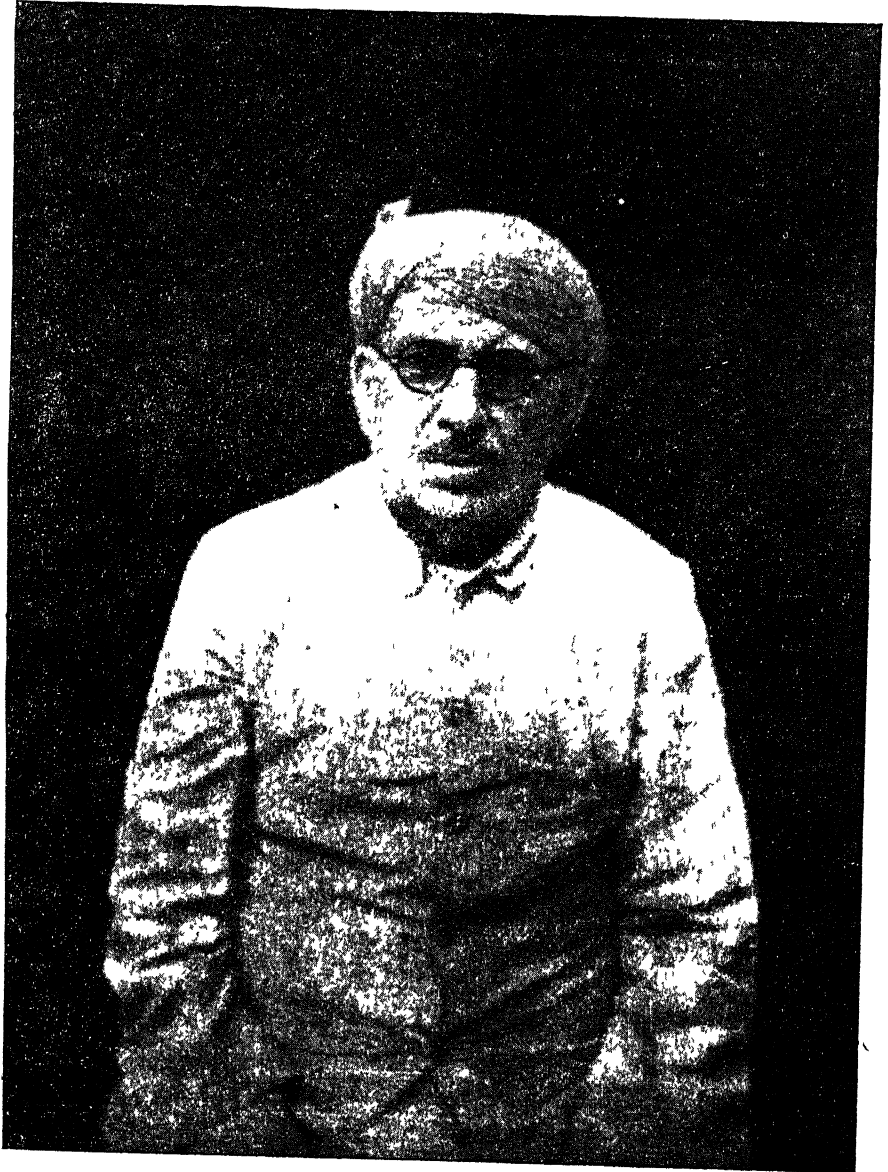
१. अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना — १
२. पृथ्वीराज रासौ का निर्माण काल — ७८
३. विमल प्रबन्ध और विमल — ११७
४. वीसलदेव रासो का निर्माण काल — १४६
५. कवि जटमल रचित गौरा बादल की बात — १५४

दूसरा प्रकरण—इतिहास और पुरातत्त्व

१. भाटों की ख्यातें और महाराणियों के नाम — १६८
२. डा. फ्लीट और भीमदेव का दान पत्र — १७४
३. भीमदेव के दान पत्र का समय — १७८
४. चित्तौड़ के किले पर गुजरात के सोलंकियों का अधिकार — १८६
५. चौलुक्य राजा भीमदेव (द्वितीय) के गुहिल वंशी सामन्त महाराजाधिराज अमृतपाल का वि. सं. १२४२ का दान पत्र — १६७
६. राज्याभिषेक के समय पृथ्वीराज चौहान की अवस्था — २१५
७. राठौर और गहरवार — २२२
८. काठियावाड़ के गोहिल — २३१
९. एक परमार वशीय दान पत्र — २३८
१०. मेवाड़ के शिलालेख और अमीशाह — २४७
११. शेरशाह सूर की राव मालदेव पर चढाई का कारण — २५८

तीसरा प्रकरण—विविध

१. सुदी और वदी — २७२
२. पद्मावत का सिंहलद्वीप



स्व० महामहोपाध्याय डॉ० श्री गौरीशङ्कर ओझा

ओझा निबन्ध संग्रह

दूसरा भाग

पहला प्रकरण-साहित्य

१ अनंद विक्रम संवत् की कल्पना

उदयपुर के कविराजा श्यामलदासजी ने मेवाड़ का इतिहास 'वीरविनोद' लिखते समय 'पृथ्वीराजरासे' की ऐतिहासिक दृष्टि से छान-बीन की। जब उन्होने उसमे दिए हुए संवतों तथा कई घटनाओ को अशुद्ध पाया, तब उन्होने उसको उतना प्राचीन न माना, जितना कि लोग उसको मानते चले आते थे। फिर ईस्वी सन् १८८६ मे उन्होने उसकी नवीनता के संबंध मे एक बड़ा लेख एशिआटिक सोसाइटी, बंगाल, के जर्नल (पत्रिका)[1] मे छपवाया और उसी का आशय हिंदी मे भी 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' के नाम से पुस्तकाकार प्रसिद्ध किया, जिससे पृथ्वीराजरासे के संबंध मे एक नई चर्चा खडी होगई। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने उसके विरुद्ध 'पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा' नामक छोटीसी पुस्तक ई० स० १८८७ के प्रारंभ मे छापी, जिसमे 'पृथ्वीराजरासे' के कर्ता चंदबरदाई का प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के समय में होना सिद्ध करने की बहुत कुछ चेष्टा, जिस तरह बन सकी, की, फिर उसी का अँग्रेजी अनुवाद एशिआटिक सोसाइटी बंगाल के पास भेजा परन्तु उक्त सोसाइटी ने उसे अपने जर्नल के योग्य न समझा और उसको उसमें स्थान न दिया। इस पर पंड्याजी ने उसे स्वतंत्र पुस्तकाकार छपवा कर वितरण किया। उस समय तक पंड्याजी और राजपूताना आदि के विद्वानो मे से किसी ने भी अनंद विक्रम संवत् का नाम तक नहीं सुना था।

---

१ बं० ए० सो० ज० ई० स० १८८६, हिस्सा तीसरा, पृ० ५-६५।

'पृथ्वीराजरासे' मे घटनाओ के जो संवत् दिए है, वे अशुद्ध है, यह बात कर्नल टॉड को मालूम थी, क्योकि उन्होने लिखा है कि-"हाड़ाओं (चौहानो की एक शाखा) की ख्याति मे [अष्टपाल] का संवत् ६८१ मिलता है (कर्नल टॉड ने १०८१ माना है) परन्तु किसी आश्चर्य जनक, तो भी एक सी, भूल के कारण सब चौहान जातियाँ अपने इतिहासो मे १०० वर्ष पहले के संवत् लिखती है, जैसे कि बीसलदेव के अनहिलपुर पाटन लेने का संवत् १०८६ के स्थान पर ६८६ दिया है। परन्तु इससे पृथ्वीराज के कवि चंद ने भी भूल खाई है और पृथ्वीराज का जन्म संवत १२१५ के स्थान मे १११५ होना लिखा है; और सब तरह संभव है कि यह अशुद्धि किसी कवि की अज्ञानता से हुई है [२]"।

पंड्याजी ने कर्नल टॉड का यह कथन अपनी 'पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा' मे उद्धृत किया[3] और आगे चल कर उसकी पुष्टि मे लिखा कि-"भाट और बड़वा लोग जो संवत् अपने लेखों मे लिखते हैं, उसमे और शास्त्रीय संवतो मे सौ १०० वर्ष का अन्तर है। अब मै यह विदित करूंगा कि मै किस तरह इन बड़वा भाटो के संवत् से परिज्ञात हुआ । ... इस ग्रंथ (पृथ्वीराजरासे) को राजपूताने मे सर्व-प्रिय और सर्वमान्य देख कर मुझे भी उसके क्रमश पढने और उसकी उत्तमता की परीक्षा करने की उत्कंठा हुई। जब कि मै कोटे मे था, मैंने उसका थोडा सा भाग, उस राज्य के उन प्रसिद्ध कविराज चंडीदानजी से पढा कि जिनके बराबर आज भी कोई चारण संस्कृत भाषा का विद्वान नही है। उसके पढ़ते ही मेरे अंत: करण मे एक नया प्रकाश हुआ और रासा मेरे मन के आकर्षण का केंद्र हुआ और मेरे मन के सब संदेह मिट गये। तदनन्तर बूंदी और अन्य स्थलो के चारण और भाट कवियो के आगे उन मे लिखे संवतो के विषय में उन कविराजजी से मेरा एक बडा वाद हुआ। उसका सारांश यह हुआ कि चंडीदानजी ने सप्रमाण यह सिद्ध किया कि जब विक्रमी संवत् प्रारंभ हुआ था, तब वह संवत् नही कहलाता था, किंतु शक कहलाता था, परन्तु जब शालीवाहन ने विक्रम को बंधुआ करके मार डाला और अपना संवत् चलाना और स्थापन करना चाहा, तब

---

२ टॉड राजस्थान (कलकत्ते का छपा, अंग्रेजी), जि० २, पृ० ५०० टिप्पण।

३ पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा, पृ० २०।

सर्व साधारण प्रजा मे बड़ा कोलाहल हुआ। शालिवाहन ने अपने संवत् के चलाने का दृढ़ प्रयत्न किया, परन्तु जब उसने यह देखा कि विक्रम के शक को बंद करके मेरा शक नही चलेगा, क्योकि प्रजा उसका पक्ष नही छोडती और विक्रम को वचन भी दे दिया है अर्थात् जब विक्रम बदीगृह मे था; तब उससे कहा गया था कि जो तू चाहता हो वह मांग कि उसने यह याचना कियी कि मेरा शक सर्व साधारण प्रजा के व्यवहार मे से बद न किया जावे।......

"तदनंतर शालिवाहन ने आज्ञा कियी कि उसका संवत् तो "शक" करके और विक्रम का "सवत्" करके व्यवहार मे प्रचलित रहै। पंडित और ज्योतिषियो ने तो जो आज्ञा दियी गई थी उसे स्वीकार कियी; परतु विक्रम के याचको अर्थात् आज जो चारण भाट राव और बडवा आदि नाम से प्रसिद्ध है, उनके पुरुषाओ ने इस बात को अस्वीकार करके विक्रम की मृत्यु के दिन से अपना एक पृथक् **विक्रमी शक** माना। इन दोनों संवतो मे सौ १०० वर्षों का अन्तर है। **शालिवाहन के शक और शास्त्रीय विक्रमी** संवत् मे १३५ वर्षों का अंतर है। इन दोनो के अन्तरो मे जो अन्तर है, उसका कारण यह है कि भाट और वंशावली लिखने वालो ने विक्रम की सब वय केवल १०० सौ वर्ष की ही मानी है। यह लोग यह नही मानते कि विक्रम ने १३५ वर्ष राज्य किया और न उसके राजगद्दी पर बैठने के पहिले भी कुछ वय का होना जो संभव है, वह मानते है। इस प्रकार विक्रम के उस समय से दो संवत् प्रारभ हुवे, उनमे से जो पंडित और ज्योतिषियो ने स्वीकार किया वह "शास्त्रीय विक्रमी संवत्" कहलाया और दूसरा जो भाटो और वंश लिखने वालो ने माना वह "भाटो का संवत्" करके कहलाया। आदि में ही इस तरह का मतान्तर होगया और दो थोक इतने शीघ्र उत्पन्न हो गये। भाटो ने अपने शक;का प्रयोग अपने लेखो मे किया। यह भाटो का शक दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह के राज्य समय तक कुछ अच्छा प्रचार को प्राप्त रहा और उसका शास्त्रीय **विक्रमी संवत्** से जो अन्तर है, उसका कारण भी उस समय तक कुछ लोगो को परिज्ञात रहा। तदनन्तर इसका प्रचार तो प्रति दिन घटता गया और शास्त्रीय विक्रमी सवत् का ऐसा बढ़ता गया कि आज इसका नाम सुनते ही लोग आश्चर्य सा करते है। इस भाटो के शक का दूसरे राजपूतो के इतिहास मे प्रवेश होने की अपेक्षा चौहान शाखा के राजपूतो

मे अधिक प्रयोग होना देखने मे आता है। यदि हम रासे में लिखे संवतो की भाटो के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अन्तर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमी संवत् से बराबर मिल जाते है और जो हम रासे के बनने के पहले और पिछले संवतो को भी इसी प्रकार से जांचें तो हम हमारी उक्ति की सत्यता के विषय मे तुरन्त स्पष्ट हो जाते है। जैसे उदाहरण के लिये देखो कि हाडा राजपुत्रों की वंशावली लिखने वाले हाडाओ के मूल पुरुष आस्थिपाल जी का असेर प्राप्त करने का संवत् ६८२ (१०८१) और बीसलदेवजी का अनहलपुर पट्टन प्राप्त करने का सं० ६८६ (१०८६) वर्णन करते है। भाटो का यह एक अपना पृथ क् शक मानना सत्य और योग्य है; क्यो कि किसी का नाम वंशावली मे मृत्यु होने पर ही लिखा जाता है [४]"।

इस प्रकार पंड्याजी ने कर्नल टॉड की बताई हुई चौहानो के इतिहासों (ख्यातो) और रासे मे १०० वर्ष की अशुद्धि पर से विक्रम का एक नया संवत् खड़ा कर दिया, जिसका नाम उन्होंने 'भाटो का संवत्' या 'भटायत सवत' रक्खा और साथ मे यह भी मान लिया कि उसमे १०० वर्ष जोड़ने से शास्त्रीय विक्रम संवत् ठीक मिल जाता है। इस सबंध मे विक्रम की आयु १३५ वर्ष की होने, शालिवाहन के विक्रम को बद्दी करने आदि की कल्पनाएँ अपना खंडन अपने आप करती करती है। पृथ्वीराजरासे और चौहानो की ख्यातो म जो थोड़े से संवत् मिलते है, वे शुद्ध है या नही, इसकी जाँच के साधन उस समय जैसे चाहिएँ वैसे उपस्थित न होने के कारण पंड्याजी को उक्त कथन मे विशेष आपत्ति मालूम नहीं हुई; परंतु एक आपत्ति उनके लिए अवश्य उपस्थिति थी, जो पृथ्वीराजजी की मृ यु का सवत् था। चौहानो की ख्यातो और पृथ्वीराजरासे मे तो उनकी मृत्यु का शुद्ध संवत नही मिलता; परन्तु मुसलमानो की लिखी हुई तवारीखो से यह निर्णय हो चुका था कि तराइन की लडाई, जिसमे पृथ्वीराज की शहाबुद्दीन गोरी से हार हुई और वे कैद होकर मारे गए, हिजरी सन ५८७ (वि० स० १२४८-४६) मे हुई थी। पृथ्वीराजरासे मे पृथ्वीराज का जन्म सं० १११५ मे होना और ४३ वर्ष की उम्र

४ वही, पृ० ४३-४५। अवतरण में पड्याजी की लेखन शैली ज्यों की त्यो रक्खी है, जो पद मोटे अक्षरो में हैं उनके नीचे पंड्याजी की पुस्तक में रेखा खिंची हुई है।

पाना लिखा है। यदि पंड्याजी के कथन के अनुसार इस संवत् ११११५ को भटायत संवत माने तो उनका देहान्त वि० सं० (१००+११११५+४३) १२५८ मे होना मानना पड़ता है। यह संवत् उनके देहान्त के ठीक संवत् (१२४८-४९) से ९ या १० वर्ष पीछे आता है। इस अन्तर को मिटाने के लिये पंड्याजी को पृथ्वीराज रासे के पृथ्वीराज का जन्म संवत् सूचित करने वाले दोहे के 'एकादस सै पंचदह' पद मे आए पचदह (पंचदश) शब्द का अर्थ 'पॉच,' करने की खैचतान मे 'दह' (दश) शब्द का अर्थ 'दस' न कर 'शून्य' करने की आवश्यकता हुई और उसके सम्बन्ध मे यह लिखना पड़ा कि "हमारे इस कहने की सत्यता के विषय मे कोई यह शंका करे कि "दश" से शून्य का क्यो ग्रहण किया जाता है। तो उसके उत्तर मे हम कहते हैं कि यहॉ "दश" शब्द के यह दोनो (दस और शून्य) अर्थ हो सकते है और इन दोनो मे से किसी एक अर्थ का प्रयोग करना कवि के अधिकार की बात है[५]"। 'दस' का अर्थ 'शून्य' होता है वा नही इसका निर्णय करना हम इस समय तो पाठको के विचार पर ही छोड़ते है। यहाँ पंड्याजी की प्रथम संरक्षा का, जिसकी भूमिका ता० १-१-१८८७ ई० को लिखी गई थी, शोध समाप्त हुआ और तारीख तक तो 'अनन्द विक्रम संवत्' की कल्पना का प्रादुर्भाव भी नही हुआ था।

पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा छपवा कर उसी साल (ई० सं०१८८७ मे) पंड्याजी ने 'पृथ्वीराजरासे' का आदि पर्व छपवाना प्रारम्भ किया। ऊपर हम लिख चुके हैं कि पृथ्वीराजरासे और चौहानो की ख्यातो मे दिए हुए संवतों मे से केवल पृथ्वीराज की मृत्यु का निश्चित संवत् फारसी तवारीखों से पहले मालूम हुआ था। उसमे भी रासे के उक्त संवत् को पंड्याजी के कथनानुसार भटायत संवत् मानने पर भी ९-१० वर्ष का अन्तर रह जाता है। इसी से पंड्याजी को 'दह' (दश) का अर्थ 'शून्य' और 'पचदह' (पंचदश) का 'पॉच' मानना पड़ा, जो उनको भी खटकता था। ई० सं० १८८८ के एप्रिल महीने मे पंड्याजी से पहली बार मेरा मिलना उदयपुर मे हुआ। उस समय मैने उनसे 'पंचदह' (पंचदश) का अर्थ पॉच करने के लिये प्रमाण बतलाने की प्रार्थना की, जिस पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि 'चद के गूढ आशय को समझने वाले विरले ही चारण

---

५ वही, पृ० ४६-४७

भाट रह गए हैं, तुम लोगो को ऐसे गूढ़ार्थ समझाने के लिये समय चाहिए, कभी समय मिलने पर मैं तुम्हें यह अच्छी तरह समझाऊँगा।' इस उत्तर से न तो मुझे संतोष हुआ और न पंड्याजी की खटक मिटी। फिर पंड्याजी को 'पंचदह' का अर्थ 'पाँच' न कर किसी और तरह से उक्त संगति मिलाने की आवश्यकता हुई। रासे मे दिए पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी दोहे–

एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद ।
तिहिं रिपु जय पुर हरन कौ, भय प्रिथिराज नरिंद ॥

मे अनंद शब्द देख कर उस पर की टिप्पणी मे उन्होने 'नंद' का अर्थ 'नव', 'अनंद' का नव रहित, और उस पर से फिर 'नव रहित सौ' कर पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी रासे के संवत् मे जो ९–१० वर्ष का अन्तर आता था, उसको मिटाने का यत्न किया और टिप्पण मे लिखा कि–

"अब आप चंद की संवत् सम्बन्धी कठिनता को इस प्रकार समझने का प्रयत्न करें कि प्रथम तो रूपक ३५५ (एकादस सै पचदह०) को बहुत ध्यान देकर पढ़े। तदनंतर उसका अन्वय कर के यह तुर्थ करे कि (एकादस सै पंचदह) ग्यारह से पंद्रह (अनंद विक्रम साकअथवा विक्रम अनन्द साक) अनन्द विक्रम का साक अथवा विक्रम का अनन्द साक (तिहि) कि जिसमे (रिपुजय शत्रुओ को विजय करने (पुर हरन) और नगर अथवा देशान्तरों को हरन करने (कौ) को (प्रिथिराज नरिंद) पृथ्वीराज नामक नरेंद्र (भय) उत्पन्न हुए।"

"तदनन्तर इसके प्रत्येक शब्द और वाक्य खड पर सूक्ष्म दृष्टि देकर अन्वेषण करे कि उसमे चंद की (Archaic style) प्राचीन गूढ भाषा होने के कारण संवत् सम्बंधी कठिनता कहाँ और क्या घुसी हुई है। कवि के प्रतिकूल नही, किन्तु अनुकूल विचार करने पर आपकी न्याय बुद्धि झट खोज कर पकड लावेगी कि-विक्रम साक अनंद वाक्य खंड मे-और उसमे भी अनन्द शब्द मे हम लोगो को इतने वर्षो से गडबड़ा कर भ्रमा रखने वाली चद की लाघवता भरी हुई है। इतनी जड़ हाथ मे आय जाने पर अनन्द शब्द के अर्थ की गहराई को ध्यान मे लेकर पक्षपात रहित विचार से निश्चय कीजिये कि यहाँ चंद ने उसका क्या अर्थ माना है। निदान आपको समझ पड़ेगा कि अनंद शब्द का अर्थ यहाँ चंद ने केवल नव-संख्या

रहित–का रक्खा है अर्थात् अ=रहित और नंद=नव ९। अब विक्रम साक अनन्द को क्रम से अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक करके उसका अर्थ करो कि नव रहित विक्रम का शक अथवा विक्रम का नव रहित शक अर्थात् १००-९=९०। ९१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उसके राज्य के ९०। ९१ से प्रारम्भ हुआ है। यही थोड़ी सी और उत्प्रेक्षा (!) करके यह भी समझ लीजिए कि हमारे देश के ज्योतिषी लोग जो सैंकड़ो वर्षों से यह कहते चले आते हैं और आज भी वृद्ध लोग कहते हैं कि विक्रम के दो संवत थे कि जिनमें से एक तो अब तक प्रचलित है और दूसरा कुछ समय तक प्रचलित रह कर अब अप्रचलित हो गया है। और हमने भी जो कुछ इसके विषय की विशेष दंत कथा कोटा राज्य के विद्वान कविराज श्री चडीदानजी से सुनी थी, वह इस महाकाव्य की संरक्षा मे जैसी कि तैसी लिख दियी है और दूसरा अनंद जो इस महाकाव्य मे प्रयोग मे आया है। इसी के साथ इतना यहाँ का यहाँ और भी अन्वेषण कर लीजिये कि हमारे शोध के अनुसार जा ९०। ९१ वष का अन्तर उक्त दोनो सवतो का प्रत्यक्ष हुआ है, उसके अनुसार इस महाकाव्य के संवत मिलते है कि नहीं। पाठकों को विशेष श्रम न पड़े, अतएव हम स्वयम् नीचे के कोष्टक मे कुछ संवतो को सिद्ध कर दिखाते है:—

"पृथ्वीराज के अनंद संवतों का कोष्टक"

पृथ्वीराजजी का	रासे मे लिखे अनन्द संवत् मे	सनन्द और अनन्द संवतो का अंतर जोडो	यह सनन्द संवत् हुआ
जन्म	१११५	९०।९१	१२०५।६
दिल्ली गोद जाना	११२२	९०।९१	१२१२।३
कैमास जुद्ध	११४०	९०।९१	१२३०।१
कन्नौज जाना	११५१	९०।९१	१२४१।२
अंतिम लडाई	११५८	९०।९१	१२४८।९

... "चंद के प्रयोग किये हुए विक्रम के अनन्द संवत् का प्रचार बारहवें शतक की राजकीय व्यवहार की लिखावटो मे भी हमको प्राप्त हुआ है, अर्थात् हमको शोध करते करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वीराजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के कुछ पट्टे परवाने मिले है कि उनके

संवत् भी इस महाकाव्य मे लिखे संवतों से ठीक ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानो मे जो मुहर छाप है, उसमे उनके राज्याभिषेक का सं० ११२२ लिखा है। इन परवानों के प्रतिरूप अर्थात् Photo हमने हमारी ओर से एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को भेट करने के लिये हमारे स्वदेशी परम मित्र प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर रायबहादुर राजा राजेन्द्रलालजी ऐल० ऐल० डी०, सी० आई० ई० के पास भेजे हैं और उनके अक्रित्रिम (!) होने के विषय मे हमारे परस्पर बहुत कुछ पत्र व्यवहार हुआ है। यदि हमारे राजा साहब अकस्मात् रोगग्रस्त न हो गये होते तो वे हमारे इस बड़े परिश्रम से प्राप्त किये हुए प्राचीन लेखो को अपने विचार सहित पुरातत्ववेत्ताओ की मंडली मे प्रवेश किये होते। इन परवानो के अतिरिक्त हमको और भी कई एक प्रमाण प्राप्त होने की दृढाशा है कि जिनको हम उस समय विद्वत् मंडली मे प्रवेश करेंगे कि जब कोई विद्वान् उनको कृत्रिम होने का दोष देगा। देखिये जोधपुर राज्य के काल-निरूपक राजा जयचंदजी को संवत ११३२ मे और शिवजी और सेतरामजी को सं० ११६८ में और जयपुर राज्यवाले पज्जूनजी को सं० ११२७ में होना आज तक निः संदेह मानते है और यह संवत भी हमारे अन्वेषण किये हुए ६१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनद विक्रमी होकर सप्रतकाल के शोध हुए समय से मिल जाते है। इसके अतिरिक्त रावल समरसीजी की जिन प्रशस्तियो को हमारे मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने अपने अनुमान को सिद्ध करने को प्रमाण मे मानी है, वह भी एक आंतरीय हिसाब से indirectly हमारे शोध किये इस अनन्द सवत को और उसके प्रचार को पुष्ट और सिद्ध करती है[६]।

इस प्रकार पंड्याजी ने जिस संवत को 'पृथ्वीराज रासे की प्रथमसंरक्षा' में 'भाटो का संवत' या 'भटायत' सवत माना था उसी का नाम उन्होने 'अनदविक्रम संवत' रक्खा और पहले 'भटायत' सवत मे १०० जोड़ने से प्रचलित विक्रम सवत-का मिलजाना बतलाया था, उसको पलट कर 'अनदविक्रम-सवत' मे ६० या ६१ मिलाने से प्रचलित विक्रम सवत का बनना मान लिया। साथ मे यह भी मान

---

६ पृथ्वीराजरासा, आदि पर्व, पृ० १३९–४४।

लिया कि ऐसा करने से पृथ्वीराज रासे तथा चौहानो की ख्यातो मे दिए हुए सब, संवत् उन घटनाओ के शुद्ध संवतो से मिल जाते हैं और जोधपुर तथा जयपुर के राजाओ के जो संवत मिलते हैं, वे भी मिल जाते है और मेवाड़ के रावल समरसिंहजी की प्रशस्तियां भी उक्त संवत (अनद) की पुष्टि करती है। पंड्याजी के इस कथन की तथा उनके ऊपर उल्लेख किए हुए पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानो की जॉच कुछ आगे चल कर करेंगे, जिससे स्पष्ट हो जायगा कि उनका कथन कहाँ तक मानने योग्य है।

इसके पीछे बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई ई०स०१९०० की हिंदी की हस्तलिखित पुस्तको की खोज की रिपोर्ट, पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त के अवतरणो आदि सहित, अंग्रेजी मे छापी, जिसमे पृथ्वीराज-रासे की तीन पुस्तको के नोटिस है और अंत मे पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाइ के जिन पट्टे परवानो का उल्लेख पड्याजी ने किया था, उनकी प्रति-कृतियो (फोटो) सहित नकले भी दी हैं। उसकी अंग्रेजी भूमिका में, जिसका हिंदी अनुवाद जयपुर के 'समालोचक' नामक हिंदी मासिक पुस्तक की अक्टूबर, नवंबर, दिसम्बर सन १९०४ ई० की सम्मिलित संख्या मे भी छपा है, बाबूजी ने पंड्याजी के कथन को समर्थन करते हुए लिखा कि "चंद ने अपने ग्रन्थ में ९०-९१ वर्ष की लगातार भूल की है। परन्तु किसी बात का एकसा होना भूल नहीं कहलाता, इसलिये इस ९० वर्ष के समअन्तर के लिये कोई न कोई कारण अवश्य होगा। .. .. पृथाबाई का विवाह समरसी से अवश्य हुआ था, लोग इसके विरुद्ध चाहे कुछ ही क्यो न कहे। परवानो का जो प्रमाण यहाँ दिया गया है वह बहुत ही पुष्ट जान पड़ता है और इसके विरुद्ध जो कुछ अनुमान किया जाय उस सबको हलका बना देता है।... .. ..परवानो और पत्रो की सत्यता मे कोई संदेह नही किया जा सकता, क्योकि उनमें से एक दूसरे की पुष्टि करता है ....। यह बात ऊपर बहुत ही स्पष्ट करदी गई है कि चंद की तिथियाँ कल्पित नही हैं और न उसके महाकाव्य मे दी हुई घटनाएँ ही मिथ्या है वरन वे सब सत्य है। यह भी साबित किया जा चुका है कि ईसवी सन की बारहवी शताब्दी के लगभग राजपूताने मे दो संवत् प्रचलित थे, एक तो सनंद विक्रम सवत जो ईसवी सन् के ५७ वर्ष पहले चलाया गया था और दूसरा अनंद विक्रम सवत् जो सनंद विक्रम

संवत् मे से ६२ वर्ष घटाकर गिना जाता था[७] ।"

बाबूजी की वह रिपोर्ट यूरोप मे पहुंची और वहाँ के विद्वानो ने उसे पढ़कर नए, 'अनंद विक्रम संवत' को इतिहास के लिये बड़े महत्व की बात माना। अनेक भाषाओं के विद्वान् प्रसिद्ध डाक्टर सर जी० ग्रिअर्सन ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के विद्वान् विंसेंट स्मिथ को इस संवत् की सूचना दी, जिस पर उन्होने अपने 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास' मे पंड्याजी अथवा बाबूजी का उल्लेख न करके लिखा कि "सर जी० ग्रिअर्सन मुझे सूचित करते है कि नंदवशी राजा ब्राह्मणों कट्टर दुश्मन माने गए है और इसीलिये उनका राजत्व काल बारहवीं शताब्दी मे चद कवि ने काल गणना मे से निकाल दिया। उसने विक्रम के अनद (नंद रहित) संवत् का प्रयोग किया है जो प्रचलित गणना से ९० या ९१ वर्ष पीछे है। 'नंद' शब्द का 'नव' के अर्थ मे व्यवहृत होना पाया जाता है (१००-९=९१)[८]" आगे चल कर उसी विद्वान् ने लिखा है कि "रासे मे काल गणना की जो भूले मानी जाती है उनका समाधान इस शोध से होजाता है कि ग्रंथकर्ता ने अनंद विक्रम संवत् का प्रयोग किया है [जिसका प्रारंभ] अनुमान से ई० स० ३३ से है और इसीलिये वह प्रचलित सनंद विक्रम सम्वत से, जो ई० स० पूर्व ५८-५७ से [प्रारभ हुआ था] ९०-१ वर्ष पीछे है। अनंद और सनंद शब्दो का अर्थ क्रमशः 'नंद-रहित' और 'नंद सहित' होता है और नद ९० या ९१ का सूचक माना जाता है, परन्तु नव नदो के कारण वह शब्द वास्तव मे ९ का सूचक है[९] ।"

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई हस्तलिखित हिंदी पुस्तको की खोज की ई० स० १९०० से १९०३ तक की बाबू श्यामसुन्दरदासजी की अंग्रेजी रिपोर्ट की समालोचना करते समय डाक्टर रूडोल्फ होर्नलजी ने ई० स० १९०६ के रायल-एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल मे लिखा कि "पृथ्वीराज रासे के प्रामाणिक होने को जो एक समय बिना किसी सन्देह के माना जाता था, पहले पहल कविराजा श्यामलदास ने ई० स० १८८६ मे बगाल एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल

७ एन्युअल् रिपोर्ट ऑन दि सर्च फॉर हिंदी मैनुस क्रिप्ट्स १९०० ई०,पृ० ८-१० और 'समालोचक' (हिंदी का मासिक पत्र), भाग ३, पृ० १६५-७१ ।

८ विंसेंटस्मिथ; अर्लीहिस्टरी ऑफ इंडिया त संस्करण पृ० ४२ टिप्पन २ ।

९ वही ।

मे छपवाए लेख में अस्वीकार किया और तब से उस पर बहुत कुछ सन्देह होरहा है; जिसका मुख्य कारण उसके संवतो का अशुद्ध होना है। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का तलाश किया हुआ उसका समाधान उसी पुस्तक (रासे) से मिलता है। चंद बरदाई अपने आदि पर्व मे बतलाता है कि उसके संवत् प्रचलित विक्रम संवत् मे नही ; किंतु पृथ्वीराज के ग्रहण किए हुए उसके प्रकारांतर अनंद विक्रम संवत् मे दिए गए है। इस नाम के लिए कई तर्क बतलाए गए है जिनमे से एक भी पूर्ण संतोषदायक नही है, तो भी वास्तव में जो ठीक प्रतीत होता है वह मि० श्यामसुन्दरदास का यह कथन है कि यदि अनद विक्रम सवत् का प्रारंभ प्रचलित विक्रम संवत् से, जो पहिचान के लिये सनंद विक्रम संवत् कहा जाता है, ९०-९१ वर्ष पीछे माना जावे तो रासे के सब संवत् शुद्ध मिल जाते है, इसलिये यह सिद्ध होता है कि अनंद विक्रम संवत् मे ३३ जोडने से ई० स० बन जाता है[१०]।"

ई० स० १९१३ मे डॉक्टर बार्नेट ने 'एंटिक्विटीज ऑफ इंडिआ' नामक पुस्तक प्रसिद्ध की, जिसमे अनंद विक्रम संवत् का प्रारंभ ई० स० ३३ से होना माना है[११]।

विक्रम संवत् १९६७ में मिश्रबंधुओ ने हिंदी नवरत्न' नामक उत्तम पुस्तक लिखी, जिसमे चंद बरदाई के चरित्र के प्रसग मे रासे के सवतों के विषय में लिखा है कि "सन् सवतों का गड़बड अधिक सदेह का कारण हो सकता था, पर भाग्य वश विचार करने से वह भी निर्मूल ठहरता है। चंद के दिए संवतों मे घटनाओं का काल अटकलपच्चू नहीं लिखा है, वरन् इतिहास द्वारा जाने हुए समय से चंद के कहे हुए संवत् सदा ९० वर्ष कम पडते हैं और यही अतर एक दो नहीं प्रत्येक घटना के संवत् मे देख पड़ता है। यदि चद के किसी संवत् मे ९० जोड़ दे तो ऐतिहासिक यथार्थ संवत् निकट आता है। चंद ने पृथ्वीराज के जन्म, दिल्ली गोद जाने, कन्नोज जाने, तथा अंतिम युद्ध के १११५, ११२२, ११५१, ११५८ संवत् दिए है और इनमे ९० जोड़ देने से प्रत्येक घटना के यथार्थ संवत् निकल आते है

१० जर्नल ऑफ़ दी रॉयल एशिआटिक् सोसाइटी, सन् १९०६, ई०, पृ०, ५००-१।

११ डा० बार्नेट, एंटिक्विटीज ऑफ़ इंडिआ, पृ० ९५।

(पृथ्वीराज रासो, पृ० १४०, देखिए)। प्रत्येक घटना मे केवल ६० साल का अंतर होने से प्रकट है कि कवि इन घटनाओं के संवतों से अनभिज्ञ न था नहीं तो किसी मे ६० वर्षो का अंतर पड़ता और किसी मे कुछ और।··· ·····। चंद पृथ्वीराज का जन्म १११५ विक्रम अनंद संवत् मे बताता है। अत· वह साधारण संवत् न लिखकर 'अनंद' संवत् लिखता है। अनंद का अर्थ साधारण तया आनंद का भी कहा जा सकता है, पर इस स्थान पर आनंद के अर्थ लगाने से ठीक अर्थ नही बैठता है। यदि आनंद शब्द होता तो आनंद वाला अर्थ बैठ सकता था। अत· प्रकट होता है कि चंद अनंद ना का कोई विक्रमीय सवत् लिखता है। यह अनंदसंवत् जान पड़ता है कि साधारण संवत् से ६० वर्ष पीछे था · ··· ·। अनंदसंवत् किस प्रकार चला और साधारण संवत से वह ६० वर्ष पीछे क्यो है, इसके विषय मे पंड्याजो ने कई तर्क दिए है, पर दुर्भाग्यवश उनमे से किसी पर हमारा मत नही जमता है। बाबू-श्यामसुन्दरदासजी ने भी एक कारण बतलाया है, पर वह भी हमे ठीक नही जान पड़ता। ···अभी तक हम लोगो को अनंद संवत के चलने तथा उसके ६० वर्ष पीछे रहने का कारण नहीं ज्ञात है, पर इतना जरूर जान पड़ता है कि अनंद संवत चलता अवश्य था और वह साधारण संवत से ६० या ६१ वर्ष पीछे अवश्य था। उसके चलने का कारण न ज्ञात होना उसके अस्तित्व मे संदेह नही डाल सकता[१२]"।

इस प्रकार पंड्याजी के कल्पना किए हुए 'अनंद विक्रम सवत्' को इंग्लैंड और भारत के विद्वानो ने स्वीकार कर लिया, परन्तु उनसे किसी ने भी यह जाँच करने का श्रम न उठाया कि ऐसा करना कहाँ तक ठीक है। राजपूताने मे इतिहास की ओर दिन-दिन रुचि बढ़ती जाती है और कई राज्यो मे इतिहास कार्यालय भी स्थापित हो गए है। ख्यातो आदि के अशुद्ध संवतो के विषय की चर्चा करते हुए कई पुरुषों ने मुझे यह कहा कि उन संवतो को अनंद विक्रम संवत् मानने से शायद वे शुद्ध निकल पड़े। अतएव उसकी जाँच कर यह निर्णय करना शुद्ध इतिहास के लिये बहुत ही आवश्यक है कि वास्तव मे चद ने पृथ्वीराजरासे' मे प्रचलित विक्रम संवत् से भिन्न 'अनंद विक्रम संवत्' का प्रयोग किया है, या नही, पंडयाजी के कल्पना किए हुए उक्त संवत् मे ६० या ६१ जोड़ने से 'रासे' तथा चौहानो की

१२ मिश्रबंधु, हिंन्दी नवरत्न, पृ० ३२२-२४।

ख्यातो में दिए हुए सब घटनाओं के संवत शुद्ध मिल जाते है या नही, ऐसे ही जोधपुर और जयपुर राज्यो की ख्यातो मे मिलनेवाले संवतों तथा पृथ्वीराज, रावल समरसी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानो के संवतो को अनंद विक्रम संवत मानने से वे शुद्ध संवतो से मिल जाते है या नही, इसकी जाँच नीचे की जाती है।

'अनंद विक्रम संवत्' नाम

कर्नल टॉड की मानी हुई चौहानो की ख्यातो और पृथ्वीराजरासे के संवतों मे १०० वर्ष की अशुद्धि पर से उन सवतो की संगति मिलाने के लिये पंड्याजी ने ई०स०१८८७ मे पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा मे तो एक नए संवत् की कल्पना कर उसका नाम 'भाटो का संवत्' या 'भटायत संवत' रक्खा और प्रचलित विक्रम संवत् से उसका १०० वर्ष पीछे होना मानकर लिखा कि "यदि हम रासे में लिखे संवतो की भाटो के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करे तो सौ १०० वर्ष के एक से अंतर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमीय संवत् से बराबर मिल जाते है।" इस हिसाब से पृथ्वीराज का देहांत, जो रासे में ४३ वर्ष की अवस्था मे होना लिखा है, वह वि०सं०१२५८ मे होना मानना पडता था। पृथ्वीराज का देहांत वि०सं०१२४८-४९ मे होना निश्चित् था, जिससे भटायत सं० से वह ९-१० वर्ष पीछे पड़ता था। इस अन्तर को मिटाने के लिये 'एकादश से पंचदह' में से (पंचदश) का गूढार्थ 'पांच' मानकर उसकी संगति मिलाने का उन्होंने यत्न किया, जिसको साक्षर वर्ग ने स्वीकार न किया। तब उन्होने उसी साल पृथ्वीराजरासे के आदि पर्व को छपवाते समय टिप्पण मे उस ९ वर्ष के फर्क को मिटाने के लिये पृथ्वीराज के जन्म-सम्बन्धी रासे के दोहे 'एकादश सै पंचदह विक्रम साक अनंद' में'अनंद'शब्द का अर्थ नंद रहित' या'नव रहित'कर अपने माने हुए भटायत संवत् के अनुसार पृथ्वीराजजी के देहांत संवत् को ठीक करने का उद्योग किया, परन्तु ऐसा करने पर उक्त दोहे का अर्थ 'विक्रम का नव-रहित सवत १११५ (अर्थात ११०६) होता था, जिससे उन्होने मूल मे १०० का सूचक कोई शब्द न होने पर भी सौ रहित नव (अर्थात ९१) कर उक्त संवत का नाम 'अनंद विक्रम सवत्' रक्खा और लिखा कि "३५५ रूपक मे जो अनंद शब्द प्रयोग हुआ है, उसमे किसी किसी को कुछ सन्देह रहेगा; अतएव हम फिर उसके विषय मे कुछ अधिक कहते है। देखो संशय करना कोई बुरी बात नही है; किंतु वह सिद्धांत का मूल है। हमारे गौतम

ऋषि ने अपने न्यायदर्शन मे प्रमाण और प्रमेय के पीछे संशय को एक पदार्थ माना है और उसके दूर करने के लिये ही मानो सब न्याय शास्त्र रचा गया है। यदि अनंद का नव-संख्या-रहित का अर्थ किसी की सम्मति मे ठीक नहीं जँचता हो तो उससे इस स्थल मे बहुत अच्छी तरह घटता हुआ कोई दूसरा अर्थ बतलाना चाहिए, परन्तु बात तब है कि वह सर्व तंत्र सिद्धान्त Universally true से उसी तरह सिद्ध हो सकता है कि जैसे हमने यहां अपना विचार सिद्ध कर दिखाया है। सब लोग जानते हैं कि हमारे इस शोध के पहिले तक युवा और मध्य वय के कोई-कोई कवि लोग इस अनन्द सज्ञावाचक शब्द का गुणवाचक अर्थ शुभ Auspicious का करते हैं और चारण जाति के महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदासजी ने भी अपने इस महाकाव्य के खंडन-ग्रथ मे यही अर्थ माना है। परन्तु विद्वानों के विचारने और न्याय करने का स्थल है कि इस दोहे मे आनद का पाठ नही है, और न छंद के लक्षण के अनुसार वह बन सकता है, किंतु स्पष्ठ अनन्द पाठ है। यदि यहाँ संज्ञावाचक आनन्द पाठ भी होता तो भी उसका गुणवाचक शुभ का अर्थ नहीं हो सकता था, परन्तु संस्कृत का थोड़ासा ज्ञान रखने वाला भी जान सकता है ...... कि जब अनंद शब्द का सत्य अर्थ दुःख का है तो फिर क्या सुख या शुभ का अर्थ करना अयोग्य नही है[13]।"

पंड्याजी ने यहां सस्कृत के 'अनंद' शब्द का अर्थ 'दुःख' माना है, परन्तु पृथ्वीराज रासा संस्कृत काव्य नहीं है कि उसको संस्कृत के नियमो से जकड़ दे। वह तो भाषा का ग्रथ है। सस्कृत मे 'अनद' और 'आनन्द' शब्द एक दूसरे से विपरीत अर्थ में भले ही आवें, परन्तु हिंदी काव्यो मे 'अनंद' शब्द 'आनद' के अर्थ मे तुलसीदासजी आदि प्रसिद्ध कवियो के काव्यों मे मिलता है[14]। हिंदी भाषा

---

१३ पृथ्वीराजा रासा, आदि पर्व, पृ० १४० टिप्पण।

१४ पुनिमुनिगन दुहु भाइन्ह बंदे, अभिमत आसिख पाइ अनदे ॥

रामचरित मानस (इडियन प्रेस का), पृ० ५६२,

नव गयंद रघुवीर मन, राजु अलान समान।

छूट जानि वन गमन सुनि, उर अनंद अधिकान ॥

वही, पृ० ३६३,

प्राकृत के अपभ्रंश रूप से निकली है और अपभ्रंश मे बहुधा विभक्तियों को प्रत्यय नही लगते। यही हाल हिंदी काव्यों का भी है। विभक्तियो के प्रत्यय न लगने से कई सज्ञावाचक शको का प्रयोग गुणवाचक की तरह हो जाता है, जैसे कि पृथ्वीराज के जन्म-संवत् सबंधी दोहे मे 'विक्रम साक' का अर्थ विक्रम का संवत् या वर्ष है और यहाँ विक्रम के साथ संबंधकारक का प्रत्यय नही है, जिससे उसका गुणवाचक अर्थ 'विक्रमी' संवत् हुआ। ऐसे ही 'अनंद साक' का संज्ञावाचक अर्थ 'आनंद का वर्ष' या गुणवाचक 'आनंददायक वर्ष या शुभ वर्ष' होता है; क्योकि 'अनंद' के साथ विभक्ति सूचक प्रत्यय का लोप है। 'अनंद साक' पद ठीक वैसा ही है, जैसा कि 'आनद का समय,' 'आनंद का स्थान' आदि। इसलिये उक्त दोहे का वास्तविक अर्थ यही है कि 'विक्रम के शुभ संवत् १११५ मे पृथ्वीराज का जन्म हुआ'। ज्योतिषी लोग अपने यजमानो के जन्मपत्र वर्षपत्र आदि में सामान्यरूप से 'शुभसंवत्सरे' लिखते है, तो पृथ्वीराज जैसे प्रतापी राजा के संबंध का इतना बड़ा काव्य लिखने वाला उनके जन्म-संवत् को 'शुभ' कहे तो इसमें आश्चर्य की बात कौनसी है। बहुधा राजपूताने मे पत्रो के अंत मे 'शुभमिती' और स्त्रियो के पत्र के अंत मे 'मिती आनंद की' लिखने की रीति पाई जाती है।

जिन विद्वानो ने 'अनंद सं ' को स्वीकार किया है, उन्होने 'अनंद' शब्द पर से नही, किंतु पंड्याजी और बाबूजी के इस कथन पर विश्वास करके कि 'रासे के संवतो मे ९० या ९१ वर्ष मिलाने से सब संवत् शुद्ध मिल जाते हैं, अनंद संवत् का अस्तित्व माना है। हम आगे जाँच कर यह बतलावेगे कि वास्तव मे संवत् नही मिलते और न चौहानों की ख्यातो, जोधपुर और जयपुर के राजाओ के संवत् तथा पृथ्वीराज, समरसी और पृथाबाई के पट्टे परवानो के संवत् मे ९० या ९१ वर्ष मिलाने से वे शुद्ध संवतो से मिल जाते हैं। तब स्पष्ट हो जायगा कि रासे के कर्ता ने 'अनंद शक का प्रयोग 'आनंददायक' या 'शुभ'

पौढि रही उमगै अति ही मतिराम अनद अमात नही के।

मतिराम का रसराज (मनोहर प्रकाश), पृ० ११६,

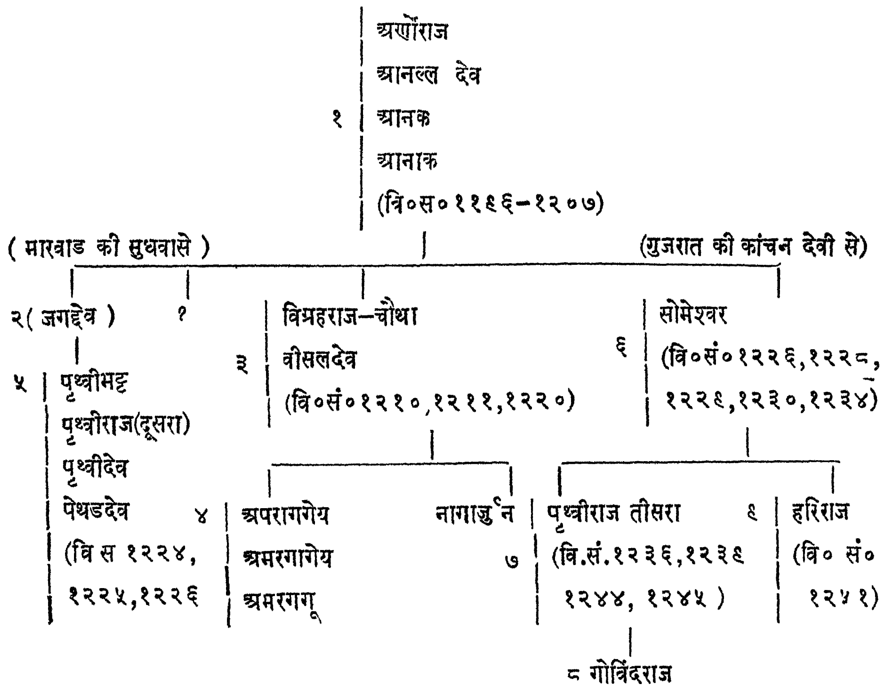
आये विदेश तैं प्रानप्रिया, मतिराम अनद बढाय अलेखें।

वही, पृ० १५०,

के अर्थ मे किया है और 'अनंद विक्रम संवत्' नाम की कल्पित सृष्टि केवल पंड्याजी ने ही खड़ी की है।

पृथ्वीराज के जन्म का संवत्।

पृथ्वीराजरासे में पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १११५ मे होना लिखा है। पंड्याजी इस संवत् को अनंद विक्रम संवत् मानकर उसका जन्म सनंद विक्रम संवत् (१११५+९०-९१=) १२०५-६ मे होना बतलाते हैं। इसके ठीक निर्णय के लिये पृथ्वीराज के दादा अर्णोराज (आना) से लगाकर पृथ्वीराज तक के अजमेर के इतिहास की संक्षेप से आलोचना करना आवश्यक है। आधुनिक शोध के अनुसार अर्णोराज से पृथ्वीराज तक का वंशवृक्ष प्रत्येक राजा के निश्चित् ज्ञात समय के साथ नीचे लिखा जाता है—



(१) पृथ्वीराज विजय में अर्णोराज की दो रानियों के नाम मिलते है- मारवाड़ की सुधवा और गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) की पुत्री कांचन-देवी। सुधवा के तीन पुत्र हुए, जिनमे से केवल सब से छोटे विग्रहराज का नाम

उसमें दिया है। कांचन देवी से सोमेश्वर का जन्म हुआ [१५]। सुधवा के ज्येष्ठ पुत्र

---

१५ अवीचिभागो मरुभूमिनामा खण्डो द्युलोकस्य च गूर्जराख्य ।
परीक्षणायेव दिशि प्रतीच्यामेकीकृतौ पाशधरेण यौ द्वौ ॥ [२६॥]
तयोर्द्वयोरप्युदिते नरेन्द्र त वव्रतुस्तुल्यगुणे महिष्यौ ।
रसातलस्वर्गभवे इव द्वे त्रिलोचनं चन्द्रकलात्रिसर्गे ॥ [३०॥]
पूर्वा तयोर्नाम कृतार्थयन्ती तं प्राप्य कान्तं सुधवाभिधाना ।
सुतानवा पत्यकृतेस्समानान्गुणानिवान्योन्यविभेदिनस्त्रीन् ॥ [३१॥]

(पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, सर्ग ६) ।

गूर्जरेन्द्रो जयसिंहस्तस्मै या दत्तवान्सा काञ्चनदेवी रात्रौ च दिने च सोमं सोमेश्वरसंज्ञमनत्" (पृथ्वीराज विजय, सर्ग ६, श्लोक [३४] पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक नष्ट होगया है)।

सूनु श्रीजयसिंहोऽस्माज्जायते स्म जगज्जयी ॥ २३ ॥
अमर्षण मन कुर्वन्विपक्षोर्वीभृदुन्नतौ ।
अगस्तय इव यस्तूर्णमर्णोराजमशोषयत् ॥ २७ ॥
गृहीता दुहिता तूर्णमर्णोराजस्य विष्णुना ।
दत्तानेन पुनस्तस्मै भेदोभूदुभयोरयम् ॥ २८ ॥
द्विषा शीर्षाणि लूनानि दृष्ट्वा तत्पादयो पुर. ।
चक्रे शाकम्भरीशोपि शङ्कित प्रणतं शिर ॥ २९ ॥

(सोमेश्वर रचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग २)

'कीर्तिकौमुदी' का कर्ता, गुर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर, गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) का चौहान (शाकम्भरीश्वर) अर्णोराज (आना) को जीतना और अपनी पुत्री का विवाह उस (अर्णोराज) के साथ करना स्पष्ट लिखता है, तो भी 'बंबई गेजेटिअर' का कर्त्ता सोमेश्वर के कथन को स्वीकार न कर लिखता है कि यह भूल है क्योंकि अर्णोराज के साथ की लडाई और सधि कुमारपाल के समय की घटनाएँ हैं' (बंबई गेजेटिअर, जि० १, भाग १, पृ० १७६)। यहा सोमेश्वर की भूल बतलाता हुआ उक्त 'गेजेटियर' का कर्त्ता स्वयं भूल कर गया है, क्योंकि 'प्रबन्धचिंतामणि का कर्ता मेरुतु गाचार्य भी जयसिंह और आनाक (अर्णोराज=आना) के बीच की लड़ाई का उलेख करता है (सपादलक्ष सहभूरिलक्षैरानाकभूपाय नताय दत्त । इते यशोवर्मणि मालवोपि त्वया न से हे द्विषि सिद्धराज प्रबन्धचिंतामणि, पृ० १६०)। 'पृथ्वीराज विजय के कर्त्ता जयरथ (जयानक) ने अपना काव्य वि० सं० १२४८ के पूर्व बनाया और इसमे जयसिंह की पुत्री काचनदेवी का विवाह

(जगद्देव) के विषय में लिखा है कि उसने अपने पिता की वह सेवा बजाई जो भृगुनंदन (परशुराम) ने अपनी माता की की थी (अर्थात् उसने अपने पिता को मारडाला) और वह दीपक की नाईं अपने पीछे दुर्गंध (अपयश) छोड़ मरा[१६]; वि० सं० ११९६ के अर्णोराज के समय के दो शिलालेख जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में प्रसिद्ध जीणमाता के मंदिर के एक स्तंभ पर खुदे हुए हैं[१७] और चित्तौड़ के किले तथा पालड़ी के शिलालेखों से पाया जाता है कि गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल की अर्णोराज के साथ की लड़ाई वि० सं० १२०७ के आश्विन या कार्तिक में हुई होगी[१८]। उसके पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) ने राज्य पाने के बाद वि० सं० १२१० माघशुक्ला ५ को 'हरकेलि' नाटक समाप्त किया[१९]। अतएव अर्णोराज और जगद्देव दोनों का देहान्त वि० सं० १२०७ के आश्विन और १२१० के माघ के बीच किसी समय हुआ होगा।

अर्णोराज से होना लिखा है, इतना ही नहीं; किंतु उस कन्या से उत्पन्न होने वाले सोमेश्वर को जयसिंह का अपने यहाँ लेजाने और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के द्वारा गुजरात में सोमेश्वर का लालन-पालन होने आदि का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। कीर्तिकौमुदी वि० सं० १२८२ के आसपास बनी है। इन दोनों काव्यों का कथन 'बंबई गेजेटिअर के कर्ता के कथन की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

१६ प्रथमत्सुधवासुतस्तदानी परिचर्या जनकस्य तामकार्षीत्।
प्रतिपाद्यजलाञ्जलिं घृणायै विदधे या भृगुनन्दनो जनन्या ॥ [१२॥]
न परं विदधे वृथा गुणित्वं जनकस्नेहमयं विनाश्य यावत्।
स्वयमेव विनश्य गर्हणीयं व्यतनोद्दीप इवानुरागगन्धम् ॥ [१३॥]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ७।

१७ प्रॉग्रेस रिपोर्ट ऑफ दि आर्किआलॉजिकल सर्वे, वेस्टर्न सर्कल, ई०स० १९०९-१०, पृ० ५२।

१८ इण्डि० ऍटि०, जि० ४०, पृ० १६६।

१९ संवत् १२१० मार्गशुदि ५ आदित्यदिने श्रवणनक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे बालवकरणे हरकेलिनाटक समाप्त॥ मंगलं महा श्री ॥ कृतिरियं महाराजधिराजपरमेश्वर श्रीविग्रहराजदेवस्य (शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजिअम, अजमेर, में सुरक्षित)।

(२) जगद्देव का नाम, पितृघाती (हत्यारा) होने के कारण, राजपूताने की रीति के अनुसार बीजोल्या के वि० सं० १२२६ के लेख तथा 'पृथ्वीराज विजय' मे नहीं दिया, परन्तु 'हमीरमहाकाव्य' [२०] और 'प्रबध कोष (चतुर्विंशति प्रबंध)' की हस्तलिखित पुस्तक के अंत मे दी हुई चौहानो की वंशावली[२१] मे उसका नाम जगद्देव मिलता है। जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट के विद्यमान होने पर भी उसके पीछे उसका छोटा भाई विग्रहराज (बीसलदेव) राजा हुआ, जिसका कारण यही अनुमान किया जा सकता है कि जैसे मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भ) को मार कर उसका ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह। मेवाड़ के राजा बना, परन्तु सर्दारो आदि ने उसकी अधीनता स्वीकार न की और राणा कुंभा का छोटा पुत्र रायमल सर्दारो की सहायता से उसे निकाल कर मेवाड का राजा बना, वैसे ही पृथ्वीभट से विग्रहराज ने अजमेर का राज्य लिया हो।

(३) विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे के राजत्व काल के संवत् वाले शिलालेख अब तक ४ मिले है, जिनमे से उपर्युक्त 'हरकेलिनाटक' की पुष्पिका वि० सं० १२१० की, मेवाड़ के जहाजपुर जिले के लोहारी गांव के पास के भूतेश्वर महादेव के मदिर के स्तभ पर का वि० सं० १२११ का [२२] और अशोक के लेख वाले देहली के शिवालिक स्तंभ पर [कार्तिकादि] वि० सं० १२२० (चैत्रादि १२२१ (वैशाख शुदि १५ (ता० ९ एप्रिल, ई० स० ११६४) गुरुवार (बार एक ही लेख मे दिया है। के दो[२३] है। पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) का सब से पहला लेख वि० सं० १२२४ माघशुक्ल ७ का हासी से मिला है[२४]। अतएव विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे और उसके पुत्र अपर गांगेय दोनो की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी समय हुई, यह निश्चित है।

---

२० विस्मामकश्रीर्भवति स्म तस्माद्भूभृत् जगद्देव इति प्रतीत ।
हमीरमहाकाव्य, सर्ग २, श्लो० ५२ ।

२१ गउडवहो, अंग्रेजी भूमिका, पृ० १३५-३६ (टिप्पण)।

२२ ॐ ॥सम्वत् १२११ श्री (श्री) परमपाशु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रासादे मण्डप [भूषितं] ॥
(लोहारी के मन्दिर का लेख, अप्रकाशित)।

२३ इन्डि० ऍटि०, जि० १९, पृ० २१८ ।

२४ वही, जि० ४१, पृ० १९ ।

(४) अपरगांगेय (अमरगांगेय) से पितृघाती जगदेव के पुत्र पृथ्वीभट ने राज्य छीन लिया हो, ऐसा पाया जाता है। क्योंकि मेवाड़ राज्य के जहाज़पुर ज़िले के धौड़ गांव के पास के रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर के वि० सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ के पृथ्वीदेव (पृथ्वीभट) के लेख मे उसको 'रणखेत मे अपने भुजबल से शाकंभरी के राजा को जीतने वाला'[२५] बतलाया है। बालक अपरगांगेय की मृत्यु विवाह होने से पहले हुई हो और वह एक वर्ष से अधिक राज करने न पाया हो। 'पृथ्वीराजविजय' मे लिखा है कि 'पृथ्वीराज के द्वारा सूर्यवंश (चौहानवंश) की उन्नति को देखते हुए यमराज ने इस (विग्रहराज) के पुत्र अपरगांगेय को हर लिया[२६]।

(५) पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) के समय के अब तक तीन शिलालेख मिले है। जिनमे से उपर्युक्त हांसी का वि० सं० १२२४ का, धौड़ गांव का, १२२५ का (ऊपरलिखा हुआ) और मेवाड़ के मेनाल नामक प्राचीन स्थान के मठ का १२२६ का[२७] (बिना मास पक्ष और तिथि) का है। उसके उत्तराधिकारी सोमेश्वर का सब से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ का मेवाड़ के बीजोल्यां गांव के पास की चट्टान पर खुदा हुआ प्रसिद्ध लेख[२८] है जिसमे सामत से लगा कर सोमेश्वर तक की सांभर और अजमेर के चौहानो की पूरी बशावली मिलती है। इन लेखो से निश्चित् है कि पृथ्वीभट का देहांत और सोमेश्वर का राज्याभिषेक ये दोनो घटनाएँ वि० सं० १२२६ मे फाल्गुन के पहले किसी समय हुईं।

---

२५ ॐ स० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्री सपादलक्षमंडले महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक उमापतिवरलब्धप्रसाद प्रौढप्रताप निजभुजरणागणविनिर्जितशाकभरीभूपाल श्री प्रिथिम्बिदेवविजयराज्ये (धौड गॉव के रूठी राणी के मदिर के एक स्तंभ पर का लेख–अप्रकाशित) ।

२६ सुतोऽप्यपरगाङ्गेयो निन्येस्य रविसूनुना ।
उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ [५४ ॥]
पृथ्वीराजविजय सर्ग ८ ।

२७ बंगाल एशिआटिक् सोसाइटी का जर्नल, ई० सं० १८८६, हिस्सा १, पृ० ४६ ।

२८ वही, पृ० ४०–४६ ।

पृथ्वीराजविजय मे लिखा है कि 'सब गुणों से संपन्न, पितृवैरी (जगद्देव) का पुत्र, पृथ्वीभट भी (विग्रहराज को लाने के लिये अचानक चल धरा (=मर गया [२९])"।

(६) सोमेश्वर के विषय मे 'पृथ्वीराज विजय' मे लिखा है कि "उसका जन्म होने पर जब उसके नाना (जयसिंह=सिद्धराज) ने ज्योतिषियों से यह सुना की रामचंद्र अपना बाकी रहा हुआ कार्य करने के लिये उस (सोमेश्वर) के यहाँ जन्म लेंगे, तब उसने उसको अपने नगर में मँगवा लिया। उसके पीछे कुमारपाल ने कुमार (बालक) सोमेश्वर का पालन किया, जिससे उसका 'कुमारपाल' नाम सार्थक हुआ। उसकी वीरता के कारण वह (कुमारपाल) उसको सदा अपने पास रखता था। एक हाथी से दूसरे हाथी पर उछलते हुए उस (सोमेश्वर) ने कौकण के राजा की छुरिका (छोटो तलवार) छीनली और उसी से उसका सिर काट डाला। फिर उसने त्रिपुरी (चेदि की राजधानी तेवर) के कलचुरि राजाकी पुत्री (कर्पूरदेवी) से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ (पक्ष नहीं दिया) की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ[३०]। उसका चूड़ाकरण संस्कार होते ही रानी के

---

२९ प्रत्यानेतुमिवाकाण्डे पूर्णोपि सकलैर्गुणैः ।
पितृवैरित्तनूजोपि प्रतस्थे पृथिवीभटः ॥ [५६॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८ ।

३० उत्पत्स्यते कचन कार्य शेषं निर्मातुकामस्तनयो ऽस्यराम ।
सावत्सरैरित्युदितानुभाव मातामहस्त स्वपुरं निनाय ॥ [३५॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग, ६ ।

अथ गूर्जरराजमूर्जिताना मुकुटालङ्करण कुमारपाल ।
अधिगत्य सुतासुतं तदीय परिरक्षन्नभवद्यथार्थ नामा ॥ [११॥]
[क्रमशो रथि] यन्तृसादिपत्तिव्यवहारेषु विसारिणा चतुर्धा ।
युधि वीरसेन शुद्धिमन्तं न समीपादमुचत्कुमारपाल ॥ [१४॥]
हनुमानिव शैलतस्स शैलं द्विरदेन्द्राद्द्विरदेन्द्रमुत्पतिष्णु. ।
छुरिकामपहृत्य कुङ्कणेन्द्रं गमयामास कबंधता तयैव ॥ [१५॥]
इति साहससाहचर्यचर्यैस्समयज्ञैः प्र[तिपादि] तप्रभावाम् ।
तनयां स सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य ॥ [१६॥]

फिर गर्भ रहा[३१] और माघसुदि ३ को हरिराज का जन्म हुआ[३२]।" 'पृथ्वीराजविजय' के इस लेख से पाया जाता है कि जब कुमारपाल ने राज पाया उस समय अर्थात वि० सं० ११९९ मे तो सोमेश्वर बालक था, परन्तु कौंकण के राजा के साथ की लड़ाई के समय वह युद्ध मे वीरता बतलाने के योग्य अवस्था को पहुंच गया था। कौंकण के जिस राजा का उक्त काव्य मे उल्लेख किया गया है वह उत्तरी कौंकण का शिलारावंशी राजा मल्लिकार्जुन है। कुमारपाल की उस पर की चढ़ाई के विषय मे "प्रबंधचिंतामणि" से पाया जाता है कि कुमारपाल के दर्बार मे एक भाट ने मल्लिका-

---

ज्येष्ठत्वं चरितार्थतामथ नयन्मासान्तरापेक्षया
ज्यैष्ठस्य पृथयन्पन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मा स्थितिम् ।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यता मुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुता जन्मना ॥ [५०॥]

वही, सर्ग ७ ।

पृथ्वीं पवित्रता नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम् ।
चतुर्वर्णधन नाम पृथ्वीराज इति व्यधात् ॥ [३०॥]

वही, सर्ग ८ ।

३१ चूडाकरणसंस्कार बहुधा प्रथम वर्ष मे, नही तो तीसरे मे होता है ।

३२ चूडाकरणसंस्कारसुन्दर तन्मुखं बभौ ।
पाश्चात्यभागसंप्राप्तलक्ष्मेव शशिमण्डलम् ॥ [४५॥]
सत्रान्तरे पुनर्देवीवपु. प्रैक्षत पार्थिव ।
स्वप्नदृष्टभुजङ्गेन्द्रभोगकान्त्येव पाण्डुरम् ॥ [४६॥]
प्रसूतपृथिवीराजा देवी गर्भवती पुन ।
उदेष्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ ॥ [४७॥]
माघस्याथ तृतीयस्यां सितायामपरं सुतम् ।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्तं], परमवाप सा ॥ [४९॥]

युद्धेष्वस्य हस्तिदलनलीलां भविष्यन्ती जानतेव हरिराजनाम्नायं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पृष्ट । हरिराजो हि हस्तिमर्दन (श्लोक ५० पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक बहुतसा नष्ट हो गया है

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८ ।

र्जुनको 'राजपितामह' कहा। इस पर क्रुद्ध होकर कुमारपाल ने अपने मत्री आंबड को सेनापति बनाकर अपने सामन्तो सहित उस पर भेजा। उसने कौंकरा मे प्रवेश किया और कलबिणि नदी को पार करने पर मल्लिकार्जुन से उसकी हार हुई और वह काला मुँह कराकर लौटा। इस पर कुमारपाल ने बड़ी सेना के साथ फिर उसी को उस पर भेजा और उसी नदी के पार फिर उससे लडाई हुई, जिसमे आंवड़ ने उसके हाथी पर चढ़ कर अपनी तलवार से उसका सिर काट डाला और कौंकण पर कुमारपाल का अधिकार जमा दिया। उसने मल्लिकार्जुन के सिरको सोने मे मढ़ा लिया और दरबार मे बैठे हुए कुमारपाल को कई बहुमूल्य उपहारों के साथ भेट किया। इस पर कुमारपाल ने आंबड को ही राजपितामह की उपाधि दी।[३३] प्रबंधचिंतामणिकार मल्लिकार्जुन का सिर काटने का यश सेनापति आंबड़ को देता है परन्तु 'पृथ्वीराजविजय', जो 'प्रबन्धचिंतामणि' से अनुमान ११४ वर्ष पूर्व बना था, उस वीर कार्य का सोमेश्वर के हाथ मे होना बतलाता है, जो अधिक विश्वास के योग्य है। मल्लिकार्जुन के दो शिलालेख शक सं०१०७८ और १०८२ (वि०स०१२१३ और १२१७) के मिले हैं और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का पहला शिलालेख शक सं० १०८४ (वि० सं० १२१६)[३५] का है अतएव सोमेश्वर ने मल्लिकार्जुन को वि०स०१२१७ या १२१८ मे मारा होगा, जिसके पीछे उसने चेदि देश की राजधानी त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा की पुत्री से विवाह किया। टीकाकार ने एक श्लोक की टीका मे राजा का नाम तेजल लिखा है किंतु पृथ्वीराजविजय के एक और श्लोक मे श्लेष से यह अर्थ संभव है कि कर्पूरदेवी के पिता का नाम अचलराज हो। उससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ जो वि०सं०१२१७ के पीछे किसी समय होना चाहिए, न कि वि०सं०१२०५-६ मे। उस समय तक तो सोमेश्वर युवावस्था को भी न पहुंचा होगा।

'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीभट की मृत्यु के वर्णन के बाद लिखा है कि 'जिसमे से पुरुष रूपी मोती गिरते गए,ऐसे सुधवा के वंश को छोड़ कर राजश्री

---

३३ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० २०१–२०३।

३४ बबई गेजिटिअर, जि० १, भाग १, पृ० १८६।

३५ वही, पृ० १८६।

सोमेश्वर को राजा देखने के लिये उत्कण्ठित हुई। महामन्त्री यश और प्रताप रूपी दोनो पुत्रो (पृथ्वीराज और हरिराज) सहित राजा (सोमेश्वर) को सपादलक्ष मे लाए और दान तथा भोग जैसे उन दोनो पुत्रो को लेकर सपत्ति की मूर्त्ति स्वरूप कर्पूरदेवी ने अजयराज की नगरी (अजमेर) मे प्रवेश किया। परलोक को जीतने की इच्छा वाले राजा ने मदिरादि निर्माण कराए और इस तरह पितृ-ऋण से मुक्त होकर पिता के दर्शन के लिए त्वरा की (अर्थात् जल्दी ही मरणोन्मुख हुआ)। मेरे पिता अकेले स्वर्ग मे कैसे रहें और बालक पृथ्वीराज की उपेक्षा भी कैसे की जावे, ऐसा विचार कर उसने उस (पृथ्वीराज) को राज्य सिहासन पर बिठलाया और अपनी व्रतचारिणी रानी पर उसकी रक्षा का भार छोड कर पितृभक्ति के कारण वह स्वर्ग को सिधारा[३६]। इससे भी निश्चित है कि सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज बालक ही था। सोमेश्वर के राज्य समय के ५ शिलालेख मिले हैं जिनमे से बीजोल्यां का उपर्युक्त लेख वि० सं० १२२६ का, धौड़ गॉव के उक्त मदिर के दो स्तंभो पर वि० सं० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १०[३७] और १२२९ श्रावण सुदि १३

---

३६ मुक्त्वेति सुधवावशं गलत्पुरुषमौक्तिकं।
देव सोमेश्वर द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत ॥ [५७ ॥]
आत्मजाभ्यामि वयश प्रतापाभ्यामिवान्वित ।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति· ॥ [५८ ॥]
कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगविवात्मजौ ।
विवेशाजयराजस्य संपन्मूर्तिमती पुरीम् ॥ [५९ ॥]
ऋणशुद्धिं विनिर्माय निर्माणैरीदृशैः पितु ।
तत्वरे दर्शन कर्त्तुं परलोकजयी नृप ॥ [७१ ॥]
ए[काकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम् ।
बालश्च पृथ्वीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२ ॥]
[इतिवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं व्रतचारिणीम् ।
स्थापयित्वा निजां देवी पितृ] भक्त्या दिवं ययौ ॥] ७३ ॥
पृथ्वीराज विजय सर्ग ८ ।

३७ ओ ॥ स्वस्ति ॥ सवत् १२२८ जेष्ठ (ज्येष्ठ) सुदि १० ········ समस्त राजावली-समलंकृतपरमभट्टारक (क) महाराजाधिराजपरमेस्व(श्व)रपरममाहेस्व(श्व)रश्रीसोमेस्व-(श्व)रदेवकुस (श)ली कल्याणविजयराज्ये०
धौडगाव का लेख (अप्रकाशित)।

के[३८],जयपुर राज्य के प्रसिद्ध जीणमाता के मंदिर के स्तंभ पर वि०सं० १२३० का[३९] और मेवाड़ (उदयपुर) राज्य के जहाजपुर जिले के आवलदा गाँव से मिले हुए सती के स्तंभ पर वि० सं० १२३४ भाद्रपद शुदि ४ शुक्रवार का[४०] है। सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज के समय के कई लेख मिले हैं। जिनमे से पहला उपर्युक्त भूतेश्वर महादेव के मंदिर के बाहर के एक सती के स्तंभ पर वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदि १२ का[४१] है। इन लेखों से स्पष्ट है वि० सं० १२३४ और १२३६ के बीच किसी समय सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज का राज्याभिषेक हुआ। उस समय तक तो पृथ्वीराज बालक था। जैसा कि ऊपर लिखा गया है। पृथ्वीराज विजय मे विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग मे यह भी लिखा है कि 'अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रों से पृथ्वी को सनाथ जानने पर विग्रहराज ने अपने को कृतार्थ माना और वह शिव के सानिध्य मे पहुंचा[४२]। इसका तात्पर्य यही है कि विग्रहराज ने अपनी मृत्यु के पहले सोमेश्वर के दो पुत्र होने की खबर सुनली थी। उसका देहान्त चैत्रादि वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी समय

---

३८ ओं ॥ संवत् १२२६ श्रावण सुदी १३ अद्येह श्रीमत् (द्) अजय मेरुदुर्गे सपादलक्ष ग्रामस॰॰ ॥समस्तराजावलिसमलंकृत स परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेस्व (श्व) रपरम माहेस्वर (श्वर) ॥ श्रीसोमेस्व (श्व) रदेव कुशलीकल्याण विजय राज्ये०

धौड गाव का लेख (अप्रकाशित)

३९ प्रॉग्रेस रिपोर्ट ऑफ् दी आर्किऑलाजिकलसर्वे ऑफइंडिआ, वेस्टर्न सर्कल, ई० स० १९०९-१०, पृ० ५२।

४० ओं ॥ स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री सोमेस्व (श्व) रदेवमहाराये (ज्ये) डोडरा सिंघरा-सुत सिदगउ॰॰ संवत् १२३४ भाद्र [प्रद] शुदि ४ शुक्र, दिने०

आवलदा गाव का लेख (अप्रकाशित)

४१ संवत् १२३६ आषाढ वदि १२ श्रीपृथ्वीराजराज्ये वागडी सलखण पुत्र जलसल। मातु- काल्ही०

लोहारीगाव का लेख (अप्रकाशित)

४२ अथ भ्रातुर पत्याभ्या सनाथा जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम् ॥ ५३ ॥

पृथ्वीराज विजय सर्ग ८

होना ऊपर बतलाया जा चुका है इसलिये पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२२१ के आसपास होना स्थिर होता है। "पृथ्वीराज रासे" मे उक्त घटना का संवत् १११५ दिया है। यदि अनद विक्रम संवत् की कल्पना के अनुसार उसमे ९०-९१ मिलावे तो भी पृथ्वीराज का जन्म वि० स० १२०५-६ मे आता है, जो सर्वथा असंभव है। यदि उक्त संवत् मे पृथ्वीराज का जन्म होता तो सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज की अवस्था लगभग ३० वर्ष की होती और सोमेश्वर को उसकी रक्षा का भार अपनी रानी को सौंपने की आवश्यकता न रहती।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

'पृथ्वीराज रासे' मे लिखा है कि "देहली के तवर (तोमर) वशी राजा अनंगपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अन्त मे अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिकाश्रम मे तप करने को चला गया।" पंड्याजी ने अनद विक्रम संवत् ११२२ और सनद (प्रचलित) विक्रम संवत् १२१२-१३ मे पृथ्वीराज का देहली गोद जाना और उस समय उसकी अवस्था ७ वर्ष की होना माना है, परन्तु उस समय तक तो पृथ्वीराज का जन्म भी नहीं हुआ था जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। न तो सोमेश्वर के समय देहली मे तंवर अनगपाल का राज्य था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ। इसलिये 'पृथ्वीराज रासे' का यह कथन माननीय नहीं; क्योंकि देहली का राज्य तो विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे ने ही अजमेर के अधीन कर लिया था। बीजोल्या के उक्त वि० सं० १२२६ के लेख मे विग्रहराज के विजय के वर्णन मे लिखा है कि 'ढिल्ली (देहली) लेने मे थके हुए और आशिका (हांसी) प्राप्त करने मे स्थगित अपने यश को उसने प्रतोली (पोल) और बलभी (झरोखे) मे विश्रांति दी'[४] अर्थात् देहली और हांसी को जीत कर उसने अपना यश घर घर मे फैलाया। देहली के शिवालिक स्तंभ पर के उसके लेख मे हिमालय से विंध्य तक के देश को

४३ प्रतोल्या च वलभ्या च येन विश्रामितयश [।]
दिल्लिका ग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभित (तं) ॥ २२ ॥
बीजोल्या का लेख (छाप पर से)

विजय करना लिखा है [४४]। हांसी से मिले हुए पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय वहाँ का प्रबन्धकर्त्ता उसका मामा गुहिल वशी किल्हण था [४५]। ऐसे ही देहली का राज्य भी अजमेर के राजा के किसी रिश्तेदार या सामत के अधिकार मे होगा। 'तबक़ात्-इ-नासिरी' मे शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पहली लडाई मे देहली के [राजा] गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुल्तान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लडाई में, जिसमे पृथ्वीराज की हार हुई, उस गोविंदराज का मारा जाना लिखा है [४६]। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय देहली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार मे थी। 'तारीख फरिश्ता' मे भी वैसा ही लिखा है परन्तु उसमे गोविंदराज के स्थान पर खांडेराव नाम दिया है जो फारसी अक्षरो के दोष से ही मूल से भिन्न हुआ है।

पृथ्वीराज की माता का नाम कमला नही किन्तु कर्पूरदेवी था और वह देहली के राजा अनगपाल की पुत्री नही किन्तु त्रिपुरी (चेदि देश की राजधानी) के हैहय (कलचुरी) वंशी राजा तेजल या अचलराज की पुत्री थी (देखो ऊपर) नयचंद्र सूरि ने भी अपने 'हमीर महाकाव्य' मे पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी [४७] ही किया है।

---

४४ आविंध्यादाहिमाद्रेर्वि रचितविजयस्तीर्थयात्रा प्रसगात्

इ डि० एँटि०, जि० १६

४५ चाहमानान्वये जात पृथ्वीराजो महीपति ।
तन्मातुश्चाभवरतभ्राता किल्हण. कीर्त्तिवर्द्धन ॥ २ ॥
गुहिलौतान्वयव्योममडनैकशरच्छशी ।

वही, जि० ४१, पृ० १६

४६ तबक़ात्-इ-नासिरी का अंग्रेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ), पृ०४५६-६८।

४७ इलाविलासी जयति स्म तस्मात् सोमेश्वरोऽनश्वरनीति रीति ॥ ६७ ॥
कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया [प्रिया] राधन सावधाना। ॥ ७२ ॥

हमीरमहाकाव्य, सर्ग २

जब विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य अजमेर के चौहानो के अधीन हो गया था और पृथ्वीराज अनंगपाल तवर का भानजा ही न था तो उसका अपने नाना के यहाँ देहली गोद जाना कैसे सभव हो सकता है ? यदि पृथ्वीराज का देहली गोद जाना हुआ होता तो फिर अजमेर के राज्य पर उसका अधिकार ही कैसे रहता ? पृथ्वीराज के राजत्वकाल के कई एक शिलालेख मिले है, जिनमे से महोबे की विजय के लेखो को छोड कर बाकी सबके सब अजमेर के राज्य मे से ही मिले है । उनसे भी निश्चित है कि पृथ्वीराज की राजधानी अजमेर ही थी न कि देहली । देहली का गौरव मुसलमानी समय मे ही बढ़ा है । उसके पहले विग्रहराज के समय से ही देहली चौहानो के महाराज्य का एक सूबा था । चौहानो की राजधानी अजमेर थी, प्रांत के नाम से वे सपादलक्षेश्वर कहलाते थे और पुरखाओ की राजधानी के नाम से शाकभरीश्वर ।

कैमास युद्ध

'पृथ्वीराजरासे' मे लिखा है कि "शहाबुद्दीन गोरी देहली पर चढ़ाई करने के इरादे से चढ़ा और सिधु नदी के इस किनारे सवत ११४० चैत्रवदि ११ को आजमा इसकी खबर आने पर पृथ्वीराज ने अपने मन्त्री कैमास को बडी सेना और सामन्तो के साथ उससे लडने को भेजा । तीन दिन की लड़ाई के बाद कैमास शत्रु को पकड़ कर पृथ्वीराज के पास ले आया । पृथ्वीराज ने १२ हाथी और १०० घोड़े दड लेकर उसे छोड दिया ।" यह घटना भी कल्पित ही है, क्योंकि यदि उस सवत को अनंद विक्रम संवत माने तो प्रचलित विक्रम सवत (११४० + ९०-९१=) १२३०-३१ होता हैं । उस समय तक तो पृथ्वीराज राजा भी नही हुआ था और बालक था । शहाबुद्दीन गोरी उस समय तक हिंदुस्तान मे आया भी नही था । गज़नी और हेरात के बीच गोर का एक छोटा सा राज्य था, जिसकी राजधानी फीरोज कोह थी । हिजरी सन् ५५८ (वि० सं० १२२०-२१) मे वहाँ के मालिक सैफुद्दीन के पीछे उसके चचेरे भाई गियासुद्दीन मुहम्मद गोरी ने, जो बहाउद्दीन साम का बेटा था, वहाँ का राज्य पाया । उसका छोटा भाई शहाबुद्दीन गोरी था, जिसको उसने अपना सेनापति बनाया । हि० स० ५६९ (वि० सं० १२३०-३१) मे शहाबुद्दीन ने ग़ज़ो से ग़जनी छीनी जिससे उसके बड़े भाई ने उसको गज़नी का हाकिम बनाया । हि० स० ५७१ (वि० सं० १२३२–३३ मे हिंदुस्तान पर शहाबुद्दीन

ने चढ़ाई कर मुलतान लिया[४८]। इसके पहले उसकी कोई चढ़ाई हिंदुस्तान पर नही हुई थी। ऐसी दशा में वि० सं० १२३०-३१ मे पृथ्वीराज के मंत्री कैमास से उसका हार कर क़ैद होना विश्वास योग्य नही है।

इसमे संदेह नही कि कैमास (कदंबवास) पृथ्वीराज का मत्री था। राजपूताने मे "कैमासबुद्धि" कहावत होगई है। 'पृथ्वीराजविजय' मे उसकी बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि उसकी रक्षकता और सुप्रबन्ध से पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ[४९]। उसी समय पृथ्वीराज के नाना का भाई भुवनैकमल्ल भी अजमेर मे आगया और उसके आने पर हरिराज युवा हुआ[५०]। इन दोनो-कदंबवास और भुवनैकमल्ल-की बुद्धि तथा वीरता से राजकाज चलता था।

जैसे पितृ वैरि जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट ने विग्रहराज (वीसलदेव) के पीछे उसके पुत्र अपरगांगेय से राज छीन लिया, वैसे सुधवा के वश ने फिर कांचनदेवी के वश से राज छीनने का यत्न किया हो। मंत्री जब सोमेश्वर को ले आए, उस समय विग्रहराज का पुत्र नागार्जुन बहुत छोटा रहा हो, किंतु अब पृथ्वीराज की प्रबलता होने पर उसने विरोध का झंडा उठा कर गुडपुर का क़िला अपने हाथ कर लिया। यह गुडपुर संभव है कि दिल्ली के पास का गुडगांव हो और नागार्जुन पहले वहाँ का अजमेर की ओर से शासक हो, क्योकि उसकी

---

४८ तबकात-इ-नासिरी, पृ० ४४८-४६।

४६ स कदम्बवास इति वासवादिभि स्पृहणीयधीर्व्यसनमध्यपातिभि।
अवगाहते सहचरस्सुमन्त्रिनाम् परिरक्षितु क्षितिधरस्य सद्गुणान् ॥ (षडगुणान्) ॥ [३७]
सचिवेन तेन सकलासु युक्तिषु प्रवणेन तत्क्रमपिकर्म निर्ममे।
मुखपुष्करं शिशुतमस्य यत्प्रभो परिचुम्ब्यते स्मनवयौवनश्रिया ॥ [४४]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ६।

५० स पुनर्मदग्रज सुतासुतो भवन्द्भिभुजोपि रक्षति चराचर जगत्।
इति वार्तया कृतकुतूहल॰ क्रमाद् भुवन्नैकमल्ल इति बन्धुराययौ ॥ [६८]
प्राज्यप्रजाभ्युदयवर्धनदत्त [चित्ते दैवातिशायिबलयुग्भुव] नैकमल्ले।
संकीर्णबाल्ययुवभावगुणानुभाव पस्पर्श वर्महरता हरि [राजदेवम्] ॥ [८५]
वही, सर्ग ६,

माता भी वहीं रहती थी। पृथ्वीराज ने कदंबवास और भुवनैकमल्ल को साथ न लेकर स्वयं ही उस पर आक्रमण किया, क़िला घिर जाने पर नागार्जुन भाग गया और पृथ्वीराज उसकी माता को बंदी करके ले आया[५१]।

गोरी ने, जिसने पश्चिमोत्तर दिशा के बलवान् हयपति का गर्जन छीन लिया था, पृथ्वीराज के पास भी दूत भेजा। यह गोरी, राजमडल की श्री के लिये राहु बनकर आया हुआ कहा गया है। फिर दूत वर्णन देकर 'पृथ्वीराजविजय' में लिखा है कि गूर्जरों के नड्वल (नाडोल, मारवाड मे) नामक दुर्ग पर गोरियों ने आक्रमण किया, जहाँ सब राज्यांग छिप गए थे। पृथ्वीराज को इस पर क्रोध आया, किंतु कदंबवास ने कहा कि आपके शत्रु सुंदोपसुंद न्याय से स्वयं नष्ट हो जायेंगे, आप क्रोध न कीजिए। इतने ही में गूर्जर देश से पत्र लेकर दूत आया, जिससे जाना गया कि गोरी को गुर्जरो ने हरा कर भगा दिया है[५२]। बिजोलियाँ के लेख से पाया

---

५१ अथ कुविधियदृच्छयेव नागार्जुन इति निन्दितभिक्षुयोग्यनामा ।
निगडगृहपरिग्रहाय मातुर्ग्रह इव विग्रहराजवल्लभाया ॥ [७]
पितुरखिलनृपाविलङ्घ्याभाग्याद्भुतबलनिर्मथनैकवीरजन्मा ।
गुडपुरमिति दुर्गमध्यरोहन्मधुररसाहृतिदोहदेन वाल ॥[८]
गुडपुरमथ वेष्टयाचकार क्षितिपतिरुद्धतयुद्धतत्त्वदर्शी ॥[३०]
दयितमपि विमुच्य वीरधर्म क्वचिदपि विग्रहराजसूरयासीत् ॥[३२]
सममहितममहीपतेर्जनन्या सुभटघटा प्रभुरानिनायबध्वा ॥[३६]

५२ मरुदिव दिशि पश्चिमोत्तरायाममतिबलवानधिपस्समस्त एव ।
तदुपरि परमार्थपौरुष [ध्यो हय] पतिरेव तिरस्करोति सर्वान् ॥ [३९]
तमपि मुषितगर्जनाधिकारं विरसलघुं शारदभ्रवद्व्यधाद. ।
कदशनकुशलो गवामरिस्त्वासमुदितगोरिपदापदेशमुद्रः ॥ [४०]
स किल सकलराजमण्ड [लश्री]व्यवधिविधानविधुन्तुदत्वमैच्छत् ॥ [४१]
[व्यसृ]जदजयमेरुमेरुभूभृत्कुहरहरेरपि दूतमेकमग्रे ॥ [४२]

याजावद्राजाङ्गान्यपि दुर्गाङ्गे मग्नानीत्यर्थ । भयात्सर्वे दुर्ग प्रविष्टा [इ] ति

जाता है कि वीसलदेव (विग्रहराज) ने (नड्डुल) पाली आदि को बर्बाद किया था,"[५३]। इसलिये वहाँ वाले भी चौहानो के शत्रु थे। सुंदोपसुंद न्याय कहने का यही तात्पर्य है। गोरी का हमला गूर्जरो[५४] के अधिकार के नड्डूल पर भी हुआ हो। किंतु उसका पहला हमला हिन्दुस्तान की भूमि पर हि० स० ५६१[५] (वि० सं० १२३२-३) मे हुआ और उसके पहले कैमास का उससे लडने जाकर उसे (अनंद संवत् ११४०=वि० सं० १२३०-३१) मे हरा आना असम्भव है।

पृथ्वीराज का कन्नोज जाना

'पृथ्वीराजरासे' मे लिखा है कि 'कन्नौज के राजा विजयपाल ने देहली के

तात्पर्यम् (श्लोक ४८ पर जानराज को टीका, श्लोक नहीं रहा)।

पृथ्वीराजस्य तावन्निखिलदिगभयारम्भसरम्भसीमा-
भीमा भ्रूभङ्गभङ्गी विरचनसमय कार्मुकस्याचचले ॥ [५०]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग १०।

राजन्नत्रसरो नाय रुषा भाग्य निधे स्तव।" [४]
सुन्दोपसुन्दुभङ्गथा ते स्त्रय नद्दयंति शत्रव ॥ [५]
लेखहस्त.पुमान्प्राप्तो देव गूर्जरमण्डलात् ॥ [७]
गूर्जरोपद्रमाचख्यौ घोर गोरिपराभवम् ॥ [६]
वही, सर्ग ११।

५३ जाबालिपुर ज्वलापुर कृता पल्लिकापि पल्लीव।
नड्वलतुल्यं रोषान्नड्डू (ड्डू)ल येन सौ(शौ)र्येण ॥ २१ ॥
(बीजोलियाँ का लेख)

५४ विग्रहराज से लेकर शहाबुद्दीन की चढाई के समय तक नाडोल, पाली आदि पर के चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराजविजय में उस प्रदेश को गूर्जरमडल हुएन्तसग भी भीनमाल के इलाके को,जो नाडोल से बहुत दूर नहीं हैं, गूर्जर देश नाडोल का प्रदेश इस गूर्जर प्रांत के अन्तर्गत होने से अथवा वर्तमान गुजरात देश हो जाने से वहाँ वाले गुर्जर कहे गए हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि नाडौल गूर्जर जाति के अधिकार मे था।

तंवर राजा अनगपाल पर चढ़ाई की; परन्तु चौहान सोमेश्वर और अनंगपाल की सेना से वह पराजित हुआ, जिसके पीछे विजयपाल ने अनंगपाल की दूसरी कन्या सुन्दरी से विवाह किया। उसका पुत्र जयचंद हुआ। विजयपाल ने दिग्विजय करते हुए पूर्वी समुद्र तट पर कटक के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव पर चढ़ाई की। उसने उसका बडा स्वागत किया और बहुत से धन के साथ अपनी पुत्री भी उसके भेंट करदी। इसका विवाह विजयपाल ने अपने पुत्र जयचंद के साथ कर दिया और उसके संयोगता नामक कन्या हुई। विजयपाल वहाँ से आगे बढ़ कर सेतुबंध तक पहुंचा। वहाँ से लौटते हुए उसने तैलंग, कर्णाट, मिथिला, पुंगल, आसेर, गुड, मगध, कलिंग आदि के राजाओ को जीतकर पट्टनपुर (अनहिलवाड़े) के राजा भोला भीम पर चढ़ाई की। भीम ने अपने पुत्र के साथ नजराना भेजकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार सब राजाओ को उसने जीत लिया, परन्तु अजमेर के चौहान राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र जयचद कन्नौज का राजा हुआ। उसने राजसूय यज्ञ करना निश्चय कर सब राजाओ को उसमे उपस्थित होने के लिये बुलाया। उसने पृथ्वीराज को भी बुलावा भेजा; परन्तु उसने उसकी अधीनता न मान कर वहाँ जाना स्वीकार न किया, इतना ही नही, किन्तु जयचन्द की धृष्टता से क्रुद्ध होकर उसके भाई बालुकराय पर चढ़ाई कर दी। उसने बालुकराय के इलाके को उजाड़ कर उसके मुख्य नगर खोखंदपुर को लूटा और लडाई मे उसको मार डाला। उसकी स्त्री रोती हुई कन्नौज मे जयचन्द के पास पहुंची और उसने चौहान के द्वारा अपने सर्वनाश होने का हाल कहा। जयचन्द ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार किया, परन्तु उसके सलाहकारो ने यह सलाह दी कि मेवाड़ के राजा समरसिंह को अपने पक्ष मे लिए बिना पृथ्वीराज को जीतना कठिन है। इसपर उसने रावल समरसिंह को यज्ञ मे बुलाने के लिये पत्र लिखा और बहुत कुछ लालच भी बतलाया, परन्तु उसने एक न मानी। इस पर जयचन्द ने समरसिंह और पृथ्वीराज दोनो पर चढ़ाई करना निश्चय किया और पृथ्वीराज से अपने नाना अनगपाल का देहली का आधा राज्य भी लेना चाहा। फिर उसने अपनी सेना के दो विभाग कर एक को पृथ्वीराज पर देहली और दूसरे को समरसिंह पर चित्तौड़ भेजा। दोनो स्थानों से उसकी फौजे हार खाकर लौटी। पृथ्वीराज उसके यज्ञ मे न गया, इसलिये उसने पृथ्वीराज की सोने की मूर्ति बनवा कर द्वारपाल की जगह खडी

करवाई। राजसूय के साथ जयचन्द की पुत्री संजोगता का स्वयंबर भी होने वाला था। उस राजकुमारी ने पृथ्वीराज की वीरता का हाल सुन रक्खा था जिससे उसी को अपना पति स्वीकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। स्वयंबर के समय उसने वरमाला पृथ्वीराज की उस मूर्ति के गले मे डाली, जिस पर क्रुद्ध हो जयचन्द ने उसको गंगातट के एक महल मे क़ैद कर लिया। इधर पृथ्वीराज ने अपनी मूर्ति द्वारपाल की जगह खडी किए जाने और संजोगता का अपने पर अनन्य प्रेम होने के समाचार पाकर कन्नौज पर चढ़ाई करदी। वहाँ पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमे कन्नौज के राजा तथा उसके अनेक सामंतो आदि के दलबल का सहार कर पृथ्वीराज सजोगता को लेकर देहली लौटा। जयचंद, इससे बहुत ही लज्जित हुआ, किंतु पृथ्वीराज को देहली में आए दो दिन भी नही हुए थे कि जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकठ को वहां भेज कर संजोगता के साथ पृथ्वीराज का विधि पूर्वक विवाह करा दिया।'

'रासे' मे पृथ्वीराज के कन्नौज जाने का संवत् ११५१ दिया है जिसको अनंद विक्रम संवत् मान कर पंड्याजी ने सनंद (प्रचलित) विक्रम सं० (११५१ + ९० ९१=) १२४१-४१ मे कन्नौज की लडाई होना माना है, परंतु कन्नौज की गद्दी पर विजयपाल (विजयचंद) के पुत्र जयचंद का बैठना, और उसका तथा पृथ्वीराज का उक्त सवत् मे विद्यमान होना,-इन दो बातो को छोड़ कर ऊपर लिखा हुआ 'पृथ्वीराज रासे' का सारा कथन ही कल्पित है। सोमेश्वर के समय देहली पर अनंगपाल तंवर का राज्य ही न था क्योंकि विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य तो अजमेर के चौहानो के अधिन होगया था (देखो ऊपर पृ० ४०५)। अतएव अनंगपाल की पुत्री सुन्दरी का विवाह विजयपाल के साथ होने का कथन वैसा ही कल्पित है, जैसा कि उसकी बडी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ होने का। विजयपाल की अजमेर के चौहानो के सिवाय हिन्दुस्तान के सेतुबंध तक के सब राजाओ को जीतने की बात भी निमूल है। विजयपाल के समय कटक पर सोमवशी मुकुन्ददेव का नहीं; किन्तु गंगावंशियो का राज्य था। ऐसे ही उसके समय पट्टनपुर (पाटन; अनहिलवाड़ा=गुजरात की राजधानी) का राजा भोला भीम नही; किन्तु कुमारपाल था; क्योंकि कन्नौज के विजयचन्द्र ने वि० स० १२११

के अनंतर ही राज पाया, तथा ११२६ मे उसका देहान्त हुआ [५५]। उधर गुजरात का राजा वि० सं० ११९९ से १२३० तक कुमारपाल था। भोला भीम तो वि० सं० १२३५ मे बाल्यावस्था मे राजा हुआ था। जयचन्द के समय मेवाड़ (चित्तौड़) का राजा रावल समरसी नही, किन्तु सामंतसिंह और उसका छोटा भाई कुमारसिंह थे [५६]। कुमारसिंह से पाँचवी पुश्त मे मेवाड़ का राजा समरसिंह हुआ[6], जो वि० सं० १३५८ तक तो जीवित था [५७]। ऐसे ही जयचन्द के राजसूय यज्ञ करने और संजोगता के स्वयंबर की कथा भी निरी कल्पित ही है। जयचन्द बडा ही दानी राजा था, उसके कई दान-पत्र अब तक मिल चुके है, जिनसे पाया जाता है कि वह प्रसंग प्रसंग पर भूमिदान किया करता था। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता तो ऐसे महत्त्व के प्रसग पर तो वह कितने ही गाँव दान करता, परन्तु उसके सम्बन्ध का न तो अब तक कोई दान पत्र मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक मे उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच की कन्नौज की लड़ाई और संजोगता को लाने की कथा भी गढ़ंत ही है, क्योंकि उसका और कहीं उल्लेख नही मिलता। ग्वालियर के तोमर (तंवर) वंशी राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि नयचन्द्र सूरि ने वि० सं० १४४० के आस पास 'हंमीर महाकाव्य' रचा, जिसमे पृथ्वीराज का विस्तृत वृत्तांत दिया है। ऐसे ही उक्त कवि ने अपनी रची हुई, 'रंभामंजरी' नाटिका' का नायक जयचद्र

---

५५ विजयचन्द्र के पिता गोविंदचन्द्र का अंतिम दान-पत्र वि०सं० १२११ का मिला है (एपि० इडि० जिल्द ४, पृ० ११६) और विजयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि०स० १२२४ का है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ११८)। विजयचन्द्र का अतिम दान-पत्र वि०सं० १२२५ का है, जिसमे जयचन्द्र को युवराज लिखा है (इंडि०ऍटि०, जिल्द १५, पृष्ठ ९७) और जयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि०सं० १२२६ का है, जिसमे उसके अभिषेक का उल्लेख है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० १२१)।

५६ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन सस्करण, भाग १, पृ० २५-२९।

५७ ओ॥ सवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्यां ‧ ‧ महाराजाधिराजश्रीसमरसिंह-[देवक]ल्याणविजयराज्ये। (चित्तौड के रामपोल दरवाजे के सामने नीम के पेड़वाले चबूतरे पर पडा हुआ शिलालेख, जो मुझे ता० १९-१२ १९२० को मिला, अप्रकाशित)॥

को बनाया है और जयचन्द्र के विशेषणो से लगभग दो पंत्रे भरे है; परन्तु उन दोनो काव्यो मे कही भी पृथ्वीराज का और जयचन्द्र के बीच की लड़ाई, जयचन्द के राजसूय यज्ञ या संजोगता के स्वयंबर का उल्लेख नही किया। इससे यही पाया जाता है कि वि० सं० १४४० के आस-पास तक तो ये कथाएँ गढ़ी नही गई थीं। ऐसी दशा मे वि० सं० १२४१-४२ मे पृथ्वीराज के कन्नौज जाकर जयचन्द से भीषण युद्ध करने का कथन भी मानने के योग्य नही।[7]

अंतिम लड़ाई

इस लडाई का संवत् 'पृथ्वीराजरासे' मे ११५८ दिया है जिसको अनंद संवत् मानने से इस लड़ाई का वि० स० (११५८+६०—६१=) १२४८-४६ मे मे होना निश्चित होता है। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच की दूसरी लड़ाई का इसी वर्ष होना फारसी तवारीखो से भी सिद्ध है। इसी लड़ाई के बाद थोड़े ही दिनो मे पृथ्वीराज मारा गया, परन्तु इस पर से यह नही माना जा सकता कि अनंद विक्रम संवत् की कल्पना ठीक है, क्योंकि पंड्याजी का सारा यत्न इसी एक संवत् को मिलाने के लिये ही हुआ है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार पृथ्वीराज का देहांत (१११५+४३=) ११५८ मे होना पाया जाता है। यह संवत् उक्त घटना के शुद्ध संवत् से ६१ वर्ष पहले का होता है। इसी अन्तर को मिटाने के लिये पंड्याजी को पहले 'भटायत संवत्' खड़ा कर उसका प्रचलित विक्रम सं० से १०० वर्ष पीछे चलना मानना पड़ा। परतु वैसा करने मे पृथ्वीराज की मृत्यु वि० स० १११५+४३+१००=) १२५८ मे आती थी। यह संवत् शुद्ध सवत् से ६ वर्ष पीछे पड़ता था। जिससे पृथ्वीराज के जन्म संवत् सबंधी 'रासे' के दोहे के पद 'पंचदह' (पंच-दश) का अर्थ पड्याजी को 'पांच' कर पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १२४८ मे बतलानी पड़ी। जब 'पचदह' का अर्थ 'पांच' करना लोगो ने स्वीकार न किया, तब पंड्याजी ने उक्त दोहे के 'विक्रम शाक अनंद' से 'अनंद' का अर्थ 'नवरहित' और उस पर से 'नवरहित सौ' अर्थात् ६१ करके अनंद विक्रम संवत का सनंद विक्रम संवत् से ६०। ६१ वर्ष पीछे प्रारभ होना मान लिया, इतना ही नही परंतु 'पृथ्वी-राजरासे' तथा चौहानो की ख्यातो आदि मे दिए हुए जिन भिन्न-भिन्न घटनाओ के संवतो मे १०० वर्ष मिलाने से उनका शुद्ध संवतो से मिल जाना पहले बतलाया था, उन्हा का फिर ६१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवतो से मिल जाना बतलाना पड़ा।

परंतु एक ही अशुद्ध संवत् एक बार सौ वर्ष मिलाने और दूसरी बार ९०-९१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवत् बन जाय इस कथन को इतिहास स्वीकार नही कर सकता। इससे सवत् के सर्वथा अशुद्ध होने तथा ऐसा कहने वाले की विलक्षण बुद्धि का ही प्रमाण मिलता है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार वि० सं० ११५८ पृथ्वीराज की मृत्यु का संवत् नही, किंतु लड़ाई का संवत् है। मृत्यु के विषय में तो यह लिखा है कि "सुल्तान पृथ्वीराज को कैद कर ग़ज़नी लेगया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा डाली। फिर चद योगी का भेष धारण कर ग़ज़नी पहुंचा और उसने सुल्तान से मिल कर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार बाण चलाकर सुल्तान का काम तमाम किया। फिर चंद ने अपने जुड़े में से छुरी निकालकर उससे अपना पेट चाक किया और उसे राजा को देदिया। पृथ्वीराज ने भी वही छुरी अपने कलेजे मे भोकली। इस प्रकार शहाबुद्दीन, पृथ्वीराज और चंद की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा"। यह सारा कथन भी कल्पित है; क्यों कि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से नही, किंतु हिजरी सन् ६०२ तारीख २ शाबान (वि० सं० १२६३ चैत्र सुदि ३) को गक्खरो के हाथ से हुई थी। वह जब गक्खरों को परास्त कर लाहौर से ग़ज़नी को जा रहा था। उस समय धमेक के पास नदी के किनारे बाग़ में नमाज़ पढ़ता हुआ मारा गया। इसी तरह पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी देहली की गद्दी पर नही बैठा। किंतु उसके पुत्र गोविदराज को शहाबुद्दीन ने अजमेर का राजा बनाया था। उसने शहाबुद्दीन की अधीनता स्वीकार की, इसको न सह कर पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने उससे अजमेर छीन लिया और गोविदराज रणथंभोर मे जा बसा।

यहां तक तो पंड्याजी के दिए हुए पृथ्वीराजरासे के संवतो क च हुई। अब उनके मिलाए हुए चौहानो के ख्यातो के संवतो की जांच की जाती है।

अस्थिपाल का आसेर प्राप्त करना

पंड्याजी कर्नल टॉड के कथनानुसार अस्थिपाल के आसेर प्राप्त करने का सवत् ९८१ बतलाते हैं। वे उसको भटायत संवत् मान कर उसका शुद्ध सवत १०८१ मानते है। चौहानो की ख्यातो के आधार पर मिश्रण सूर्य्यमल्ल के 'वंश-

भास्कर' तथा उसी के सारांश रूप 'वंशप्रकाश' मे चौहानों की वंशावली दी गई है। उनसे पाया जाता है कि 'चाहमान (चौहान) से १४२ वी पुश्त मे ईश्वर हुआ, उसके ८ पुत्रो मे से सब से बड़ा उमादत्त तो अपने पिता के पीछे सांभर का राजा हुआ और आठवें पुत्र चित्रराज के चौथे बेटे मौरिक मे मोरी (मौर्य , वंश चला। चित्रांग नामक मोरी ने चित्तौड़ का किला बनवाया। ईश्वर के पीछे उमादत्त, चतुर और सोमेश्वर क्रमश: सांभर के राजा हुए। सोमेश्वर के दो पुत्र भरथ और उरथ हुए। भरत से २१ वी पुश्त मे सोमेश्वर हुआ, जिसने देहली के राजा अनगपाल की पुत्री से विवाह किया, जिससे संवत् १११५ मे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उधर उरथ से १० वी पुश्त मे भौमचंद्र हुआ जिसको चन्द्रसेन भी कहते थे। चंद्रसेन (भौमचंद्र) का पुत्र भानुराज हुआ, जिसका जन्म स० ४८१ मे हुआ[५८]। वह अपने साथियो के साथ जंगल मे खेल रहा था, उस समय गंभीरारभ राक्षस उसको खा गया; परन्तु उसकी कुलदेवी आशापुरा ने उसकी अस्थियाँ एकत्र कर उसे फिर जीवित कर दिया, जिससे उसका दूसरा नाम अस्थिपाल हुआ। उसके वंशज अस्थि अर्थात् हड्डियो पर से हाडा कहलाए। गुजरात की राजधानी अनहिलपुर पाटण (अनहिलवाडे) के राजा गहिलकर्ण (कर्ण घेला, गहिल=पागल; गुजराती मे पागल को 'घेला', राजस्थानी मे 'गहला' कहते है) के पुत्र जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ मे हुआ[५९]। गहिलकर्ण के पीछे वह गुजरात का राजा हुआ। उसने अपने

---

५८ बशप्रकाश मे १४८१ छपा है (पृ० ५३), जो अशुद्ध है। वंशभास्कर मे ४८१ ही है (सक जँहँ विक्रमराज को, वसुधा वारन वेद ४८१। भौमचन्द सुत तँहँ भयो, अरिन करन उच्छेद—वश भास्कर, पृ० १४३६)।

५६ अनिहलपट्टन नैर इत, जनपद गुज्जरजत्थ।
गहिलकर्ण चालुक्यके, सुत जो कहिय समत्थ ॥ ६ ॥
सोहु जनक जब स्वर्ग गो, भो तब पट्टनि भूप।
जास नास जयसिंह जिहिं, राज्य करिय अनुरूप ॥ ७ ॥
क्रम पढि मात्र कलंदिका, जोग रीति सब जानि।
सिद्धराज यह नाम जिहिं, पायो उचित प्रमानि ॥ ८ ॥
जहँ सक विक्रमराज को, ससि चउवेद ४४१ समत्त।

पूर्वज कुमारपाल की तरह जैनधर्म स्वीकार किया और व्याकरण (अष्टाध्यायी), अनेकार्थ नाममाला, परिशिष्टपद्धति (परिशिष्टपर्व), योगसार आदि अनेक ग्रंथों के कर्त्ता श्वेतांबर जैन सूरि हेमचंद्र को अपना गुरु माना। जयसिंह के गोभिलराज आदि ८ पुत्र हुए। गोभिलराज जयसिंह के पीछे गुजरात का राजा हुआ। चौहान अस्थिपाल ने गोभिलराज पर चढ़ाई की, गोभिलराज की हार हुई और अंत मे दो करोड़ द्रम्म देकर उसने अस्थिपाल से सुलह करली। फिर अस्थिपाल ने मोरवी (काठिआवाड़ मे) के झाला कुबेर की पुत्री उमा के साथ विवाह किया, (भुज (कच्छ) की राजधानी) के यादव राजा भीम को दड दिया और वह अनेक देशो को विजय कर अपने पिता के पास आया। अपने पिता (भौमचंद्र) के पीछे वह आसेर का राजा हुआ।"

चौहानो की ख्यातो के आधार पर लिखा हुआ ऊपर का सारा वृत्तांत कल्पित है; क्योकि उसके अनुसार मोरी या मौर्य वश के प्रवर्तक का चाहमान (चौहान) से १४३ वीं पुश्त में होना मानना पड़ता है, जो असम्भव है। मौर्य वंश को उन्नति देने वाला चन्द्रगुप्त ई० सं० पूर्व की चौथी शताब्दी मे हुआ तो चाहमान को उससे अनुमान ३००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। यदि चाहमान इतना पुराना होता तो पुराणों मे उसकी वशावली अवश्य मिलती। चाहमान का अस्तित्व ई० स० की सातवी शताब्दी के आसपास माना जाता है। चौहानो के प्राचीन शिलालेखो, दानपत्रों, एवं पृथ्वीराजविजय, हंमीरमहाकाव्य, सुर्जनचरित आदि ऐतिहासिक पुस्तको मे कही भी भरथ और उरथ के नाम नही मिलते। गुजरात के सोलंकियो में कर्ण नाम के दो राजा हुए। एक तो जयसिंह (सिद्धराज) का पिता, जिसने वि० सं० ११२० से ११५० तक राज्य किया और दूसरा बाघेला (व्याघ्रपल्लीय सोलंकियो की एक शाखा) कर्ण हुआ, जो सारंगदेव का पुत्र था और जिसको गुजरात के इतिहास-लेखक कर्ण घेला (पागल) कहते है। उसने वि० सं० १३५२ से १३५६ से कुछ पीछे तक राज्य किया और उसी से गुजरात का राज्य मुसलमानो ने छीना। जयसिंह (सिद्धराज) का पिता कभी 'घेला' नही कहलाया; परंतु भाटो को अंतिम कर्ण का स्मरण था, जिससे जयसिंह के पिता को

जनम तत्थ जयसिंह को, नृप जानहु अनुरत्त ॥ ६ ॥

वंशभास्कर, पृ० १४२४।

भी गहल (घेला) लिख दिया। जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ मे नहीं हुआ, किंतु उसने वि० स० ११५० से ११९९ तक राज्य किया था। जयसिंह के गोभिलराज आदि आठ पुत्रो का होना तो दूर रहा, उसके एक भी पुत्र नहीं हुआ। कुमारपाल जयसिंह का पूर्व पुरुष नही, किंतु कुटुंब मे भतीजा था और जयसिंह के पुत्र न होने के कारण वह उसका उत्तराधिकारी हुआ। ऐसी दशा मे अस्थिपाल का वि० सं० ४८१ (वंशभास्कर के अनुसार) या ९८१ (कर्नल टॉड और पड्याजी के अनुसार) मे होना सर्वथा असंभव है। भाटो की वंशावलियां देखने से अनुमान होता है कि ई० स० की १५ वी शताब्दी के आस-पास उन्होने उसका लिखना शुरु किया और प्राचीन इतिहास का उनको ज्ञान न होने के कारण उन्होने पहले के सैंकड़ो नाम उनमे कल्पित धरे। ऐसे ही उनके पुराने साल संवत् भी कल्पित ही सिद्ध होते है। चौहानो मे अस्थिपाल नामका कोई राजा ही नहीं हुआ। हाड़ा नाम की उत्पत्ति तक से परिचित न होने के कारण भाटो ने अस्थिपाल नाम घढंत किया है। उनको इस बात का भी पता न था कि चौहानो की हाड़ा शाखा किस पुरुष से चली। मूहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात मे लिखा है कि "नाडोल के राजा राव लाखण (लक्ष्मण) के वंश मे आसराज (अश्वराज) हुआ, जिसका पुत्र माणवराव हुआ। उसके पीछे क्रमशः सभराण, जैतराव, अनंगराव, कुंतसीह (कुंतसिंह), विजैपाल, हाडो (हरराज) बांगो (बंगदेव) और देवो (देवीसिंह) हुए। देवो ने मीणो से बूंदी छीन ली [६०]।" नेणसी का लेख भाटो की ख्यातों से अधिक विश्वास योग्य है। उक्त हाडा (हरराज) के वंशज हाडा कहलाए हैं। नाडोल के आसराज (अश्वराज) के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११६७ का मिल चुका है [६१]। अतएव उसके सातवें वंशधर हाडा का वि० सं० १३०० के आसपास विद्यमान होना अनुमान किया जा सकता है। उसी हाडा (हरराज) के लिये भाटो ने अनेक कृत्रिम नामो के साथ अस्थिपाल नाम भी कल्पित किया है।

वीसलदेव का अनहिलपुर प्राप्त करना।

कर्नल टॉड और पड्याजी ने वीसलदेव के अनहिलपुर प्राप्त (विजय) करने

---

६० मूहणोत नैंणसी की ख्यात (हस्तलिखित), पत्र २०, पृ० २।

६१ एपि० इंडि० जि० ११, पृ० २९।

का संवत् ९८६ लिखा है, उसको भटायत संवत् मानने से प्रचलित वि० सं० १०८६ और अनंद विक्रम संवत् मानने से वि० सं० १०७६=७७ होता है। चौहानों के बोजोल्यां आदि के शिलालेखो तथा 'पृथ्वीराजविजय' आदि ऐतिहासिक पुस्तको से सांभर तथा अजमेर के चौहानो में विग्रहराज या वीसलदेव नाम के चार राजाओ का होना पाया जाता है; परन्तु भाटो की वंशावलियो मे केवल एक ही वीसलदेव नाम मिलता है। जिस विग्रहराज (वीसलदेव) ने गुजरात पर चढ़ाई की, वह विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरा था; जिसके समय का हर्षनाथ (शेखावाटी मे) का वि० स० १०३० का शिलालेख भी मिल चुका है। 'पृथ्वीराजविजय' मे उक्त चढाई के संबंध मे लिखा है कि "विग्रहराज की सेना ने बड़ी भक्ति के कारण बाणलिंग ले लेकर नर्मदा नदी को अनर्मदा (बाणलिंगरहित) बना दिया। गुर्जर (गुजरात के राजा) मूलराज ने तपस्वी की नांईं यशरूपी वस्त्र को छोड़कर कंथा दुर्ग (कथकोट का किला, कच्छ में, तपस्वी के पक्ष मे कंथा अर्थात् गुदड़ी) मे प्रवेश किया। विग्रहराज ने भृगु कच्छ (भड़ौच) में आशापुरी देवी का मंदिर बनवाया[६२]"। इस से पाया जाता है कि विग्रहराज (वीसलदेव) क चढ़ाई गुजरात के राजा मूलराज पर हुई थी। मूलराज भाग कर कच्छ के कंथकोट के किले मे जा रहा और विग्रहराज (वीसलदेव) आगे बढ़ता हुआ भडौंच तक पहुंच गया। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्धचिंतामणि' मे इस चढ़ाई का जो वृत्तांत दिया है, उसका

---

६२ सूनुर्विग्रहराजोऽस्य सापराधानपि द्विषः।
दुर्बला इत्यानुध्यायन्नक्षत्रिय इवाभवत् ॥ [४७॥]

ग्रहणद्भि परया भक्त्या बाणलिङ्ग परंपरा।
अनर्मदेव यत्सैन्यैर्निरमीयत नर्मदा ॥ [५०॥]

त्यक्तं तपस्विना [स्वच्छ] यशोशुक मितीवयः।
गूर्जरं मूलराजाख्यं कंथादुर्गमवीविशत् ॥ [५१॥]

व्यधादाशापुरीदेव्या भृगुकच्छे सधाम तत्।
यद्रेवास्पृष्ट सोपानं चन्द्रश्चुंबति मूर्धनी ॥ [५३॥]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५।

सारांश यह है कि "एक समय सपादलक्षीय[६३] (चौहान) राजा युद्ध करने की इच्छा से गुजरात की सीमा पर चढ़ आया। उसी समय तैलंग देश के राजा सेनापति बारप ने भी मूलराज पर चढ़ाई करदी। मूलराज अपने मंत्रियो की इस सलाह से कि जब नवरात्र आते ही सपादलक्षीय राजा अपनी कुलदेवी का पूजन करने के लिये अपनी राजधानी शाकंभरी (सांभर) को चला जायगा, तब बारप को जीत लेंगे, कंथादुर्ग (कथकोट मे) मे जा रहा; परंतु चौहान ने गुजरात मे ही चातुर्मास व्यतीत किया और नवरात्र आने पर वहीं शाकंभरी नामक नगर बसा, अपनी कुलदेवी की मूर्ति मँगवा कर वही नवरात्र उत्सव किया। इस पर मूलराज अचानक चौहान राजा के सैन्य मे पहुंचा और हाथ मे खड्ग लिए अकेला उसके तंबू के द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने द्वारपाल से कहा कि अपने राजा को खबर दो कि मूलराज आता है। मूलराज भीतर गया तो राजा ने पूछा कि, 'आप ही मूलराज है? मूलराज ने उत्तर दिया कि 'हां'। इतने मे पहले से संकेत पर तय्यार रक्खे हुए ४००० पैदलो ने राजा के तंबू को घेर लिया और मूलराज ने चौहान राजा से कहा कि "इस भूमंडल में मेरे साथ लडने वाला कोई वीर पुरुष है या नही, इसका मैं विचार कर रहा था। इतने मे तो आप मेरी इच्छा के अनुसार आमिले, परंतु भोजन मे जैसे मक्खी गिर जाय वैसे तैलग देश के राजा तैलप का सेनापति मुझ पर चढ़ाई कर इस युद्ध के बीच विघ्न सा होगया है, इसलिये जब तक मै उसको शिक्षा न दे लूं, तब तक आप ठहर जावें; पीछे से हमला करने की चेष्टा न करें। मै इससे निपट कर आप से लड़ने को तय्यार हूँ।" इस पर चौहान राजा ने कहा कि आप राजा होने पर भी एक सामान्य पैदल की नांई अपने प्राण की पर्वाह न कर शत्रु के घर मे अकेले चले आते हो; इसलिये मैं जीवन पर्यंत आप से मैत्री करता हूं।" मूलराज वहाँ से चला और बारप की सेना पर टूट पड़ा। बारप मारा गया और उसके घोडे और हाथी मूलराज के हाथ लगे। दूतो के द्वारा मूलराज की इस विजय की खबर सुन कर चौहान राजा भाग गया[६४]।"

---

६३ साभर तथा अजमेर के चौहानो के अधीन का देश 'सपाद लक्ष' कहलाता था। मेरुतुंग ने चौहान राजा का नाम नहीं दिया, परन्तु उसको 'सपादलक्षीय नृपति' (सपादलक्ष का राजा) ही कहा है, जो 'चौहान राजा' का सूचक है।

६४ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ४०-४३।

'प्रबंधचिंतामणि' का कर्ता चौहान राजा का भाग जाना लिखता है, वह विश्वास के योग्य नही है, क्योकि उसी के लेख से यही पाया जाता है कि मूलराज ने उससे डर कर ही कंथकोट के क़िले मे शरण ली थी। संभव तो यही है कि मूलराज ने हार कर अंत मे उससे संधि कर उसे लौटाया हो।

नयचंन्द्र सूरि अपने 'हंमीरमहाकाव्य' में लिखता है कि "विग्रहराज (वीसलदेव) ने युद्ध मे मूलराज को मारा और गुर्जरदेश (गुजरात) को जर्जरित कर दिया[६५]"। नयचंद्र सूरि भी मेरुतुंग की नांई पिछला लेखक है, इसलिये उसके मूलराज के मारे जाने का कथन यदि हम स्वीकार न करे तो भी मूलराज का हारना और गुजरात का बर्बाद होना निश्चित है। हेमचंद्र सूरि ने अपने 'द्व्याश्रयकाव्य' मे विग्रहराज और मूलराज के बीच की लड़ाई का उल्लेख भी नही किया, जिसका कारण भी अनुमान से यही होता है कि इस लड़ाई मे मूलराज की हार हुई हो। 'द्व्याश्रयकाव्य' मे गुजरात के राजाओ की विजय का वर्णन विस्तार से लिखा गया है और उनकी हार का उल्लेख तक पाया नही जाता। यदि विग्रहराज हार कर भागा होता तो 'द्व्याश्रय' मे उसका वर्णन विस्तार से मिलता।

भाटो की ख्यातो और वंशभास्कर मे एक ही वीसलदेव का नाम मिलता है और उसको गुजरात के राजा बालुकराय से लड़नेवाला अजमेर के पास के वीसलसागर (वीसल्या) तालाब का बनानेवाला, अजमेर का राजा तथा आनोजी (अर्णोराज) का दादा माना है; जो विश्वास के योग्य नही। बालुकराय पाठ भी अशुद्ध है। शुद्ध पाठ 'चालुक (चौलुक्य) राय' होना चाहिए। जैसे 'प्रबंधचितामणि मे विग्रहराज (वीसलदेव) के नाम का उल्लेख न कर उसको 'सपादलक्षीय नृपति' अर्थात् सपादलक्ष देश का राजा कहा है, वैसे ही भाटो आदि ने गुजरात के राजा का नाम नही दिया, परंतु उसके वश 'चालुक' के नाम से

---

६५ अथोद्दिदीपेऽतयनिग्रहाय बद्धाग्रहो विग्रहराजभूप ।
द्विधापि यो विग्रहमाजिभूमावभंजयद्वैरिमहिपतीनाम् ॥ ६ ॥ ॥
अप्युग्रवीरव्रत वीरवीरसंसेव्यमानक्रमपद्मयुग्म ।
श्रीमूलराजं समरे निहत्य यो गुर्जरं जर्जरता मनैषीत् ॥ ८ ॥
हमीरमहाकाव्य, सर्ग २ ।

उसका परिचय दिया है। उसका नाम ऊपर के अवतरणो मे मूलराज होना निश्चि ।

मूलराज के अब तक तीन ताम्रपत्र मिले है जिनमे से पहला वि० सं० १०३० भाद्रपद शुदि ५ का[६६], दूसरा वि० सं० १०४३ माघ बदि १५ (अमावास्या का[६७] और तीसरा वि०सं० १०५१ माघसुदि १५ का[६८] है। विग्रहराज (विसलदेव) दूसरे का उपर्युक्त हर्ष नाथ का शिलालेख वि० सं० १०३० का है, जिसमे मूलराज के साथ की लड़ाई का उल्लेख नही है[६९]। अतएव यह लड़ाई उक्त संवत के पीछे हुई होगी। मूलराज की मृत्यु वि० सं० १०५२ मे हुई, इसलिये विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरे की गुजरात पर की चढ़ाई वि० सं० १०५२ के बीच किसी वर्ष मे होनी चाहिए। पंड्याजी का भटायत या अनद विक्रम संवत ६८६ क्रमशः प्रचलित वि० सं० १०८६ और १०७६-७७ होता है। उक्त संवतो मे गुजरात का राजा मूलराज नहीं किंतु; भीमदेव पहला था। ऐसे ही उस समय सांभर का राजा विग्रह-राज (वीसलदेव) दूसरा भी नहीं था; क्योकि उसके पुत्र दुर्ल्लभराज (दूसरे) का शिलालेख वि० सं० १०५६ का मिल चुका है। इसलिये भटायत वा अनंद विक्रम संवत् का हिसाब यहाँ पर भी किसी प्रकार बंध नही बैठता।

जोधपुर के राजाओं के संवत्।

पंड्याजी ने 'पृथ्वीराज रासे' की टिप्पणी मे लिखा है कि जोधपुर राज्य के काल-निरूपक-राजा जयचंदजी को सं० ११३२ और शिवजी और सैतरामजी को सं०११६८ मे ''होना आज तक निःसदेह मानते है और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ९१ वर्ष के अन्तर के जोडने से सनंद विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाते है, इसकी जाँच के लिये जोधपुर की भाटो की ख्यात के अनुसार जैचन्द से लगा कर राव मालदेव तक के प्रत्येक राजा की गद्दीनशीनी के संवत नीचे लिखे जाते है-

६६ विएना ओरिएंटल जर्नल, जि० ५, पृ० ३०० ।

६७ इंडि० एंटि०, जि० ६, पृ० १९१ ।

६८ विएना ओरिएंटल जर्नल, जि० ५, पृ० ३०० ।

६९ वही, जि० २, पृ० ११९ ।

राजा का नाम			गद्दीनशीनी का संवत्
जयचन्द (कन्नौज का)	...	...	११३२
बरदाई सेन	...	...	११६५
सेतराम	...	...	११८३
सीहा (शिवा)	...	...	१२०५
आस्थान (मारवाड़ मे आया)	...	...	१२३३
धूहड	...	...	१२४८
रायपाल	...	...	१२८५
कन्नपाल	...	...	१३०१
जालणसी	...	..	१३१५
छाडा	.	..	१३३६
तीडा (टीडा)	...	..	१३५२
सलखा	...	..	१३६६
वीरम	...	...	१४२४
चूँडा	...	...	१४४०
कान्ह	...	...	१४६५
सत्ता	...	...	१४७०
रणमल	...	...	१४७४
जोधा	...	...	१५१०
सातल	...	...	१५४५
सूजा	...	...	१५४८
गांगा	...	...	१५७२
मालदेव		.	१५८८-१६०६

इन संवतो को देखने से पाया जाता है कि उनमे से किसी दो के बीच ६० या ६१ वर्ष का कहीं अन्तर नही है, जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से यहाँ तक तो अनद विक्रम संवत् और आगे सनंद (प्रचलित) विक्रम सवत् है । अतएव ये सब संवत् एक ही संवत् मे होने चाहिए, चाहे वह अनंद हो चाहे सनंद । परन्तु राव जोधा ने राजा होने के बाद वि० सं० १५१५ मे जोधपुर बसाया यह सर्व मान्य है । इसलिये जोधा की गद्दीनशीनी का संवत् १५१० प्रचलित विक्रम

संवत् ही है। यदि उसको अनंद विक्रम संवत् माने तो उसके राज पाने का ठीक संवत् १६००-१ मानना पड़ेगा, जो असंभव है। इसी तरह राव मालदेव की शेरशाह सूर से वि०सं० १६०० में लड़ाई होना भी निश्चित है इसलिये मालदेव के राज पाने का संवत् १५८८ भी प्रचलित विक्रमी संवत् है। अतएव ऊपर लिखे हुए जोधपुर के राजाओ के सब सवत भी अनंद नहीं, किंतु सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् ही है और चूँडा के पहले के बहुधा सब संवत भाटो ने इतिहास के अज्ञान की दशा मे कल्पित धर दिए है। बीठू (जोधपुर राज्य मे पाली से १४ मील पर) के लेख से पाया जाता है कि जोधपुर के राठौड़ राज्य के संस्थापक सीहा की मृत्यु सं० १३३० कार्तिक वदि १२ को हुई[७०] और तिरसिंघड़ी (तिंगडी-जोधपुर राज्य के पचपद्रा जिले मे) के लेख से आसथामा (अश्वत्थामा,आसथान) के पुत्र धूहड़ का देहांत वि०सं०१३६३ मे होना पाया जाता है[७१]। इसलिये भाटो की ख्यातों मे जोधपुर के शुरु के कितने एक राजाओ के जो संवत मिलते है वे अशुद्ध ही है। कन्नौज के राजा जयचंद की गद्दीनशीनी का संवत् ११३२ भी अशुद्ध है। यदि इसे अनंद संवत् मानें तो प्रचलित विक्रम संवत् १२२२-३ होता है। ऊपर हम दिखा चुके हैं कि जयचंद्र की गद्दीनशीनी प्रचलित विक्रम संवत् १२२६ में हुई थी (देखो ऊपर)। भाटो के संवत् अशुद्ध हों या शुद्ध, प्रचलित विक्रम संवत् के हैं, न कि 'अनंद' विक्रम संवत् के; क्योंकि मालदेव और जोधा के निश्चित संवत् भाटो के संवतों से 'सनंद' मानने से ही मिलते है।

जयपुर के राजाओं के संवत्।

पंड्याजी का मानना है कि 'जयपुर राज्य वाले पज्जूनजी का [गद्दीनशीनी] संवत ११२७ मे होना मानते हैं और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ९१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनन्द विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाता है।

पज्जून की गद्दीनशीनी का उपर्युक्त संवत् अनंद विक्रम है, वा सनद (प्रचलित)। इसका निर्णय करने से पहले हम जयपुर की भाटों की ख्यात से राजा ईशासिंह से

७० इंडि०एंटि०, जि०४०, पृ०१४१।

७१ वही, पृ०३०१।

लगाकर भगवानदास तक के राजाओं के पाट-संवत् नीचे लिखते हैं—

नाम			पाट संवत्
१ ईशासिंह	...	...	(अज्ञात)
२ सोढदेव	...	...	१०२३
३ दूलेराय	...	...	१०६३
४ काकिल	...	...	१०९३
५ हणू	...	...	१०९६
६ जान्हडदेव	...	...	११९०
७ पज्जून	...	...	११९०
८ मलेसी	...	...	११५१
९ वीजलदेव	...	...	१२०३
१० राजदेव	...	...	१२३६
११ कील्हण	...	...	१२७३
१२ कुंतल	...	...	१३३३
१३ झोणसी	...	...	१३७४
१४ उदयकरण	...	...	१४२३
१५ नृसिंह	...	...	१४४५
१६ बनबीर	...	...	१४८५
१७ उद्धरण	......	.....	१४९६
१८ चन्द्रसेन	....	..	१५२४
१९ पृथ्वीराज	...		१५५९
२० पूर्णमल्ल	.....	...	१५८४
२१ भीमसिंह	....	....	१५९०
२२ रत्नसिंह	..	....	१५९३
२३ भारमल्ल	..	...	१६०४
२४ भगवानदास	..	.....	१६३०

इन संवतो मे भी कही दो संवतो के बीच ९० या ९१ वर्ष का अंतर है, जिससे यह नहीं माना जा सकता कि अमुक राजा तक के संवत तो

विक्रमी है और अमुक से सनंद (प्रचलित) विक्रमी दिए है अर्थात ये सब संवत् किसी एक ही विक्रमी गणना के अनुसार हैं।

बादशाह अक़बर हिजरी सन् ९६३ तारीख २ रबिउस्सानी (वि० सं० १६१२ फाल्गुन बदी ४) को कलानूर मे गद्दीनशीन हुआ। उस समय राज्य मे बखेडा मचा हुआ था, जिससे सूर सुलतान सिकंदर के सेवक हाजीखां पठान ने आंबेर के राजा भारमल कछवाहे की सहायता से नारनौल को घेरा, जो मजनूखाँ काकशाल के अधीन था। राजा भारमल ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से मजनूखाँ को उसके बाल बच्चो तथा मालताल के साथ वहाॅ से बचा कर निकाल दिया। जब बादशाह अकबर ने हेमू दूसर आदि को नष्ट कर देहली पर अधिकार किया। उस समय मजनूखाँ ने ऊपर किए हुए उपकार का बदला देने के लिये बादशाह से राजा भारमल की सिफारिश की। राजा देहली बुलाया गया और बादशाह ने उसको तथा उसके साथ के राजपूतो को खिलअते देकर विदा किया। वि० सं० १६६८ मे बादशाह अक़बर आगरे से राजपूताने को चला। बादशाह की तरफ से बुलाए जाने पर राजा भारमल साँगानेर मे बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उसकी अधीनता स्वीकार की। राजपूताने के राजाओ में से भारमल[१] ने ही सब से पहले बादशाही सेवा स्वीकार की। वि० सं० १६२४ मे बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उस समय राजा भारमल भी उसके साथ था और वि० स० १६२५ मे बादशाह ने रणथंभोर के क़िले को घेरा, तब वहां के किलेदार बूँदी के राव सुर्जन हाड़ा ने इसी राजा की सलाह से बादशाही सेवा स्वीकार की।

ऊपर दिए हुए संवतो मे भारमल का वि० सं० १६०४ से १६३० तक राज करना निर्विवाद है और इन संवतो को प्रचलित (सनंद) विक्रम संवत् मानने से ही राजा भारमल अकबर का समकालीन सिद्ध होता है, न कि अनंद विक्रम संवत से।

ऊपर दिए हुए सवतो मे से राजा पूर्णमल्ल की गद्दीनशीनी से लगा कर पिछले राजाओ के संवत् शुद्ध है, परन्तु पूर्णमल्ल से पहले के राजाओं के संवत् इतिहास के अंधकार की दशा में बहुधा सबके सब भाटो ने कल्पित कर के धरे हैं; क्योकि उनमे सोढदेव से लगा कर पृथ्वीराज तक के १८ राजाओ का राज्य समय

५६१ वर्ष दिया है, जिससे औसत हिसाब से प्रत्येक राजा का राजत्वकाल ३१ वर्ष से कुछ अधिक आता है, जो सर्वथा स्वीकर नही किया जा सकता। जयपुर की ख्यात मे जैसे संवत् कल्पित धर दिए है, वैसे ही सुमित्र (पुराणो का) के बाद के कूरम से लगा कर ग्यानपाल तक के १३८ नाम भी बहुधा कल्पित ही है; क्योकि ग्वालिअर के शिलालेखो मे वहाँ के जिन कछवाहे राजाओ के नाम मिलते हैं, उनमे से एक भी ख्यात मे नही है। मूंहणोत नैणसी ने भी अपनी ख्यात मे कछवाहो की दो वंशावलियाँ दी हैं। उनमे से जो भाट राजपाण ने लिखवाई, वह तो वैसी ही रही है जैसी कि ख्यात की, परन्तु जो दूसरी वंशावली उसने दी है, उसमे पिछले नाम ठीक है और वे शिलालेखो के नामो से भी मिलते है। ग्वालिअर के शिलालेखों तथा उक्त वंशावली के नामो का मिलान नीचे किया जाता है:—

ग्वालिअर के कछवाहे (शिला-लेखो से) [७२]	जयपुर के कछवाहे (नैणसी की ख्यात से) [७३]
१ लक्ष्मण (वि० सं० १०३४)	१ लक्ष्मण
२ वज्रदामा	२ वज्रदीप
३ मंगलराज	३ मांगल
४ कीर्तिराज	४ सुमित्र
५ मूलदेव	५ मुधिब्रह्म
६ देवपाल	६ कहानी
७ पद्मपाल	७ देवानी
८ महीपाल (वि० सं० ११५०)	८ ईशे (ईशासिंह)
९ त्रिभुवनपाल (वि० सं० ११६१)	९ सोढ (सोढदेव)
	१० दूलराज
	११ काकिल

७२ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की विस्तृत टिप्पणी सहित खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १, पृ० २७२-२७३। इस वंशावली के नामों के साथ जो संवत् दिए हैं, वे ग्वालिअर के कछवाहो के शिलालेखो से हैं।

७३ मूंहणोत नैणसी की ख्यात, पृ० ६३-६४।

१२ हणू
१३ जानड
१४ पजून

इन दोनो वंशावलियो मे पहले तीन समान हैं। दोनो के मिलान से पाया जाता है कि मंगलराज के दो पुत्र कीर्तिराज और सुमित्र हुए हों। कीर्तिराज के वंशज तो शहाबुद्दीन गोरी के समय तक ग्वालिअर के राजा बने रहे[७४] और सुमित्र के वंशजो, अर्थात् ग्वालिअर की छोटी शाखा, के वंशधर सोढ (सोढदेव) ने राजपूताने मे आकर बड़गूजरो से द्यौसा छीन लिया और वहाँ पर अपना अधिकार जमाया। वहाँ से फिर आँबेर उनकी राजधानी हुई और सवाई जयसिंह ने जयपुर बसा कर उसको अपनी राजधानी बनाया। फीरोज़शाह तुग़लक के समय मे तंवर वीरसिंह ग्वालिअर का क़िलेदार नियत हुआ; परतु वहाँ के सय्यद किलेदार ने उसको क़िला सौंप देने से इनकार किया, जिस पर वीरसिह ने उससे मित्रता बढ़ाने का उद्योग किया। एक दिन उसको अपने यहाँ मिहमान किया और भोजन मे नशीली चीज़े मिला कर उसको भोजन कराया। फिर उसके बेहोश हो जाने पर उसे क़ैद कर क़िले पर अपना अधिकार जमा लिया। यह घटना वि० सं० १४३२ के आस-पास हुई। तब से लगा कर वि० सं० १५६६ के आस पास तक ग्वालिअर का क़िला तंबरों (तोमरो) के अधीन रहा[७५]।

कछवाहों की ख्यात लिखने वाले भाटो को यह ज्ञात नही था कि ग्वालिअर पर कछवाहों का अधिकार कब तक रहा और वह तंवरो के अधीन किस तरह हुआ, इसलिये उन्होने यह कथा गढत की कि ग्वालिअर के कछवाहा राजा ईशासिह ने अपनी वृद्धावस्था मे अपना राज्य अपने भानजे जैसा (जयसिह) तवर को दान कर दिया; जिससे ईशा के पुत्र सोढ़देव ने ग्वालिअर से द्यौसा मे आकर अपने बाहुबल से वहाँ का राज्य छीना। भाटो की ख्यातों मे सोढदेव का वि० सं० १०३३ मे गद्दी बैठना लिखा है; परतु ये बातें मनगढंत ही हैं, क्योकि शहाबुद्दीन गोरी तक ग्वालिअर पर कछवाहो की बड़ी शाखा का राज्य रहा और सोढदेव से नौ पुश्त पहले होने वाला राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ मे विद्यमान था। ऐसा

७४ खड्ग–विलास प्रेस का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १, पृ० ३७३।

उसी के समय के ग्वालिअर के शिलालेख से निश्चित है।

अब हमे जयपुर के कछवाहों के पूर्वज पज्जून का समय निर्णय करने की आवश्यकता है। ग्वालिअर का राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ मे विद्यमान था और पज्जून उसका १४ वाँ वंशधर था। यदि प्रत्येक राजा के राज्य समय की औसत २० वर्ष मानी जावे तो पज्जून का वि० सं० १२६४ मे विद्यमान होना स्थिर होता है, जो असंभव नही। इसी तरह पज्जून से लगा कर उसके १७ वे वंशधर भारमल्ल तक के राजाओ मे से प्रत्येक का राज्य समय औसत से २० वर्ष माना जावे तो भारमल्ल का वि० सं० १६१४ मे विद्यमान होना स्थिर होता है जो शुद्ध है; क्योंकि उसका वि० सं० १६०४ से १६३० तक राज्य करना निश्चित है।

ऐसीदशा मे पज्जून पृथ्वीराज का समकालीन नहीं, किंतु उसे उससे लगभग आधी शताब्दी पीछे होना चाहिए।

पट्टे परवाने

पंड्याजी ने लिखा है कि "चंद के प्रयोग किए हुए विक्रम के अनंद संवत् का प्रचार बारहवे शतक तक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है अर्थात् हमको शोध करते करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वी-राजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के कुछ पट्टे परवाने मिले है उनके संवत् भी इस महाकाव्य मे लिखे संवतों से ठीक ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानो मे जो मुहर अर्थात् छाप है उसमे उनके राज्याभिषेक का संवत् ११२२ लिखा है।"

ये पट्टे परवाने नौ है। इनके फोटोग्राफ, प्रतिलिपि और अँगरेजी अनुवाद हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज की सन् १६०० ई० की रिपोर्ट मे छपे हैं। हम विचार करने के लिये इन्हे इस क्रम से रखते है:--

(क) पृथ्वीराज के परवाने।

(१) संवत् ११४३ का पट्टा आचारज रुषीकेश के नाम कि तुम्हे पृथाबाई के दहेज मे दिया गया है, मुहर का संवत् ११२२ (प्लेट ३)।

(२) संवत् ११४३ का पट्टा, उसी के नाम 'आगना' (आज्ञा) कि काकाजी बीमार है यहाँ आओ, मुहर का संवत् वही (प्लेट ४)।

(३) संवत् ११४५ का पट्टा, उसी के नाम कि काकाजी को आराम होने से तुम्हे रीझ (प्रसन्नता) मे पाँच हजार रुपए दिए जाते हैं, मुहर का संवत वही (प्लेट ६)।

(ख) पृथाबाई के पत्र।

(४) सवत् ११ [४५] का, उसी के नाम, कि काकाजी बीमार है, मै दिल्ली जाती हूँ, तुम्हे चलना होगा चले आओ (प्लेट ५)।

(५) संवत ११५७ का, अपने पुत्र के नाम, कि समरसी झगड़े मे मारे गए है, मैं सती होती हूँ, तुम मेरे चार दहेजवालो की, विशेषतः रुषीकेश के वंश की, सम्हाल रखना (प्लेट ८)।

(ग) रावल समरसी का पट्टा।

(६) संवत् ११३९ का आचारज रुषीकेश के नाम, कि तुम दिल्ली से दहेज मे आए हो, तुम्हारा संमान और अधिकार नियत किया जाता है (प्लेट १)।

(७) संवत् ११४५ का, उसी के नाम, कि तुम्हें मोई का ग्राम दिया जाता है।

(घ) महाराणा जयसिंह का परवाना।

(८) संवत् १७५१ का, आचारज अषेराम रगुनाथ के नाम, कि पृथाबाई का पत्र (देखो ऊपर नं० ५) देख कर नया किया गया कि तुम 'श्याम खोर' अर्थात् नमक हलाल हो। (प्लेट ९)।

(ङ) महाराणा भीमसिंह का पट्टा।

(९) संवत् १८५८ का, आचारज संभुसीव सदासीव के नाम कि समरसी का पट्टा (ऊपर नं० ६ देखो) जीर्ण हो जाने के कारण नया किया गया।

इन पट्टो परवानों मे नं० ८ और ९ का विचार करने की आवश्यकता नही। नं० ८ तो स० १७५१ मे नं० ५ की पुष्टि करता है और नं० ९ सं० १८५८ में नं० ६ की। पुराने पट्टे को देखकर नया लिखने के समय ऐतिहासिक प्रश्नों की जाँच

नही होती जैसा आगे दिखाया जायगा। पट्टे लिखने, सही करने, भाला और अंकुश बनाने का कार्य एक ही मनुष्य के हाथ मे रहने से किसी राजस्थान मे क्या क्या हो सकता है, यह समझाने की हमे कोई आवश्यकता नही। हमे आचारज रुषीकेश के वंशजो के पास इन पट्टो तथा भूमि के होने से भी कोई सन्बन्ध नही। सं० १८५८ मे या स० १७५१ मे समरसी और पृथाबाई के विवाह की कथा मानी जाती थी यह कथन भी हमारे विवेचन मे बाधा नही डालता। हमे यही देखना है कि बाकी सात पट्टे परवाने स्वतंत्र रूप से अनंद संवत् के सिद्धांत को पुष्ट करते है, या केवल 'रासे' की संवत् और घटनाओं की ढीलाई को दृढ़ करने के लिये उपस्थित किये गये है -

(क) पृथ्वीराज के पट्टे परवाने—

(१)

॥ श्री ॥

॥ श्री ॥
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वेशाख सुदि ३

(सही)

श्री श्री दलीनं मंहनं राजानं धीराजनं हदुसथानं राजधानं संभ
री नरेस पुरब दली तषत श्री श्री महानं राजं धीराजनं श्री
पृथी राजी सुसथानं आचारजरुषीकेस धनत्रितं अप्रन तमको बाई
श्री प्रथु कवरन की साथ हतलेवे चीत्र
कोट का दीया तुमार हक चहुवान के रज में साबित है तुमारी
ओलाद का सपुत कपुत होगा जो चहान की पोल आ
वेगा जीनं को भाई सी तरे समंजेगा सुमारा कारंन
नहीं गटेगा तुम जम षात्रि से बाई

के आ तुमरी जो हुवे श्रीमुष
दुवे पंचोली हडमंराअ के संमत ११४३
वर्षे आसाड सुद १३

(२)

श्री रामहरी

॥ श्री ॥
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

सही

श्री श्री दलीन महाराजनं धीराजं श्री श्री
प्रथीराजनं की आगना पोछे आचार
ज भ० रषीकेस ने चत्रकोट पोछे
आहा श्री काकाजी नं महा…… हुई
छै सो षास रुको बांचने अहां हाजर वीजे संमत
११४५ चेत वदि ७

(३)

श्री रामहरी

॥ श्री ॥
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत ११२२
वैशाख सुदि ३

श्री श्री दलीन महाराजं धीराजंनं हिदुसथा
नं राजं धानं संभरी नरेस पुरब दली तषत
श्री श्री माहानं राजं धीराजंनं श्री प्रथीराजी
सुसाथन आचारज रुषीकेस धनंत्रि अप्रन तमने का
काजी नं के दुवा की आरामं चश्री जीन
के रीजं मे राकड़ रुपीआ ५०००) तुमरे आ
हाती गोडे का षरचा सीवाअ आवेंगे षजानं
से इनको कोई माफ करेंगे जीनको नेरको
के अधकारी होवेगे सई दुवे हुकम के हडमत राअ
संमत ११४५ वर्ष आसाड सुदी १३

ये तीनो दस्तावेज जाली है, जिसके प्रमाण ये हैं:—

(१) इन तीनो के ऊपर जो मुहर लगी है, वह संवत् ११२२ की है। इस सम्वत् को अनंद विक्रम सवत् मान कर पंड्याजी पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी का संवत् बतलाते है। अनंद विक्रम सम्वत् ११२२ सनंद (प्रचलित) विक्रम सम्वत् (१२२२+६०-६१=) १२१२-१३ होता है। उक्त सम्वत् मे तो पृथ्वीराज का जन्म भी नहीं हुआ था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

(२) मेवाड़ के रावल समरसिंह का समय वि० स० १३३० से १३१८ तक का है, जैसा कि पहले सिद्ध किया गया है, उसके साथ पृथाबाई का विवाह होना और सम्वत् ११४३ अनंद अर्थात् १२३३-४ सनंद मे उसे दहेज मे दिए हुए आचारज रुषीकेश को पट्टा देना और सम्वत् ११४५ अनद अर्थात् १२३५-६ सनंद मे उसे बीमारी पर बुलाना या बीमारी हट जाने पर इनाम देना सब असम्भव है।

(३) इन पट्टो परवानो की लिखावट वर्तमान समय की राजपूताने की लिखावट है, बारहवीं शताब्दी की वर्णमाला में नहीं है। ध्यान देने से जान पड़ता है कि महाजनी हिन्दी के वर्तमान मोड़ इसमे जगह जगह पर है। जिन्होने बारहवी शताब्दी के शिलालेख या हस्तलिखित पुस्तकें देखी है, उन्हे इस विषय में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। एक ही बात देखली जाय कि इनमे 'ए' या 'ओ' की पृष्ठ मात्रा (पडी मात्रा, अक्षर की बाईं ओर) कही नही है। राजकीय लिखावट सदा सुन्दर अक्षरो मे लिखी जाती थी ऐसी भद्दी घसीट मे नहीं।

(४) इनकी भाषा तथा परिभाषिक शब्दों के व्यवहार को देखिए। पृथ्वीराज के समय के लेखो मे कभी उसे 'पूर्वदेश महीपति, नही कहा गया है। मेवाड़ मे बैकर पट्टे गढने वाले आदमी को चाहे दिल्ली पूर्व जान पड़े; किन्तु संकेत के व्यवहार मे पूरब का अर्थ काशी अवध आदि देश होते है, दिल्ली नही। पूरब का अर्थ काशी अवध आदि देश होते है, 'पूरब दिल्ली नहीं तख़त' कहना भी वैसा ही असंगत है। उस समय 'हदुसथानं राजधानं' की कल्पना नही हुई थी। मेरुतत्र के 'हिंदू' पद की दुहाई देने से यहां काम न चलेगा। 'रासे' के अनुस्वार तो छंदों को लघु मात्राओ को गुरु करने के लिये लगाए गए है. या शब्दो को संस्कृत सा बनाने के लिये या उन स्वयं सिद्ध टीकाकारो को बहकाने के लिये जो यह नहा जानते कि अपभ्रंश अर्थात पिछले प्राकृत मे नपुंसक लिंग का चिह्न 'उ' है और 'वानीयवदेपयं' के 'अम्' को कह बैठते है कि यह द्वितीया विभक्ति नही, नपुंसक की प्रथमा है, किंतु इन पदो मे स्थान कुस्थान पर अनुस्वार रासे की संरक्षा के लिये लगाये गए है। भाषा बड़ी अद्भुत है। मेवाड़ के रहने वाले अपनी मातृभाषा से गढ़ कर जैसी "पक्की हिंदी" बोलने का उद्योग करते है वैसी हिंदी बनाई गई है, 'तमकोह तलेवे चीत्रकोट को दीया,' तुमार हक साबित है', 'जो चहान की पोल आवेगा जीन को भाई सीतरे समजेगा,' किंतु यह खडी बोली ज्यादा देर न न चली। दूसरे पट्टे मे लिखने वाला फिर वर्तमान मेवाड़ी पर उतर आया 'षास रुको बांचने अहां हाजर वीजे'। मानो महाराणा उदयपुर का कोई हाज़िर बाश पृथ्वीराज के यहाँ बैठा बोल रहा हो! रासे की भाषा पर फारसी शब्दो की अधिकता का आक्षेप होता था। उसके लिये फरमान का स्फुरमाणः बनाया गया। 'रासे' तथा इन पट्टो की फारसी की पुष्टि मे कहा जाता है कि पृथाबाई दिल्ली से आई थी, वहाँ मुसलमानो का लश्कर रहता था, सौ वर्ष पहले से लाहोर में मुसलमानो का राज्य था, वहाँ से दूत आदि आया जाया करते थे, इत्यादि। इन तीन पट्टो मे हदुसथान राजधानं, तखत, हक, साबित, ओलाद जमा खातिर, हाजिर, दवा, आराम, रोकड़, खरचा, सिवा, खजाना, माफ, सही, इतने विदेशी शब्द शुद्ध या भ्रष्ट रूप में विद्यमान है। पृथाबाई के पत्र (नं० ४, ५) मे साहब, हजूर, खास, रुक्का, कागज, डाक बैठना, हुकम, ताकीद, खातरी, हरामखोर, दस्तखत, पासवान के तत्सम या तद्भव रूप हैं। नं० ६-७ समरसी के पत्रों मे

इन पट्टो की वास्तविकता मे सन्देह उत्पन्न करती है, इतना ही नहीं, बिलकुल इन्हे प्रमाण कोटि से बाहर डाल देती हैं। राज्यों की लिखावट मे पुरानी रीति चलती है । अँगरेज़ी राज्य को डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हो जाने पर भी वायसराय और देशी राज्यो के मुरासिले फारसी उर्दू मे होते हैं, कचहरी की भाषा घनी फारसी की उर्दू है। सिक्के पर 'यक रुपया' फारसी मे है। पृथ्वीराज के समय मे यदि विदेशी शब्द व्यवहार मे आ भी गए हो तो रायकीय लेखो मे पुराने 'मुन्शो' लकीर के फकीर इतनी जल्दी परिवर्त्तन नही कर सकते। समरसी तो दिल्ली से दूर थे, भी जनाना और परवाना जानने लग गए थे। इन पट्टों की पृथाबाई तो गजबवे करती है, स्त्रियाँ सदा पुरानी चालों की आश्रय होती है; किन्तु वह पति और भाई दोनो को 'हजूर' कहती है। इन पट्टो मे खास रुक्का, परवाना, तख्त, हक, खजाना, औलाद, जमाखातिर, सही, दस्तखत, पासवान (=रक्षिता स्त्री, भोग पत्नी) जनाना, आदि पद ऐसे रूढ़ सकेतो मे आए हैं, जिन्हे स्थिर करने मे हिन्दू मुसलमानों के सहवास को तीन चार सौ वर्ष लगे होगे। समरसी के पट्टे (नं० ६) में, प्रधान के बराबर बैठक होना केवल वर्तमान उदयपुर राज्य का संकेत है, दिल्ली में 'प्रधान' होता हो तथा 'बैठके होती हों यह निरी पिछली कल्पना है। खास रुक्का अर्थात् राजा की दस्तख़ती चिट्ठी भी वर्तमान रजवाड़ो की रूढ़ि है। पत्र के अर्थ मे 'कागज' 'कागद' की रूढ़ि भी वर्तमान राजपूताने की है, जब कि चिट्ठी, शब्द अशुभ सूचक पत्र या आटे दाल के पेटिए के अर्थ मे रूढ़ हो गया है। यदि समरसी और पृथ्वीराज के समय मे इतने विदेशी शब्द रात दिन के व्यवहार मे आने लग गए थे तो राणा कुम्भा का शिलालेख, जिसकी चर्चा आगे की जायगी, बिलकु लफारसी ही सा होना चाहिए था। पृथाबाई के पत्रो मे यह और चमत्कार है कि वह अपने लिये 'पधारना' लिखती है जैसे कि गँवार कहा करते है कि तुमने जब अर्ज़ करी तब मैने फरमाया। पंड्याजी कहते है वह दिल्ली से आई थी, अपने दहेज मे फारसी के शब्द भी समरसी के यहाँ लाई थी; किन्तु उसके पत्र शुद्ध वर्तमान मेवाड़ी मे है, 'सबेरे दिन अठे आंघसी', 'थाने माँ आगे जाणो पड़ेगा', म्हारे मंदर को व्याव का मारथ दली तु आआ पाछे करोगा' इत्यादि।

(५) पृथ्वीराज के समय मे यहाँ के हिन्दू राजाओ के दरबारो की लिखावट हिन्दी भाषा मे नहीं; किन्तु संस्कृत मे थी। अजमेर और नाडौल आदि के चौहानों, मेवाड़ (उदेपुर) और डूंगरपुर के गुहिलोतो (सीसोदियो), आबू और

मालवे के परमारों, गुजरात के सोलंकियों, कन्नौज के गाहड़वालो (गेहरवालों) आदि की भूमि-दान की राजकीय सनदे (ताम्रपत्र) संस्कृत मे ही मिलती है। पृथ्वीराज के वंशज महाकुमार चाहडदेव (बाहडदेव) के दान-पत्र के प्रारम्भ का टूटा हुआ टुकड़ा मिला है, जिसकी नक़ल नीचे दी जाती है। उससे मालूम हो जायगा कि पृथ्वीराज के पीछे भी उसके वंशजो की सनदे भाषा मे नहीं, किन्तु संस्कृत मे लिख कर दी जाती थी—

[म]हाकुमार श्री चाहडदेवः ॥

···· कीर्तिरनंता द्यौः परत्र दातुः प्रतिग्रहीतुश्च। आच्छेत्तुर्विपरीता भूर्ब्रा(ब्रा)ह्मण शा(सा)त्कृता ······ ·· · ·· ········ विक्रमः। चाह-मानकुलैके(कें)दुर्विभु· शाकंभरीभुवः ॥ २ [॥] व(ब)भूव भुवनाभोग ······ ·· ···धिप· ॥ ३ [॥] तनोएर्णोराजनृपतिर्व(बं)भार जगतीभरं। स्वामि। [स्वास्मि ?] न्नालानितो ये [न] ········ ·· ····· ·· ····· तनूजोस्य च स्वावासैकनिवासीनीः समकरोज्जित्वा दिगंतश्रियः ·· · · · ······ ·· · स्य दासवदमी चेरुश्चिरं निर्मदाः ॥ ५ [॥] पृथ्वीराज [स्य] ······[७६]

इस ताम्रपत्र के टुकड़े में अर्णोराज (आना) से लगा कर पृथ्वीराज तक की अजमेर के चौहानो की वंशावली बची है, जिससे निश्चित है कि महाकुमार चाहडदेव पृथ्वीराज ही का कोई वंशधर था। यदि पृथ्वीराज के समय मे चौहानों की राजकीय लिखावटें भाषा में होने लग गई होती तो चाहडदेव फिर संस्कृत का ढर्रा नए सिरे से कभी न चलाता। पृथ्वीराज के पीछे भी राजपूताने के जो राज्य मुसलमानो की अधीनता से बचे, उनकी राजकीय लिखावटे संस्कृत मे होती रही। मेवाड के महाराणा हमीर के संस्कृत के दानपत्र की नकल, वि० सं० १४०० से कुछ पीछे की, एक मुकदमे की मिसल मे देखीगई (मूल देखने को नही मिला) और वागड (डूँगरपुर) के राजा वीरसिंघदेव का वि० स० १३४३ का संस्कृत ताम्रपत्र राजपूताना म्यूजिअम मे सुरक्षित है।

(६) इन तीनों पट्टो मे मुहर के पास 'सही' लिखा है। राजकीय लिखा-वट के ऊपर सही करने की प्रथा हिन्दू राज्यो मे मुसलमानो के समय उनकी

---

७६ एपि० इन्डि०, जिल्द १२, पृ० २२४।

देखा देखी चली है। पृथ्वीराज तक किसी राजा के दानपत्र मे 'सही' नहीं मिलती। प्राचीन काल मे दानपत्रो पर बहुधा राजा के हस्ताक्षर इबारत के अन्त मे 'स्वहस्तोऽयं मम' या 'स्वहस्त.' पहले लिख कर किए हुए मिलते हैं। लेख की इबारत दूसरे अक्षरो मे तथा यह हस्ताक्षर बहुधा दूसरे अक्षरो मे मिलते हैं, जिससे पाया जाता है कि ताम्रपत्र पर राजा स्याही से अपने हस्ताक्षर कर देता था, जो वैसे ही खोद दिए जाते थे। बंसखेड़ा के ताम्रपत्र का 'स्वहस्तोयं मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य' अपनी सुन्दर अलंकृत लिपि के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। ऊपर वर्णन किए हुए महाकुमार चाहड़देव के दानपत्र के ऊपर उसके हस्ताक्षर भी दानपत्र की लिपि से भिन्न लिपि मे है। यदि पृथ्वीराज के समय 'सही' करने का प्रचार चौहानो के यहाँ हो गया होता तो उसका वंशधर भी वैसा ही करता, न कि पुरानी रीति पर हस्ताक्षर।

प्राचीन राजाओ के यहाँ कई प्रकार की राज मुद्राएँ होती थी; जिनका यथा स्थान लगाना किसी विशेष कर्मचारी के हाथ मे रहता था। उनमें एक 'श्री' की मुद्रा भी होती थी। वह सब मे मुख्य गिनी जाती थी। कई ताम्रपत्र आदि मे किसी महन्तम (महता) या मन्त्री के नाम के साथ 'श्रीकरणादिसमस्तमुद्राव्यापारान् परिपन्थयति इत्येवं काले प्रवर्तमाने' लिखा मिलता है। यह 'श्रीकरण व्यापार' या 'श्री' की छाप लगाने का काम बड़े ही विश्वासपात्र अर्थात् मुख्य मन्त्री का होता था, जैसे कि गुजरात के सोलंकी राजा वीसलदेव के राजकवि नानाक के लेख मे श्रीकरण से प्रसन्न होकर उक्त चालुक्य राजा का अपने वैजपावगोत्री मन्त्रियो को गुन्जा ग्राम देने का उल्लेख है (इंडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १०२)। जैसे राजपूताने की रियासतो मे आजकल 'श्री करना', 'मिती करना'' 'सिरिमिती करना,' 'सही करना' आदि वाक्य लेख की प्रामाणिकता कर देने के अर्थ मे आते है, वैसे ही यह 'श्री करणव्यापार' था। मेवाड मे और मुहरें तो मन्त्री आदि लगा देते हैं; किन्तु रुपए लेने देने की आज्ञाओ पर जो मुहर लगाई जाती है, उसमे 'श्री' लिखा हुआ है और उसे अब तक महाराणा स्वयं अपने हाथ से लगाते हैं। इस 'श्री' करने के स्थान मे पीछे 'सही' करना चल गया; किन्तु यह पृथ्वीराज के समय मे चला हुआ नही माना जा सकता। हिन्दू राज्य इतनी जल्दी अपनी प्राचीन प्रथा को बदल डाले इसकी साक्षी इतिहास नही देता।

पृथाबाई के पत्र ।

नीचे उक्त पत्रो की नक़ल दी जाती है। उनमे संवत् ११ [४५] और ११५७ है। अनंद या सनंद उन संवतो मे पत्र लिखने वाली पृथाबाई वि०सं० १३५८ तक जीवित रहने वाले चितौड़ के राजा समरसिंह की रानी किसी प्रकार नही हो सकती। इसलिये ये पत्र भी जाली है।

(४)

श्री हरी एकलिंगो जयति।

श्री श्री चीत्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुंवरबाई का वारणा गाम
मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बांच जो अप्रन श्री दलीसूं भाई श्री लगरी रा
जी आया है जो श्री दली सु वी हजूर को वी खास रुका आयो है जो
मारी बी पदारवाकी
सीखवी है ने दली ककाजी रे षंद है जो का[गद बाच]त चला आवजो
थाने मा आगे जाणो
पडेगा थांके वास्ते डाक बैठी है श्री हजूर·· बी हुकम वे गीयो है जो थे
ताकीद सूं आव
जो थारे मंदर को ब्याव का मारथ अबार ··करांगा दली सु आआ पाछे
करोगा ओ
र थे सवेरे दन अठे आवसी संवत् ११ [४५] चेत सुदी १३

(५)

चीत्रकोट माहा सुभ सुथाने श्री·· ······सी वास
तीरे मासाब चवाण श्री परथु· · ··की आसीस
वाच जो श्री दली का · ·· सु अप्रन अठे श्री हजुर
माहा सुद १२ क· · जगडा मे वेकु पदारीआ
नो आचारज ··सीकेस वी श्री हजूर की
लार काम आआ· ···श्री हजूर के लारे
जावागा वेकुट पछे··· ·सीकेसरा मनषा
की षात्री राषजो ई मारा चारी····नष मारा
जीव का चाकर हे ई थासु राज ·हरामषोर

 नी वेगा दुवे नडुर राञ्र के··· ११५७ माहा
सुद १२ दसगत पासवान बेव · · · रकाभ··· ·
मा साब श्री · · थुबाई का बेकुटप ·

(यह हमने उक्त रिपोर्ट मे से ज्यो का त्यो नकल कर दिया है; किंतु प्लेट से मिलान करने पर देखा जाता है कि जहाँ इस प्रतिलिपि मे पक्तियो का आदि अंत बताया गया है वहाँ प्लेट मे नही है। जहाँ बीच मे टूटक के संकेत है, वहाँ पक्तियो का अंत है।)

इन पक्तियो की भी भाषा वर्तमान मेवाडी है। इनकी भाषा का महाराणा कुंभकर्ण के आबू के लेख की भाषा के साथ मिलान करने से स्पष्ट हो जायगा कि उस लेख की भाषा इनसे कितनी पुरानी है, भाषा विषयक और विवेचन ऊपर हो चुका है।

मेवाड मे यह प्रसिद्ध है कि रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई के साथ हुआ था। यदि इस प्रसिद्धि का 'पृथ्वीराजरासे' की कथा के अतिरिक्त कोई आधार हो और उसमे कुछ सत्यता हो तो उसका समाधान ऐसा मानने से हो सकता है कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दूसरे) की, जिसको 'पृथ्वीराजविजय' मे पृथ्वीभट कहा है, बहिन का विवाह मेवाड़ के राजा समतसी (सामंतसिंह) के साथ हुआ हो। मेवाड़ की ख्यातो मे समंतसिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समरसी नाम प्रसिद्ध भी रहा, जिससे समतसी के स्थान मे समरसी लिख दिया हो। पृथ्वीराज (दूसरे) के शिलालेख वि०सं० १२२४, १२२५ और १२२६ के मिले है और समतसी का वि०स० १२२८ और १२३६ मे विद्यमान होना उसके शिलालेखो से ही निश्चित है, तथा वि०सं० १२२८ से कुछ पहले उसका मेवाड़ का राज जालौर के चौहान कीतू ने छीना था। अतएव चौहान पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे और मेवाड़ के समतसी (सामंतसिंह) का समकालीन होना निश्चित है। संभव है कि उन दोनो का संबंध भी रहा हो।

रावल समरसिंह के परवाने।

'पृथ्वीराजरासे' मे मेवाड़ के रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से होना लिखा है। पंड्याजी इस कथन की पुष्टि मे रावल समर-

सिंह के दो परवाने प्रसिद्धि मे लाए है, जिनके संवत् ११३६ और ११४५ को वे अनंद विक्रम संवत् मानकर रावल समरसिंह का सनंद (प्रचलित) वि०सं० १२२६-३० और १२३५-३६ मे विद्यमान होना मानते हैं। उक्त परवानो की नक़लें नीचे दी जाती है—

(६)

सही

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपेराज श्री श्री
रावलजी श्री समरसीजी बचनातु दाश्रमा आचारज ठाक
र रषीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज मे ओ
षद् थारी लेवेगा ओषद् ऊपरे मालकी थाकी है ओ जनाना मे
थारा बंस रा टाल ओ दूजो जावेगा नही ओर थारी बेठक दली
मे ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा ओर थारा बस
क सपूत कपूत वेगा जी ने गाम गोणो अणी राज मे षाय्या पाय्या
जायगा ओर थारा चाकर घोड़ा को नामो कोठार सूं मला जायेगा
और थूं जमाखातरी रीजो मोई मे रायथान बादजो अणी परवाना री
कोई उलंगण जी ने श्री एकलिंग जी की आण दुबे पंचो-
ली जानकीदास स० ११३६ काती बीद ३

(७)

सही

श्री श्री चीत्रकोट महाराजधीराज तपेराज श्री
रावरजी श्री श्री समरसीजी बचनातु दाश्रमा आचा
रज ठाकुर रुसीकेस कस्य गाम मोई रो षेडो थाने
मश्रा की दो लोग भोग सु दीया आवादान करजो जमा षा
त्री सो आवादान करजे थारे हे दुबे घवा मुकनानाथ
समत ११४५ जेठ सुद १३

ये दोनों पत्र भी जाली है क्योंकि—

(१) रावल समरसिंह का अनंद वि०सं०११३६ या सनंद वि०सं०१२२६-३० या अनंद वि.सं.११४५ अर्थात् सनंद वि.सं.१२३५-६ मे विद्यमान होना किसी प्रकार से संभव

नहीं हो सकता। शिलालेखादि से निश्चित है कि समरसिंह का ७ वां पूर्व पुरुष सामतसिंह वि० सं १२२८ से १२३६ तक विद्यमान था। वि० सं० १२२८ से कुछ पहले जालौर के चौहान कीतू (कीर्तिपाल) ने मेवाड़ का राज्य उससे छीन लिया, जिससे उसने वागड (डूँगरपुर-बांसवाडा) मे जाकर वहाँ पर नया राज्य स्थापित किया[10]। उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने वि० सं० १२३६ के पहले गुजरात के राजा की सहायता से मेवाड का राज्य कीतू से छीन लिया और वह वहाँ का राजा बन बैठा। उसके पीछे क्रमशः मथनसिंह और पद्मसिंह मेवाडके राजा हुए, जिनके समय का अब तक कोई शिलालेख नही मिला[11]। पद्मसिंह का उत्तराधिकारी जैत्रसिंह हुआ जिसके समय के शिलालेखादि वि० सं० १२७१ से १३०६[12] तक के और उसके पुत्र तेजसिंह के समय के वि० सं० १३१७ से १३२४ तक के मिलते है। तेजसिंह का पुत्र समरसिंह हुआ। उसके समय के वि० स० १३३०, १३३५, १३४२ और १३४४ के लेख पहले मिल चुके थे। उसका समकालीन जैन विद्वान् जिनप्रभ सूरि अपने 'तीर्थकल्प' मे उसका वि० सं० १३५६ मे विद्यमान होना बतलाता है और अब चित्तौड़ के किले पर रामपोल दरवाजे के आगे के नीम के दरख्त वाले चबूतरे पर वि० सं० १३५८ माघ शुदि १० का रावल समरसिह का एक और शिलालेख मिला है (देखो ऊपर टिप्पण ५७),जिससे निश्चित है कि वि० सं० १३५८ के अन्त के आसपास तक तो रावल समरसिंह विद्यमान था।

(२) उक्त परवाने मे 'सही' के ऊपर भाला बना हुआ है, जो पुरानी शैली से नही है। मेवाड़ के राजा विजयसिह के कदमाल गाँव से मिले हुए संस्कृत दान-पत्र के अन्त मे उक्त राजा के हस्ताक्षरो के साथ भाले का चिह्न देखने मे आया, जो कटार से अधिक मिलता है[13]। वैसा ही चिह्न डूँगरपुर के रावल वीरसिंह के वि० स० १३४३ के सस्कृत दान-पत्र के अन्त मे खुदा है और महाराणा उदयपुर के झडे पर भी वैसा ही कटार का चिह्न रहता है। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के वि० सं० १५०५ के दान-पत्र मे भाला ताम्रपत्र के ऊपर बना है, जो छोटा है और पिछले पट्टे परवानो के ऊपर होने वाले भाले के चिह्न से उसमे भिन्नता है[14]। ठीक वैसा ही भाला आबू पर के देलवाडा के मन्दिर के चौक के बीच के चबूतरे पर खड़े हुए उसी राणा के शिलालेख के ऊपर भी बना है। राणा कुंभकर्ण के समय तक भाला छोटा बनता था, पीछे लम्बा बनने लगा। पहले भाले का चिह्न

महाराणा के हाथ से किया जाता था, ऐसा माना जाता है[७७]। महाराणा लाखा (लक्ष्मसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र चूँडा था, जिसकी सगाई के लिये मंडोर (मारवाड़) से नारियल लेकर राजसेवक आए। महाराणा लाखा ने हँसी मे यह कहा कि जवानो के लिये नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढो के लिये नही। जब पितृभक्त चूंडा ने यह सुना तो उसको यह अनुमान हुआ कि मेरे पिता की इच्छा नई शादी करने की है। इसपर उसने मंडोर वालो मे कहा कि यह नारियल मेरे पिता को दिला दीजिए। इसके उत्तर मे उन्होने यह कहा कि महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र आप विद्यमान हैं, अतएव हमारी बाई के यदि पुत्र हो तो भी वह चित्तौड का राजा तो हो नही सकता। इस पर चूँडा ने आग्रह कर यही कहा कि मैं लिखित प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राजकन्या से मेरा भाई उत्पन्न हुआ तो चित्तौड़ का स्वामी वही होगा और मै उसका सेवक होकर रहूँगा। इस पर मारवाड की राजकन्या का विवाह महाराणा लाखा के साथ हुआ और उसी से मोकल का जन्म हुआ। अपने पिता के पीछे सत्यव्रत चूँडा ने उसी बालक को मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बिठलाया और सच्ची स्वामिभक्ति के साथ उसने उसके राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया। तब से राजकीय लिखावटो पर राजा के किए हुए लेख के समर्थन के लिये भाले का चिह्न चूँडा और उसके वंशज (चूँडावत) करते रहे। पीछे से चूंडावतो ने अपनी ओर का भाला करने का अधिकार 'सहीवालो' को दे दिया जो राजकीय पट्टे परवानों और ताम्रपत्र लिखते है।[७८] भाले

---

७७ "पटे परवानो पर पहिले श्रीदर्बार भाला बनाया करते थे।" ....अपने [मोकल के] जमाने में पट्टे व पर्वानो पर भाले के निशान बनाने का काम चूँडाजी के सुपुर्द करके खुद दस्तखत करने लगे।" सहीवाला अर्जुनसिंहजी का जीवनचरित्र, पृष्ठ १२।

७८ "चूँडाजी की औलाद में से जगावत आमेट रावतजी और साँगावत देवगढ रावतजी ने उज्र किया कि सलूँबर वाले [चूँडावतों के मुखिआ] भाला करते हैं तो हम भी चूँडाजी की औलाद मे हैं, इसलिये हमारी निशानी भी पट्टे परवानो पर होनी चाहिए। तब महाराणाजी श्री कर्णसिंहजी [जिनकी गद्दीनशीनी वि०सं० १६७६ माघशुक्ला ५ को हुई थी] ने हुक्म फर्माया कि सलूँबर व आपकी तरफ से एक आदमी मुकर्रर करदो, वह भाला बना दिया करेगा। तब उन्होंने श्री दर्बार से अर्ज की कि श्री दर्बार जिसको मुनासिब समझें हुक्म बख़शें। श्री जी हुजूर ने मेरे बुजुर्गों के वास्ते फरमाया कि यह मेरो तरफ से

की आकृति मे कुछ परिवर्त्तन महाराणा स्वरूपसिंह ने किया[७९] महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के जिसने वि०सं० १७५५[15] तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सर्दारो ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूँडावतों की ओर से सनदो पर भाला होता है तो हमारी तरफ से भी कोई निशान होना चाहिए। इस पर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ से भी कोई निशान बता दो कि वह भी बना दिया करें। इस पर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उम दिन से भाले के प्रारम्भ का कुछ अंश छोड़ कर भाले की छड़ से सटा हुआ नीचे की ओर दाहिनी तरफ झुका हुआ अंकुश का चिह्न भी होने लगा[८०]। ऊपर लिखे हुए रावल समरसिंह के परवाने मे भी शक्तावतों का अंकुश का वही चिह्न विद्यमान है, जो महाराणा कुंभकर्ण के ताम्रपत्र और आबू के शिलालेख के भाले मे नहीं है। अतएव वह परवाना वि० स० १७५५ के पीछे का जाली बना हुआ है।

(३) परवाने पर 'सही' लिखा हुआ है। ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत की प्राचीन राजकीय लिखावटो मे सही' लिखने की प्रथा न थी। वह तो पीछे से मुसलमानो की देखा देखी राजपूताने मे चली। मेवाड़ मे 'सही' लिखना ,कब चला, इस विषय में निश्चत् के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता[८१], परन्तु महाराणा हंमीर के बाद जब संस्कृत लिखावट बन्द होकर राजकीय सनदें भाषा मे लिखी

लिखा करते हैं और मेरे भरोसे के हैं, इनसे कहदो कि आपकी तरफ से भी भाला बनाया करे। उसी दिन से भाला भी मेरे बुजुर्ग करते आये हैं"। (वही, पृष्ठ० १३[16])

७९ वही, पृष्ठ० १३–१४।

८० वही,पृ० १४।

८१ "विक्रमी संवत् १५६३ मे महाराणाजी श्री संग्रामसिह जी (सांगाजी) गद्दीनशीन हुए, इन्होंने ताम्रपत्र, पट्टे तथा पर्वानो पर सही करना शुरु किया और उनको 'सही' मेरे बुजुर्ग कराते, इससे 'सहीवाला' खिताब इनायत हुआ, तभी से सहीवाले मशहूर हैं" (वही पृष्ट १३)। किंतु हम देख चुके हैं कि महाराणा कुंभा के ताम्रपत्र और शिलालेख (आबू का) दोनों पर 'सही' खुदा हुआ है। महाराणा कुंभा, सागा के दादा थे, इसलिये सहीवालों का यह कथन प्रामाणिक नहीं।

जाने लगी, तब किसी समय उसका प्रचार हुआ होगा[८२]। सम्भव है कि जब से महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने 'हिंदुसुरत्राण' (हिंदुओ के सुल्तान) विरुद धारण किया[८३] तब से 'सही' लिखने का प्रचार मेवाड़ मे हुआ हो। महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के उपर्युक्त वि०सं० १५०५ के ताम्रपत्र और वि०सं० १५०६ के आबू के प्राचीन मेवाड़ी भाषा के शिलालेख मे 'सही' खुदा हुआ है।

(४) महाराणा हमीर तक मेवाड की राजकीय लिखावट संस्कृत में लिखी जाती थी। अतएव रावल समरसिंह के समय मेवाड़ी भाषा की लिखावट का होना संभव नहीं।

(५) भाषा, लिपि आदि के विषय मे पृथ्वीराज के पट्टो पर विचार करते समय इन पर भी ऊपर विचार किया जा चुका है।

(६) अब इन पट्टो की मेवाड़ी भाषा और लिपि का इनसे लगभग २७० वर्ष पीछे को मेवाड़ी भाषा और लिपि के लेख से कितना अन्तर है, यह दिखाने के लिये महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के आबू के वि० सं० १५०६ के शिलालेख की नकल यहाँ दी जाती है। यदि समरसी के समय मे वैसी भाषा मानी जाय तो राणा कुंभा को समरसी से तीन सौ वर्ष पूर्व का मानना पड़ेगा; क्योंकि इस लेख की भाषा उन पट्टो की भाषा से बहुत पुरानी है और उसमे कोई फारसी शब्द नहीं है। केवल सुरिहि फारसी 'शरह' का तद्भव माना जा सकता है, जैसा कि टिप्पणी मे

---

८२ 'पहले लिखावट बिल्कुल संस्कृत मे होती थी, लेकिन सं० १३५९ में रावल श्री रत्नसिंहजी के जमाने मे पद्मनी की बाबत दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड का मुहासरा किया और चित्तौड पर बादशाही कब्जह होगया, इस गर्दिश परेशानी के जमाने मे लिखावट मे भाषा के शब्द मिलने लगे और फिर महाराणाजी श्री हंमीरसिंहजी के चित्तोड़ वापस लेलेने के बाद से महाराणा श्रीरायमल्लजी के अखीर वक्त तक लिखावट में बहुत भाषा मिल गई, लेकिन ढंग अब तक संस्कृत का ही चला आता है"। (वही, पृ० १४)।

हमीर का दान-पत्र संस्कृत मे है और कुंभा का दान-पत्र पुरानी मेवाडी में है, जैसे कि उसका आबू का लेख।

८३ प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राण विरुदस्य ....
(सं० १४९६ राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, भावनगर इंस्क्रिपशन्स पृ० ११४)।

बतलाया है। इस लेख की भाषा सं० १५०६ की मेवाड़ी निर्विवाद है तो समरसी के इन पट्टों की भाषा कभी उससे पुरानी नही हो सकती। इस शिलालेख का फोटो भी दिया जाता है[८४]।

श्री गणेशाय: ॥ सही ॥

॥ संवत् १५०६ वर्षे आषाढ सुदि २
महाराणा श्री कुम्भकर्ण विजय-
राज्ये श्री अर्बुदाचले देलवाड़ा ग्रामे विम-
लवसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ

---

८४ यहाँ टिप्पणियों के लिये अधिक अंक न लगा कर इस लेख पर जो वक्तव्य है, वह एक ही टिप्पणी मे दे दिया जाता है।

विमलवसी-वसही (प्राकृत) वसहिका (प्राकृत से बना सस्कृत) वसति (सस्कृत, मदिर) बिमलशाह का स्थापित किया हुआ (बसाया हुआ) श्री आदिनाथ का मन्दिर। तेजलवसही प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल के भाई तेजपाल की स्थापित श्री नेमनाथ की वसहिका। बीजे-दूसरे। श्रावक-जैन धर्मानुयायी संघ के चार अग हैं, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। श्रावक-धर्म को सुनने वाले (साधुओं के उपदेश के अनुयायी) अर्थात् गृहस्थ। इसी से 'सरावगी' शब्द निकला है। देहर-देवघर; देवकुल, देवल, मदिर। बीजे श्रावके देहरे-अन्यान्य जैन मन्दिरो मे (अधिकरण की विभक्ति विशेषण तथा विशेष्य दोनो मे है। दाण-सस्कृत दण्ड, राजकीयकर, दण्ड दाण जुर्माने के लिये भी आता है और राहदारी जगात आदि के लिये भी। मुंडिक- मूंडकी, प्रतियात्री या प्रतिमुंड पर कर। वलावी-मार्ग मे रक्षा के लिये साथ के सिपाही का कर। रखवाली-चौकीदारी का कर। गोडा-घोडा। पोठ्या-पृष्ठ्य (सस्कृत) पीठ पर भार लादने वाले बैल। रूं-का। राणि कुंभकर्णि-तृतीया विभक्ति का चिह्न है, राणा कुंभकर्ण ने. हिन्दी 'में'=मइ (स० मया) भी तृतीया विभक्ति है। उसके आगे फिर 'ने' लगाकर 'मैने' यह दुहरा विभक्ति चिह्न भूल से चल पडा है। महं-महत्तम, महत्तम,'उच्चराज्याधिकारी या मन्त्री। मिलाओ, महता या महत्तर। जोग्य-योग्य, डूंगर भोजा नामक अधिकारी के कहने से उस पर कृपा या उपकार करके। जिको-जो। तिहिरु-उसका। मुकावु-छुडाया (पजाबी मुक=समाप्त करना, गुजराती-मूक=छोडना, भेजना या रखना)। पले-पालित हो, पाला जाय।

तथा बीजे श्रावके देहरे दाण मुंडिक वलावी रषवाली
गोडा पोठ्यारुं राणि श्री कुम्भकर्णि मह डूंगर भोजा जो
ग्यंमया उधारा जिको ज्यात्रि आवि तिहिरुं सर्वमु-
कावुं ज्यात्रा संमंधि आचयंद्रार्क लगि पले कुई कोई
मांगवा न लहि राणि श्री कुम्भकर्णि म० डूंगर भो
जा ऊपरि मया उधारी यात्रा मुगती कीधी आ
घाट थापु सुरिहि रोपावी जिको आ विधि लो
पिसि ति इहि सुरिहि भांगीरुं पाप लागिसि
अनि संह जिको जात्रि आविसई स फद्यु ं १ एक देव

मागवा न लहि—माग न सके। ऊपरि—ऊपर जोग्य की व्याख्या देखो। मयाउधारा—मया धारण करके, 'दया मया कर' के कृपा करके। मुगति—मुक्ति, छूट। कीधी—की, कृता। थापु—थापा स्थापित किया। आघाट—नियम। सुरिहि—फारसी शरह ?, नियम का लेख (देखो पत्रिका, अंक ३, पृ० २५३-४)। रोपावी—रोपी, खड़ी की (संस्कृत, रोपिता, प्राकृत—संस्कृत, रोपापिता)। आ विधि—यह विधि (कर्मकारक)। लोपिसि—(मारवाड़ी लोपसी, सं० लोपयिष्यति) लोपेगा, नष्ट करेगा। ति—(कर्मकारक उसे। भागीरू—तोड़ने का। लागिसि—लगेगा। अनि—और (स० अन्यत्)। सह—संघ, यात्रियों का समूह। अविसइं—आवेगा, सस्कृत सम आविष्यति (!) स—वह। फद्युं (संस्कृत पदिक) फदैया, दो आने के लगभग मूल्य का चाँदी का सिक्का। अचलेश्वरि भंडारि, सनिधानि, अधिकरण कारक। दुगाडी (सं० द्विकाकिणी एक पदिक में पाँच (रुपये के ४०) एक तांबे का सिक्का। मुकिस्यइं—देवेगा, (मिलाओ मुकावुं, अविसइ)। दुए—दूतक। शिलालेख और ताम्रपत्रो में जिस अधिकारी के द्वारा राजाज्ञादी हो उसका नाम दूतकोऽत्र कह कर लिखा जाता था। उसी का अपभ्रंश दुए, दुवे या दुबे प्रत पीछे के लेखों, पट्टों आदि मे आता है। ऊपर के जाली पट्टों 'में भी दुवे' आया है। इस लेख के दुए या दूतक स्वय राणा कुंभा ही हैं। दोसी रामण इस लेख का लेखक होगा।

इस लेख के अन्त में पत्थर पर स्थान खाली रहने से सं० १५०६ में किसी दूसरे ने सवादो पंक्ति लिख कर जोड दी है। उस लेख का इससे कोई सम्बन्ध न होने से हमने उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया।

श्री अचलेश्वरि अन दुगाणि ४ च्या देवि श्री विशिष्ट
भंडारि मुकिस्यइं । अचलगढ ऊपरि देवी ॥
श्री सरस्वती सन्निधानि बइठां लिखित। दुए ॥
श्री स्वयं॥ श्री रामप्रसादातु ॥ शुभंभवतु ॥
दोसी रामण नित्यं प्रणमति ॥

उपसंहार

इस सारे लेख का निष्कर्ष यही है कि पृथ्वीराजरासे मे कोई ऐसा उल्लेख नही है, जिससे किसी नए संवत् या विक्रम सवत् को "अनंद" रूपान्तर का होना संभव माना जाय। अनंद विक्रम संवत नाम का कोई सवत् कभी प्रचलित नहीं था। रासे के संवत् तथा भाटो की ख्यातो के सवत् अशुद्ध भलेही हो, किंतु हैं सब प्रचलित विक्रम संवत् ही। रासे के अशुद्ध संवतो तथा मनमानी ऐतिहासिक कल्पनाओ को सत्य ठहराने की खींचतान मे जब भटायत संवत से काम न निकला, तब पंड्याजी ने इस अनंद विक्रम सवत् की सृष्टि की। जिन दूसरे विद्वानो ने इसे स्वीकार कर अपने नाम का महत्व इसे दिया है, उन्होने स्वयं कभी इसकी जाँच न की, केवल गतानुगतिक न्याय से पड्याजी का कथन मानलिया। इस संवत् की कल्पना से भी रासे या भाटो की ख्यातो के सवत् जाँच की कसौटी पर शुद्ध नहीं उतरते। जिन जिन घटनाओ के संवत् दूसरे ऐतिहासिक प्रमाणो से जाँचे गए है, उन सबमे यही पाया गया कि संवत् अशुद्ध और मन माने हैं, किसी 'अनंद' या दूसरे संवत्सर के नहीं। रासे की घटनाओ और इस कल्पित सवत् की पुष्टि मे जो पट्टे-परवाने लाए गए वे भी सिखाए हुए गवाह की तरह उल्टा मामला बिगाड़ गए।

पृथ्व राजरासे मे एक दोहा यह भी है—

> एकादस सै पंचदह, विक्रम जिमध्रमसुत्त।
> त्रितिय साक प्रथिराज को, लिख्यो विप्र गुन गुज (प्त) ॥

इसका अर्थ यह दिया गया है कि जैसे युधिष्ठिर के ११११५ वर्ष पीछे विक्रम का सवत चला, वैसे विक्रम से ११११५ वर्ष पीछे कवि ने गुप्त रीति से पृथ्वीराज का तीसरा शक लिखा। यदि इस दोहे का यही अर्थ माना जाय तो जिस कवि को यह ज्ञान हो कि युधिष्ठिर और विक्रम सवत् का अन्तर ११११५ वर्ष है, वह जो

न कहे सो थोड़ा है। युधिष्ठिर संवत् तो प्रत्येक वर्ष के पंचाग मे लिखा रहता है और साधारण से साधारण ज्योतिषी भी उसे जानता है। यही दोहा सिद्ध किए देता है कि जैसे युधिष्ठिर और विक्रम के बीच १११५ वर्ष कल्पित है, वैसे ही पृथ्वीराज का जन्म १११५ मे होना भी कल्पित है।

भाटो की ख्याते विक्रम संवत् की १५ वी शताब्दी के पूर्व की घटनाओं और संवतो के लिये किसी महत्त्व की नही है। मुसलमानो के यहाँ इतिहास लिखने का नियमित प्रचार था; चाहे वे हिंदुओ की पराजय और अपनी विजय का वर्णन कितने ही पक्षपात से लिखते थे, किन्तु संवत् और मुख्य घटनाएँ वे प्रामाणिक रीति पर लिखते थे। जब दिल्ली मे मुगल दरबार मे हिन्दू राजाओ का जमघट होने लगा, तब उनके इतिहास की भी पूछ हुई, मुसलमान तवारीख नवीसो को देख कर उन्होने भी लिखा इतिहास चाहा और भाटो ने मनमाना इतिहास गढ़ना आरम्भ कर अपने स्वामियो को रिझाना आरम्भ किया। 'पृथ्वीराजरासे' की सब घटनाओ के मूल मे एक बडी भारी कल्पना है कि जैसे दिल्ली के मुगलिया दरबार मे सब प्रधान राजा अधीनरूप से समिलित थे, वैसे ही पृथ्वीराज का कल्पित दिल्ली दरबार गढ़ा गया है, जिसमे प्रधान राजाओ के कल्पित प्रतिनिधि, चाहे वे समरसी और पज्जून आदि मित्र सबधी रूप से हो और चाहे जयचन्द आदि शत्रु रूप से हो, खड़े करके वर्णन किए गए। पीछे इतिहास के अंधकार मे यही 'रासा' सब राजस्थानो की ख्यातो का उपजीव्य होगया।

'पृथ्वीराजरासे' की क्या भाषा, क्या एतिहासिक घटनाएँ और क्या संवत, जिस जिस बात की जाँच की जाती है, उसी से यह सिद्ध होता है कि वह पुस्तक वर्तमान रूप मे न पृथ्वीराज की समकालीन है और न चंद जैसे समकालीन कवि की कृति [17]।

ना० प्र० प० (त्रै० न०), काशी,
भाग १, सं० १९७७, ई० सं० १९२० ।

सम्पादकीय टिप्पण

1 पृ० १६ पंक्ति २, 'अनंद विक्रम सम्वत्' नाम की कल्पित सृष्टि केवल पंड्याजी ने ही खड़ी की हैं। 'पृथ्वीराजरासो मे दिये हुए सम्वतो पर श्री ओझाजी के आक्षेप युक्ति पूर्ण है, किन्तु जिस घटना क्रम और काल क्रम का ज्ञान अट्ठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी के भाटो तथा चारणो को किसी अंशतक रहा है, उसके विषय मे रासोकार चन्द को सर्वथा अनभिज्ञ मानना सम्मभवतः ठीक न होगा। रासो के क्षेपक भागो को दूरकर हम घटना संगति को बैठाना आरम्भ करें तो 'रासो' की बहुत सी गुत्थियां सुलझ जायगी। अनन्द सम्वत् को सामान्य विक्रम-सम्वत् से सौ वर्ष बाद का मानना भी सर्वथा नवीन कल्पना नहीं है। औरंगजेब के पुत्र शाहजादे मुअज्जम के दर्बारी कवि महापात्र जैत्रसिंह ने इन शब्दो मे शाहजहाँ की मृत्यु का वर्णन किया है—

सोरहसय बाईस हते, सवत् अनंद तब।
माघ मास बदि तिथिय, भएउ त्रोदसी सोम जब॥
दिएउ पुत्र सिर छत्र, साहिजहान तजेउ वपु।
चढि विमान सुरलोक गएउ, भिस्ती निवास तपु॥
(आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, काशी संग्रहित
हस्तलेख संख्या ६२)।

यह सम्वत् शाहजहाँ की मृत्यु के विक्रम सम्वत् मे ठीक सौ वर्ष कम है। क्या, यह सम्भव नहीं कि रासोकार ने किसी ऐसे सम्वत् का प्रयोग किया हो, विषय कम से कम गवेषणीय है।

'रासो' मे दी हुई बहुतसी घटनाएं भी इतिहास सम्मत हैं। इस विषय में कविराव मोहनसिंहजी के लेख पठनीय है। हमने भी राजस्थान-भारती, साहित्य-

सन्देश और वीणा मे इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध मे विचार और विमर्ष अब तक उस स्थिति पर न पहुंचा है कि हम 'रासो' के किसी भी भाग को सर्वथा प्रमाणिक या अप्रमाणिक कह सकें। 'रासो' को अपने वर्तमान रूप मे ऐतिहासिक ग्रन्थ मानना एक महान् भूल थी। गुरूवर श्री ओझाजी का हम पर यही महान् ऋण है कि उन्होने इस भूल की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया किन्तु; वे समन्वय-दृष्टि से विषय का अध्ययन करते तो संभवतः 'रासो' इतना अधिक अप्रमाणिक न पाते।

2. पृ० १६, पंक्ति १३, 'विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे के राजत्वकाल के सम्वत् वाले शिलालेख अब तक ४ मिले है।' ओझाजी के इस लेख के प्रकाशित होने बाद विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे के दो लेखो का और पता मिला है, जिनमें से एक अजमेर के समीपवर्ती बघेरा गाँव की बावड़ी से निकला है; जो वि० सं० १२०७ का है और वह श्री ओझाजी के यहाँ पर है। दूसरा लेख नरहड़ (शेखावाटी) मे मिला है, और 'ऐनल्स ऑव दी भण्डार कर रिसर्च इ स्टीटय ूट' के रजतोत्सव ग्रन्थ मे प्रकाशित हुआ है। यह लेख वि० स० १२१५ मार्ग वदि १५ अमावास्या) का है और बिड़ला कॉलेज पिलानी के सग्रहालय मे सुरक्षित है।

3. पृ० २५, पक्ति ४, 'महाराजा सोमेश्वर चौहान के पुत्र पृथ्वीराज (तृतीय) के समय के कई लेख मिले है।' अजमेर से कुछ मील दूर बर्लां नामक गाँव से महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का शिलालेख वि० स० १२३४ चैत्र सुदि का मिला है, जिसमे वहाँ पर उस (पृथ्वीराज) के समय मे वापिका बनाने का उल्लेख है। यह प्रस्तर लेख राजपूताना म्युजिअम मे श्री यु० सी० भट्टाचार्य (अध्यक्ष रा० म्यु० अजमेर) द्वारा सुरक्षित किया गया है। इस लेख मे उल्लिखित सम्वत् चैत्रादि नहीं प्रतीत होता; क्योकि वि० स० १२३४ भाद्रपद मास का महाराजा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय का प्रस्तराङ्कित लेख मिल गया है। अतएव बर्लां का लेख वि० स० १२३५ (ई० स० ११७८) के प्रारम्भ का होना सम्भव है। एवं उससे यह निश्चय होता है कि वि० सं० १२३४ (ई० स० ११७७) मे सोमेश्वर का परलोकवास होकर पृथ्वीराज का राज्यभिषेक हो गया हो। तथा ई० स० ११७८ मे जब सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी ने गुजरात पर आक्रमण

किया, उस समय पृथ्वीराज को अजमेर मे राज्य करते हुए कम से कम एक वर्ष व्यतीत हो गया होगा (देखो, पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, सर्ग १०–११)।

4. पृ० २६, पंक्ति १–२, 'पृथ्वीराज का जन्म वि०सं० १२२१ के आस-पास होना स्थिर होता है।' महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के जन्म सम्वत् के निर्णय के लिए राजस्थानी निबन्ध माला, भाग २ मे हमारा लेख देखें।

5. पृ० ३१, पंक्ति ४, हि० स० ५६१ के स्थान पर ५७१ होना चाहिये।

6. पृ० ३४, पक्ति ६, 'कुमारसिंह से पाँचवी पीढ़ी मे मेवाड़ का राजा समरसिंह हुआ।' उदयपुर के राजवंश के सम्बन्ध मे मिलने वाले वंशावली वाले लेखों मे समरसिंह का कुमारसिंह से पाँचवी पीढ़ी मे नाम है। यथा-कुमारसिंह,मथनसिंह, पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह। परन्तु कुम्भलगढ़ के मामादेव की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्ति से स्पष्ट होता है कि समरसिंह, पद्मसिंह के पुत्र जैत्रसिंह का पौत्र था, एवं पद्मसिंह, कुमारसिंह और सामन्तसिंह के पिता क्षेमसिंह का भाई था।

7. पृ० ३५, पंक्ति ६, 'जयचन्द के राजसूय यज्ञ या सजोगता के स्वयंबर का उल्लेख नहीं किया।' सयोगिता के स्वयंबर की प्रमाणिकता के लिये 'राजस्थान-भारती' मे प्रकाशित हमारा लेख देखें।

8 पृ० ४३ पंक्ति ४, 'मूलराज (प्रथम) के अब तक तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जिन मे से पहला वि०स० १०३० का है।' सांभर से ऊमरशाह के कुए से प्राप्त लेख मे अनहिलवाड़ा के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम) के लिये उल्लेख है। यह लेख वि०सं० ६६८ (ई० स० ६४१) का है; जिससे प्रायः निश्चित है कि वह वि०स० ६६८ के लगभग अनहिलवाड़ा का राज्य हस्तगत कर चुका था।

. पृ० ४७, पक्ति १४, 'राजपूताने के राजाओ मे से भारमल ने सबसे पहले बादशाही सेवा स्वीकार की।' वि०सं० १६१८ (इ०स० १५६१) मे आमेर के राजा भारमल ने बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे छापे की भूल से वि०सं० १६६८ छपा है।

10. पृ०६७, पक्ति ५, समरसिह का ७ वां पूर्व पुरुष सामंतसिह वि०सं० १२२८–३६ तक विद्यमान था। सामंतसिंह का वि०सं० १२३६ (ई०स०११७६) के

पीछे क्या हुआ, इसका पता नही चलता। यह अवश्य लिखा मिलता है कि मेवाड पर चौहानो की नाडोल की शाखा के कीतू (कीर्तिपाल) का कुछ समय के लिए अधिकार हो गया था, जिसको सामन्तसिंह के छोटे भाई कुमारसिंह ने गुजरात के सोलंकी नरेश (भीमदेव दूसरा, भोलाभीम) की कृपा सम्पादन कर उठाया। कीर्तिपाल के उत्तराधिकारी समरसिंह (सौनगरा चौहान) का वि०सं० १२३६ (ई० स० ११८२) और मेवाड़ के गुहिलवशी राजा कुमारसिंह के उत्तराधिकारी मथनसिंह का आट गाँव (मेवाड़ मे कुरावड़ के निकटवर्ती) से वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८६) का प्रस्तर लेख मिल चुका है, जिससे अनुमान होता है कि वि० सं० १२३६ के पूर्व ही कुमारसिंह ने सोलंकी राजा भीमदेव की सहायता प्राप्त कर सोनगरा चौहानों का मेवाड से अधिकार उठा दिया और कुमारसिह, अधिक वर्ष तक जीवित नहीं रहा। इस समय सामन्तसिंह के अधिकृत वागड़ प्रदेश पर गुजरात के सोलंकी नरशो का पूर्ण प्रभुत्व था और वहां उनकी अधीनता मे कई वर्ष तक वहाँ के प्राचीन भटेवरा गुहिलवशी नरेश पुनः शासन करते रहे, ऐसा उदयपुर से दक्षिण मे ४० मील दूर जयसमुद्र (ढेबर) झील के निकटवर्ती वीरपुर गाँव से प्राप्त भटेवरा शाखा के गुहिलवंशी नरेश अमृतपाल के वि० स० १२४२ (ई० स० ११८५) के दानपत्र से ज्ञात होता है। उदयपुर की वादी मे स्थित आहाड गाँव (प्राचीन नाम आघाटपुर) से वि० सं० १२६३ (ई० स० १२०६) का गुजरात के सोलंकी नरेश भीमदेव (दूसरा, भोला भीम) का दानपत्र मिल गया है, जिससे मथनसिंह के उत्तराधिकारी पद्मसिंह के समय तक तो मेवाड के गुहिलवंशी राज्य पर भी गुजरात के सोलंकी नरेशो का प्रभाव होना मानना पड़ेगा।

11. पृ० ६२, पंक्ति ८, 'मथनसिंह और पद्मसिह क्रमशः मेवाड़ के राजा हुए, जिनके समय का अब तक कोई शिलालेख नही मिला'। ऊपर बतलाया जा चुका है कि मेवाड़ के आट गाँव के शिव मन्दिर से मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश मथनसिह (जिसको कुम्भलगढ़ के लेख मे महणसिह लिखा है) का वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८६) का शिलालेख मिल गया है। इस लेख में मथनसिंह की उपाधि 'महाराजाधिराज' और राजधानी 'नागह्रद (नागदा)' होने का उल्लेख है। मेवाड़ के तथा वागड़ के प्राप्त शिलालेखो से प्रकट है कि सामन्तसिह कुमारसिह और मथनसिंह प्रसिद्ध महाराजा पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। पद्मसिह का

मेवाड़ के भोमट प्रदेश के नरसिहपुर गाँव से एक टूटा हुआ शिलालेख मिला है, जिसमे सम्वत् आदि का भाग नष्ट हो गया है। उक्त प्रस्तर लेख मे वलकलेश्वर नामक शिवालय के लिए वृत्ति नियत किये जाने का उल्लेख है। उस (पद्मसिंह) का एक ताम्रपत्र भी वि० सं० १२५१ (ई० स० ११६४) का कदमाल गाँव (मेवाड़ मे खमनोर तहसील) से मिला है, जिसमे उसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' उल्लिखित है और आराधर के पुत्र शिवगुण को कर्दम्वाल (कदमाल) गाँव के गाँजण रहंट मध्ये शविलर भूमि देने का वर्णन है। इससे यह भी कह सकते हैं कि महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) और शहाबुद्दीन गौरी के अन्तिम युद्ध के समय अर्थात् वि० सं० १२४६ (ई०सं० ११६२) के आसपास तक पद्मसिह मेवाड़ का राजा बन गया हो।

12 पृ० ६२, पंक्ति ६, 'पद्मसिह के उत्तराधिकारी जैत्रसिंह के लेखादि वि० स० १२७१ से १३०६ तक के मिले है।' पाटण के जैन भंडार के हस्तलिखित पुस्तको के संग्रह मे ताडपत्र पर लिखित 'पाक्षिक वृत्ति' नामक पुस्तक है, वह वि०सं० १३०६ (ई०स० १२५३) मे 'आघाटपुर (वर्तमान आहाड़ गांव)' मे लिखी गई। उसमे दी हुई पुस्तक प्रशस्ति के पाठ "संवत १३०६ वर्षे माघवदि १४ सोमे 'स्वस्तिश्रीमदाघाटेमहाराजाधिराजभगवन्नारायणदक्षिणउत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिहदेवतत्पट्टविभूषणराजाश्रितेजयसिहविजयराज्ये' से ज्ञात होता है कि जयतसिह (जैत्रसिंह) का पुत्र तेजयसिंह (तेजसिह) वि०सं० १३०६ (ई०स० १२५२) के आस-पास मेवाड़ का राजा होगया था। पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट (पृ० १३०) के आधार पर उपरोक्त पुस्तक के प्रशस्ति के अंश मे 'राजाश्रिते' और 'जयसिहविजयराज्ये' को अलग अलग वाक्य मान कर 'जयसिंह' शब्द और जैत्रसिंह का राज्य काल वि० सं० १३०६ तक मानना युक्ति सगत नही है। यह सारा एक ही वाक्य है और "श्री जयतसिंहदेवतत्पट्टविभूषणराजाश्रितेजयसिहविजयराज्ये" पाठ पढना चाहिये, जिसका आशय यह कि तेजसिह इस समय मेवाड़ का राजा था। जैसा कि गायकवाड ओरियंटल सिरिज़ मे प्रकाशित 'पाटण मेनुस्क्रिप्ट्स' मे उक्त पुस्तक का शुद्ध पुस्तक प्रशस्ति पाठ दिया है। कदमाल गांव से तेजसिह का एक दानपत्र भी वि० सं० १३१६ वैशाखवदि ३० सोमवार का मिल गया है, जिसमे उसकी उपाधि महाराधिराज दी है और सूर्य

पर्व के अवसर पर शिवगुण के पुत्र तीकुम्ब (त्रिकम=टीकम) को कर्दम्वाल गांव के गाँजण रहंट मध्ये शविलर भूमि देने का उल्लेख है ।

13 पृ० ६२, पक्ति २१, 'मेवाड़ के राजा विजयसिह के कदमाल गाव से मिले हुए संस्कृत दानपत्र के अन्त मे उक्त राजा के दस्तखत तथा भाले का चिह्न है, जो कटार से मिलता है ।' कदमाल गांव के गुहिलवंशी नरेश विजयसिंह के दान-पत्र मे भाले का चिन्ह अवश्य है । उसका ऊपर का भाग कटार के समान हो, परंतु, है वह भाले का रूप ही । एवं पुराने शस्त्रास्त्र देखने से ज्ञात होता है कि पहले भाले का ऊपरी भाग मुंह (फल) इसही प्रकार का होता था । किन्तु उपर्युक्त पद्मसिह और तेजसिंह के वि०सं० १२५१ और १३१६ के दानपत्रो मे न तो भाले का चिन्ह है और न राजा के हस्ताक्षर । किन्तु उनमे मन्त्री आदि के नाम है, जो प्राचीन शैली के दानपत्रो मे भी मिलते है । इन दोनो दानपत्रो मे 'सही' शब्द अंकित नहीं है ।

14 पृ०६२, पंक्ति २५, 'महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के दानपत्र मे भाला ताम्रपत्र के ऊपर बना है, जो छोटा है और पिछले पट्टे परवानो के ऊपर होने वाले भाले के चिन्ह से उसमे भिन्नता है' । वि०सं० १५०५ के महाराणा कुम्भकर्ण के दानपत्र मे भाले का चिन्ह छोटा होना, उसकी सच्चाई को नही मिटा सकता । भाले का चिन्ह छोटा या बडा बनाना, स्थान विशेष की स्थिति (गुंजाइश) पर ही निर्भर रखता है । यह स्पष्ट है कि भाले के चिन्ह मे समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहे है । मेवाड़ के महाराणा रायमल (वि०स०१५३०-६५) के पूर्व तक उसका अधिक तया रूप विकृत नही हुआ था । एव उसका रूप वि०सं० की अट्ठारहवी शताब्दी तक एक प्रकार से ही रहा । महाराणा अमरसिह (द्वितीय वि०सं० १७५५-६८) के समय उसका रूप बदल दिया गया । महाराणा स्वरूपसिह (वि०सं०१८६६-१९१८) के समय भी इसका रूप परिवर्त्तित हुआ और अब तो उसमे बहुत कुछ फेर बदल हो गया है । इस ही प्रकार 'सही' के चिन्ह मे भी परिवर्त्तन हुए है, परन्तु बहुत अधिक नही ।

15 पृ०६४, पंक्ति २, 'महाराणा अमरसिह (दूसरे) के जिसने वि०सं० १७५५ तक राज्य किया ।' वि०सं०१७५५ (ई०स० १६९८) मे महाराणा जयसिह का देहावसान होने पर उसका पुत्र अमरसिंह (दूसरा) मेवाड़ का महाराणा

हुआ। ना०प्र०प्रत्रिका मे प्रकाशित इस लेख मे वि०सं०१७५५ तक महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का राज्य करना भूल अथवा लेखक तथा छापे का दोष ही समझना चाहिये। उक्त महाराणा का वि०सं० १७६८ मे देहान्त हुआ।

16 पृ० ६४, पंक्ति १६, टिप्पण ७८, 'उसी दिन से भाला भी मेरे बुजुर्ग करते आये है।' मेवाड़ मे पट्टे पर्वाने लिखने वाले कर्मचारी भट्नागर कायस्थ हैं, जो पंचोली कहलाते है, और 'सहीवाला' इनकी उपाधि है। यह निश्चित है कि महाराणा अमरसिंह (दूसरा, वि०सं० १७५५–६८) के समय से तो मेवाड़ मे सही-वालो का वंश ही राजकीय पट्टे-परवाने, ताम्रपत्र, हिन्दी भाषा के खरीते, खास रुक्के आदि को लिखता रहा है। उक्त महाराणा के पूर्व की मेवाड़ के नरेशो की तरफ से होने वाली सनद आदि, इस वंश वालो के हाथ की लिखी हुई उपलब्ध नही होती। 'सहीवालो' के लिखे हुए पट्टे, परवानों. दानपत्रो आदि की शैली तो वही है; परन्तु लिपि महाराणा अमरसिह (दूसरे) की निर्दिष्ट लिपि के अनुसार एक ही प्रकार की है। समयान्तर से लिपि मे और शैली मे भी कुछ–कुछ परिवर्त्तन अवश्य हुआ है, जो स्वाभाविक है।

17. पृ० ६६, पक्ति २२, 'वह पुस्तक [रासो] वर्तमान रूप मे न पृथ्वीराज की समकालीन है और न चन्द जैसे समकालीन कवि की कृति', विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहसाङ्क चरित आदि के भाँति पृथ्वीराजरासो काव्य ग्रन्थ है। उसमे इतिहास केवल आधार मात्र है। शेष कथा काव्य के ढङ्ग पर ही है, जिसमे अतिशयोक्ति होना स्वाभाविक है। अब तक जितनी रासो की प्रतियाँ मिली है, वे पन्द्रहवीं या सौलहवी शताब्दी के पूर्व की नही मिली है, किन्तु रासो का अस्तित्व उससे पुराना है, ऐसा जैन विद्वानो के संगृहीत पुस्तको से प्रतीत होता है (मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित, पुरातन प्रबन्ध संग्रह की भूमिका)। 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य से भी प्रकट होता है कि महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का बंदीजन पृथ्वीभट्ट था ऐसी अवस्था मे जिस प्रकार कि जयानक ने अपने आश्रयदाता नरेश की कीर्ति को चिरजीवित रखने के लिये संस्कृत भाषा मे 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य की रचना की। उस ही प्रकार पृथ्वीराज के बंदीजन पृथ्वीभट्ट ने भी उस समय के प्रबल पराक्रमी दिल्ली पति महाराजा पृथ्वीराज की कीर्ति गाथा को अमर करने के लिए अपनी भाषा

मे वीरकाव्य 'पृथ्वीराजरासो का' निर्माण किया हो, यह असम्भव नही है। जैसा कि कविगण काव्य रचना मे अपना 'उपनाम' भी प्रयोग करते है, उसही प्रकार बहुत सम्भव है कि पृथ्वीभट्ट का उपनाम चन्द भी रहा हो, अथवा पृथ्वी का पर्यायवाची शब्द 'चन्द', कवि ने जान बूझ कर प्रयोग किया हो। 'वरदाई' शब्द 'विरुद वर्णन करने वाला' अर्थात् 'यश का बखान करने वाला, होगा, जो पृथ्वीभट्ट या चन्द के नाम के साथ रहना सार्थक ही है।

———

२. पृथ्वीराज–रासो का निर्माण–काल

पृथ्वीराज–रासो राजस्थानीय हिन्दी भाषा का वीररसात्मक बृहत् काव्य है। राजपूताने मे उसका बड़ा आदर है। पहले वही ग्रन्थ इतिहास का खजाना समझा जाता था, परन्तु आधुनिक विद्वान् शोधक उसकी असलियत मे सन्देह करने लगे हैं। उसका रचयिता चन्द बरदाई उक्त ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का राजकवि था। यदि वास्तव में वह ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय में बना होता, तो उसमे लिखी हुई पृथ्वीराज के सम्बन्ध की सब घटनाएँ शुद्ध होतीं, परन्तु प्राचीन शोध की कसौटी पर उनमें से अधिकांश ठीक नही उतरती। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास–लेखक कर्नल टॉड ने उस ग्रन्थ से बहुत सी बातें अपने 'राजस्थान' मे उद्धृत की है और उसकी कविता पर मुग्ध होकर उसने उसके तीस हजार छन्दो का अँगरेजी अनुवाद भी किया था*। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझकर उसका कुछ अंश अपनी ग्रन्थमाला मे प्रकाशित भी किया था।

ई० सन् १८७५ मे प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर बूलर को कश्मीर मे संस्कृत-ग्रन्थो की खोज करते समय [जयानक कवि–रचित] 'पृथ्वीराज–विजय महाकाव्य' की भोजपत्र पर लिखी हुई एक प्राचीन अपूर्ण प्रति मिली, जिस पर द्वितीय राजतरंगिणी के कर्त्ता जोनराज की टीका भी है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् उक्त डाक्टर ने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा–

---

* मेरा लिखा हुआ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र, (खड्गविलास प्रेस; बाँकीपुर, (पटना) से प्रकाशित 'हिन्दी टॉड राजस्थान', प्रथम खण्ड मे) पृ० ३३।

"पृथ्वीराज विजय का कर्त्ता निःसंदेह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह सम्भवतः कश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पंडित था। उसका लिखा हुआ चौहानो का वृत्तांत चंद के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि०सं० १०३० तथा वि०सं० १२२६ के शिलालेखो से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' मे पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है वही उक्त लेखो मे भी मिलती है और उसमे लिखी हुई घटनाएँ दूसरे साधनो अर्थात् मालवे और गुजरात के शिलालेखो से मिल जाती है। उक्त पुस्तक मे पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के संबंध मे लिखा है—उसका पिता अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचन देवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड की राजकन्या थी, दो पुत्र 1 उत्पन्न हुए। उनमे से बड़े का नाम किसी ग्रंथ या शिलालेख मे लिखा नही मिलता और छोटे का विग्रहराज (वीसलदेव) था।

"ज्येष्ठ पुत्र ने, जिसका नाम किसी ग्रंथ या शिलालेख मे नही दिया है, अपने पिता को मार डाला। इस विषय मे कवि लिखता है—'उसने अपने पिता की वैसी ही सेवा की, जैसी परशुराम ने अपनी माता की की और अपने पीछे दीपक की बत्ती के समान दुर्गंध छोड गया। अर्णोराज के बाद उसका पुत्र विग्रह-राज और उसके अनतर उसका पुत्र अपरगांगेय (अमरगंगू) राजा हुआ। फिर उक्त पितृघाती के पुत्र पृथ्वीभट या पृथ्वीराज (दूसरे) को गद्दी मिली। पृथ्वीराज के पीछे मंत्रियो ने सोमेश्वर को राज्य-सिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश मे बिताया था और अपने नाना जयसिह से शिक्षा पाई थी। सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुर मे जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र-नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी मे अपने मन्त्री कादंबवाम (कादंबवास) 2 की सहायता से कर्पूरदेवी राजकाज चलाने लगी।

"उक्त काव्य मे कही इस बात का नामनिशान तक नही है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहास-लेखको ने

भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली मे राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते है; उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओ (मुसलमानों) के हाथ से, जिन्होने उसे उसके राज्य मे कुछ अधिकार दे रखे थे, अजमेर मे माग गया।

"मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मै समझता हूँ कि चन्द के रासो का प्रकाशन बंद कर दिया जाय, तो अच्छा होगा। वह ग्रंथ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बंदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चन्द बरदाई।"*

यह तो प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर बूलर का मत है। हिंदी भाषा के इतिहास-लेखक मिश्र-बंधुओ ने अपनी 'हिंदी नवरत्न' नामक पुस्तक मे चंदबरदाई का जन्म संवत् ११८३ और मृत्यु संवत् ११५० बतलाया है। और लिखा है—"रासो जाली नही है। पृथ्वीराज के समय मे ही चंद ने इसे बनाया था। इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि मे इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिखकर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चंद को क्यो समर्पित कर देता।"‡

बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल पृथ्वीराज रासो की घटनाओं तथा संवतो को अशुद्ध स्वीकार करते हुए उसके कर्त्ता का समय १२२५ और १२४८ के बीच में मानते हैं और 'पृथ्वीराज-विजय' मे जिन जिन घटनाओं तथा नामों का उल्लेख है, उन्हें ठीक समझते है।

---

* यह पत्र एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की प्रोसीडिंग्ज संख्या ४ और ५ (अप्रैल और मई) सन् १८९३ पृ० ९४–९५ मे प्रकाशित हुआ है*।

‡ हिंदी नवरत्न; तृतीय संस्करण; पृष्ठ ५५।

‡ वही; पृष्ठ ५९१।

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृष्ठ २८।

‡ वही; पृष्ठ ३३।

यदि 'पृथ्वीराज-विजय' और 'पृथ्वीराज रासो' दोनो ग्रंथ पृथ्वीराज के समय मे लिखे गए होते, तो एक ग्रंथ मे पृथ्वीराज की वंशोत्पत्ति, उसके पूर्व-पुरुषो की नामावली, उसके माता पिता, भाई, बहिन तथा रानियो के नाम और युद्धो आदि के जो वर्णन दिए हुए हैं, वे ही दूसरे मे भी होते, परंतु पृथ्वीराजरासो की मुख्य मुख्य बातें पृथ्वीराज-विजय से बहुधा भिन्न है और विजय के कथन तो शिलालेख आदि से मिलते है, पर रासो के नहीं। ऐसी दशा मे दोनो ग्रंथो का निर्माण-काल पृथ्वीराज के समय मे मानना किसी प्रकार युक्तिसंगत नही।

अब हम पृथ्वीराज रासो का समय निर्णय करने के लिये उसमे दी हुई मुख्य मुख्य घटनाओ की जाच करते है—

पृथ्वीराज रासो और अग्निवशी क्षत्रिय

पृथ्वीराज रासो मे लिखा है—"आबू पर्वत पर एक बार ऋषि लोग यज्ञ करने लगे तो राक्षसो का समूह यज्ञ-विध्वस की चेष्टा करने लगा। इस महान उपद्रव से अत्यन्त दुःखी हो सब ऋषियों ने वशिष्ठ के पास जाकर अपना समस्त दुःख निवेदन किया। तब वशिष्ठ ने स्वयं अग्निकुंड के पास आकर उसमे से परिहार, चालुक्य और परमार ये तीन क्षत्रिय उत्पन्न किए और उन्हे राक्षसो को मारने के लिये आज्ञा दी, किंतु जब यथासाध्य चेष्टा करने पर भी इन तीनो क्षत्रियो द्वारा अपेक्षित कार्य का संतोषप्रद साधन न हो सका तब वशिष्ठ स्वयं एक नवीन यज्ञकुंड की रचना कर श्री चतुरानन ब्रह्मा का ध्यान करते हुए आहुति देने लगे, जिससे तुरंत ही चार बाहुवाला एक दीर्घकाय महान् तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। ... . वेदी से निकले हुए उस पुरुष को देखकर वशिष्ठ ने उसे चहुवान नाम से संबोधन किया"। *

इस समय उक्त चारो क्षत्रियो के वंशज अपने को अग्निवंशीय मानते है, पर उनमे से केवल परमार की उत्पत्ति के संबंध मे परमारो के शिलालेखो तथा उनके

* नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराजरासो, आदि पर्व, पृथ्वीराजरासो सार, पहिला समय, पृष्ठ ७—८।

। अस्त्युच्चैर्गगनावलम्बशिखर क्षोणीभृदस्या भुवि-
ख्यातो मेरुमुखोच्छ्रतादिषु परा कोटिं गतोप्यव्वुर्द (बुर्दः)
.. [२] ॥

ऐतिहासिक ग्रंथो * मे लिखा है—'एक बार विश्वामित्र' आबू पर्वत पर रहनेवाले वशिष्ठ ऋषि की गाय नंदिनी को हर ले गए। इस पर वशिष्ठ ने क्रुद्ध होकर अपने

तस्मिंस्त्यक्तभवश्चरित्रविभवस्तथ्यं तपो तप्यत
ब्रह्मज्ञाननिधिगुणैर्निरवधि श्रेष्ठो वसिष्ठो मुनि ।
[४] ॥
मुनेस्तस्यांतिके रेजे निर्मला देव्यरुंधती ।
स्थिरवश्ये द्वियग्रामा तप श्रीरव जगमा ॥ [५] ॥
अनन्यसुलभा धेनु. कामपूर्वास्य सन्निधौ ।
ददती वाञ्छितान्कामास्तप. सिद्धिरिव स्थिता ॥ [६] ॥
तत· क्षत्रमदोद्वृत्तो गाधिराजसुतश्छलान् ।
धेनु जहे स्य दुष्प्राया विघ्न सिद्धिमिवोधता ॥ [७] ॥
अथ पराभवसंभवमन्युना ज्वलनचण्डरुचा मुनिनामुना ।
रिपुवधं प्रतिवीरविधित्सया हुतभुजि स्फुटमन्त्रयुत हुत ॥ [८] ॥
पृष्ठे तोणीरयुग्म दधदथ च करे चण्डकोदण्डदण्ड ।
बध्नन्जूट जटानामतिनिबिडतरं पाणिना दक्षिणेन ।
क्रुद्धो यज्ञोपवीती निजविषनदशा भाययञ्जीवलोक ।
तस्मादुद्दामधामा प्रतिबलदलनो निर्गत केपि वीर. ॥ [९] ॥
आदिष्टस्तेन याता रणमम रगणैर्म्मंगले गीयमाने ।
बाढं व्यासान्तरालैर्दिनकरकिरणच्छादकैर्बाणवर्षै ॥
कृत्वा भंगं रिपूणा प्रबलभुजबल कामधेनु' गृहीत्वा ।
भक्त्या तस्याह्रिपद्मद्वयलुलितशिरा सोवतस्थौ पुरस्तात् ॥ [१०] ॥
आनतस्य जयिन· परितुष्टो वाञ्छिताशिषमसौविभिधाय ।
तस्य नाम परमार इतीत्य तथ्यमेव मुनिराशु (शु) चकार ॥ [११]

बासवाडा राज्य के अर्थुणा ग्राम के मडलीश्वर महादेव के मन्दिर मे लगा हुआ परमार वश के राजा मंडनदेव के समय मे वि० स० ११३६ का शिलालेख ।

इस प्रकार की उत्पत्ति अन्य शिलालेखों मे भी मिलती है ।

* ब्रह्माण्डमण्डमस्तम्भ श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरि ॥ ॥ ४९ ॥
अतिस्वाधीननीवारफलमूलसमित्कुशम् ।

अग्निकुंड में आहुति दी, जिससे उस कुंड मे से एक वीर पुरुष प्रकट हुआ, जो शत्रु से लड़कर गाय छीन लाया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर ऋषि ने उसका नाम 'परमार' अर्थात् शत्रु के मारनेवाला रखा। पृथ्वीराज रासो का परमारो की उत्पत्ति का कथन ऊपर उद्धृत किए हुए उन्ही के शिलालेखो और पुस्तको से भी नही मिलता।

प्रतिहार, चालुक्य (सोलंकी) और चौहानो के १६ वी शताब्दी के पूर्व के शिलालेखो और पुस्तको मे भी कही अग्निवश या वशिष्ठ के यज्ञ के संबंध की कोई बात नहीं मिलती [२]! उनसे उनका वंश-परिचय नीचे लिखे अनुसार मिलता है।

प्रतिहार वंश की उत्पत्ति

ग्वालियर से वि० स० ६०० (ई० स० ८४३) के आसपास की प्रतिहार राजा भोजदेव की एक बड़ी प्रशस्ति मिली है। उसमे प्रतिहार सूर्यवंशीय बतलाए गए है*। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर, जिसने वि० सं० की दसवी शताब्दी मे कई नाटक रचे, अपने नाट-

---

मुनिस्तपोवन चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहित ॥ ६४ ॥
हृता तस्यैकदा धेनु कामसूर्गाधिसूनुना।
कार्तवीर्यार्जुनेनेव जमदग्नेरनीयत ॥ ३५ ॥
स्थूलाश्रुधारसन्तानस्नपितस्तनवल्कला।
अमर्षपावककस्यामूद्भतुर्स्समिदरुन्धती ॥ ६६ ॥
अथाथर्वविदामाद्यस्समंत्रामाहुति ददौ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥ ६७ ॥
तत क्षणात् सकोदण्ड किरीटी काञ्चनाङ्गद।
उज्जगामाग्नित कोऽपि सहेमकवच पुमान् ॥ ६८ ॥
दूरं सतमसेनेव विश्वामित्रेण सा हृता।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ॥ ६६ ॥
परमार इति प्रापत् स मुनेर्नाम चार्थवत्। ॥ ७१ ॥

पद्मगुप्त (परिमल) रचित 'नवसाहसाङ्कचरित', सर्ग ११।

* मन्विक्ष्वाकुककुस्थ(त्स्य) मूलपृथव दमापालकल्पद्रुमा ॥ २ ॥
तेषा वंशे सुजन्मा क्रमनिहितपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं।

को मे उक्त भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल को, जो उसका शिष्य था, रघुकुल तिलक* और उसके पुत्र महीपाल को 'रघुवंशमुक्तामणि' लिखता है। शेखावाटी के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मंदिर की चौहान राजा विग्रहराज की वि० स० १० ३० की प्रशस्ति से भी कन्नौज के प्रतिहारो का रघुवंशी होना ज्ञात होता है† । इन प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिहार पहले अपने को अग्निवंशीय नही; किंतु सूर्यवंशीय (रघुवंशी) मानते थे।

चालुक्यवश की उत्पत्ति

चालुक्य (सोलंकी) राजा विमलादित्य के ८ वे राज्यवर्ष अर्थात् वि० सं० १०७५ (ई०स०१०१८) के दानपत्र मे सोलंकियो को चंद्रवंशी लिखा है। इसके सिवा उसमे ब्रह्मा से अत्रि, अत्रिसे सोम, सोम से लगा कर विचित्रवीर्य तथा उसके पुत्र पांडुराज तक की पूरी नामावली, पांडु के पाँचों पुत्रो युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, आदि के नाम और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से लगाकर विमलादित्य तक की वंशावली भी दी हुई है§ । इससे स्पष्ट है कि उक्त सवत् मे सोलंकी अपने को चंद्रवंशांतर्गत पांडवो के वंशज मानते थे।

राम- पौलस्त्यहिन्स्र (हिंस्र) क्षत विहतिसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः ।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये ।
सोमित्रिस्तीव्रदंड. प्रतिहरणविधेर्य्य प्रतीहार आसीत् ॥ ३ ॥
तद्वंशे प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे ।
देवो नागभट पुरातनमुनेर्म्मूर्तिर्ब्बभूवाद्भुतम् ।.......॥ ४ ॥

आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इन्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, ई० सन् १९०३-४, पृ० २८० ।

*रघुकुलतिलको महेंद्रपाल (विद्धशालभजिका) ।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपति· शिष्यो रघुग्रामणि ।
बालभारत, १ । ११ ।
तेन (महीपालदेवेन) च रघुवशमुक्तामणिना ।
बालभार ।

† इन्डियन् ऐंटिक्वेरी, जिल्द ४२, पृष्ठ ५८-५९ ।

§ श्रीधाम्न पुरुषोत्तमस्य महतो नारायणस्य प्रभो-
र्न्नाभीपंकरुहाद् बभूव जगतस्स्रष्टा स्वय भूस्तत [।]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव (दूसरे) के सामंत बुद्धराज के शक संवत् १०६३ (वि० सं० १२२८ के दानपत्र) मे कुलोत्तुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुब्ज-विष्णु* को 'चंद्रवश-तिलक' कहा है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने, जो गुजरात के सोलकी राजा जयसिंह (सिद्धराज, वि० सं० ११५०-११६६) तथा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल (वि० सं० ११६६-१२३०) से सम्मानित हुआ था, अपने 'द्व्याश्रय महाकाव्य' के ६ वें सर्ग मे गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदि देश के राजा कर्ण के वार्तालाप का सविस्तर वर्णन किया है। उसका सारांश यह है—

"दूत ने राजा कर्ण से पूछा कि भीम आप से यह जानना चाहते हैं कि आप उनके मित्र है वा शत्रु। इसके उत्तर मे कर्ण ने कहा कि कभी निर्मूल न होने वाला सोम (चद्र) वश विजयी है। इसी वंश मे जन्म लेकर पुरूरवा ने पृथ्वी का पालन किया। इंद्र के अभाव मे डरे हुए स्वर्ग का रक्षण करनेवाला मूर्तिमान् क्षात्रधर्म नहुष इसी कुल में उत्पन्न हुआ। इसी वश के राजा भरत ने निरंतर

जज्ञे मानससूनुरत्रिरिति यस्तस्मान्मुनेरत्रित-
स्सोमो वश[क]रस्सुधांशुरुदित [:] श्रीकंठचूडामणिः ॥ १ ॥
तस्मादासीत्सु[धा]सूतेर्बुधोबु[ध]नुतस्ततः । [।]
ज[ा]त' पुरु(रू)रवानाम चक्रव[र्ती स] विक्रमः । [२]
ततोर्जुनादभिमन्युरभिमन्योः परिक्षि[त् परिक्षि] तो जनमेजयः जनमेजया-
त्क्षेमुकः क्षेमुकान्नरवाहनः नरवा[हन] । [च्छ]तानीकः शतानीकादुदयनः
... . । तस्यैव दाननृपतेस्साध्व्याश्चार्य्य [।] महादेव्याः [।]
सूनुर्व्विमलादित्यस्सत्याश्रयवशवर्द्धनो देवः [१२]
अनलानलरध्रगते शकवर्षे वृषभमासि सितपक्षे ।
यष्ठ्यष्ठ्या गुरुपुष्ये सिंहे लग्ने प्रसिद्धमभिषिक्तः । [१३]

एपिग्राफीआ इन्डिका; जिल्द ६ पृ० ३५१-५८ ।

* ओं [।।] अस्ति श्रीस्तनकुंकुमांकितविराज [व्यू]ढ वक्षस्थलो
देवश्शीतमयूखवंशतिलक [.] श्री [कु]ब्जविष्णुर्नृपः ।''''१

वही; जिल्द ६, पृ० २६६ ।

संग्राम करने और अनीति के मार्ग पर चलनेवाले दैत्यो का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया । इसी कुल मे जन्म लेकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उद्धत शत्रुओ का नाश किया। जनमेजय तथा अन्य अक्षय यश वाले तेजस्वी राजा इसी वंश मे हुए और इन सब पूर्ववर्ती राजाओं की समानता करनेवाला भीम (भीमदेव) इस समय विजयी है। सत्पुरुषो मे परस्पर मैत्री होना स्वाभाविक है, अतएव हमारी मैत्री के विरुद्ध कौन क्या कह सकता है" ।*

ऊपर उद्धृत किए हुए प्रमाणो से निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय तथा उससे पूर्व भी सोलंकी अपने को अग्निवशी नहीं, किंतु चंद्रवशी और पांडवो की संतान मानते थे[3] ।

चौहान वंश की उत्पत्ति

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का बड़ा भाई विग्रहराज (वीसलदेव चतुर्थ । बड़ा विद्वान् राजा था। उसने अजमेर मे अपनी बनवाई हुई संस्कृत पाठशाला (सरस्वती मंदिर) मे अपना बनाया हुआ 'हरकेलि नाटक', अपने राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नामक नाटक तथा चौहानों के इतिहास का एक काव्य शिलाओ पर खुदवाए। मुसलमानो ने उस मंदिर को तोड़कर वहाँ पर 'ढाई दिन का झोपडा' नाम की मसजिद बनवाई। वही से उक्त काव्य की प्रथम शिला मिली है, जिसमे चौहानो को सूर्यवंशी कहा है ।†

---

* द्व्याश्रय महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक ५०–५६ (सोलंकियो का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ६ और १० के टिप्पण मे प्रकाशित)

† . . . . . देवो रवि पातु व ।

तस्मात्समालव(ब)नदंडयोनिरभूज्जनस्य स्खलत स्वमार्गे ।
वंशा स दैवोदरसो नृपाणानतुद्रतैनोवुणकीटरन्ध्र ॥ ३४ ॥
समुत्थितोर्कदनरण्ययोनिरुत्पन्नपुन्नागकदव(ब) शाख ।
आश्चर्यमंत· प्रसरत्कुशोयं वंशोर्थिना श्रीफलता प्रयाति ॥ ३५ ॥
आधिव्याधिकुवृत्तदुर्गतिपरित्यक्ताप्रजास्तत्र ते
सप्तद्वीपभुजो नृपा समभवन्निक्ष्वाकुरामादय । ''' ३६ ॥

'पृथ्वीराज विजय' मे भी चौहानो को जगह जगह सूर्यवशी लिखा है*, अग्निवशी कही भी नही। ग्वालियर के तोमर (तँवर) बंशी राजा वीरम के दरबार के जैन कवि नयचद्र सूरि ने वि० सं० १४६० के आसपास 'हम्मीरमहाकाव्य' बनाया। उसको भी चौहानो का अग्निवशी होना मालूम नही था। उसने लिखा है—"ब्रह्माजी यज्ञ करने के निमित्त पवित्र भूमि की शोध मे फिरते थे। उस समय उनके हाथ मे से पुष्कर (कमल का फूल) गिर गया। जहाँ पर कमल गिरा, उस भूमि को पवित्र मान वही यज्ञ आरंभ किया, परंतु राक्षसो का भय होने से उन्होने सूर्य का ध्यान किया, जिस पर सूर्यमंडल से एक दिव्य पुरुष उतर आया। उसने यज्ञ की रक्षाकी और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। जिस स्थान पर ब्रह्माजी के हाथ से पुष्कर (कमल) गिरा था, वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सूर्यमंडल से बुलाया हुआ जो वीर पुरुष आया था, वह चाहमान(चौहान) कहलाया और ब्रह्माजी की कृपा से महाराजा बनकर राजाओ पर राज्य करने लगा"। †

तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो
राजानुरंजितजनोजनि चाहमान ।.................. ॥ ३७ ॥

चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में रखी हुई पहली शिला।

* काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्
पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम् ।
कलावपि प्राप्य स चाहमानता
प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत् ॥ २ । ७१ ॥
. . भानो प्रतापोन्नतिं ।
तन्वन् गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ ७ । ५० ॥
सुतोप्यपरगाङ्गेयो निन्येस्य रविसूनुना ।
उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ ८ । ५४ ॥

पृथ्वीराजविजय महाकाव्य ।

† यज्ञाय पुण्य क्वचन प्रदेशं द्रष्टुं विधातुर्भ्रमतः किलादौ ।
प्रपेतिवत् पुष्करमाशुपाणिपद्मात्पराभूतमिवास्य भासा ॥ १४ ॥

इस प्रकार पृथ्वीराज के पूर्व से लगाकर वि० सं० १४६० के आस पास तक चौहान अपने को सूर्यवंशी मानते थे[5]। यदि पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज के समय का बना हुआ होता, तो वह चौहानो को अग्निवशी न कहता।

पृथ्वीराज–रासो और चौहानों की वंशावली

पृथ्वीराज रासो मे पृथ्वीराज तक की जो वंशावली दी है, वह अधिकांश में कृत्रिम है। हम वि० सं० १०३० से लगाकर वि० सं० १६३५ के आस पास तक के चौहानो के शिलालेखो और संस्कृत-पुस्तको मे मिलने वाली भिन्न भिन्न वशावलियो का एक नक्शा यहाँ देते है, जिसमे पृथ्वीराज रासो की भी वशावली उद्धृत की गई है। उनके परस्पर के मिलान से ज्ञात हो जायगा कि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन नही हो सकता, क्योकि रासो की वंशावली कुछ इधर उधर के नामो को छोड़कर सारी कृत्रिम है। किसी भी प्राचीन शिलालेख या ग्रन्थ से नही मिलती।

उक्त नक्शे को देखने से ज्ञात हो जायगा कि चौहानो के सबसे पुराने वि० सं० १०३० के लेख मे दिए हुए आठो नाम बिजोलियाँ के लेख से और पृथ्वीराज विजय से ठीक मिल जाते है। तनिक अंतर के विषय मे यही कहना आवश्यक होगा कि गूवक (प्रथम) के स्थान पर गोविंदराज लिखा है, जो उक्त प्राकृत नाम का सस्कृत रूप है। शशि नृप और चन्द्रराज भी एक दूसरे के पर्यायवाची है। इसी तरह प्राकृत 'वप्पराज' का सस्कृत रूप वाकपतिराज है।

बिजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराज विजय की वशावली भी पूर्णतः परस्पर मिलती है। बिजोलियाँ के लेख का लौकिक नाम 'गण्डू' संस्कृत मे गोविंदराज मे,

---

ततः शुभं स्थानमिदं विभाव्य प्रारब्धयज्ञो यमपास्तदैन्यः।
विशक्य भीति दनुजव्रजेभ्य. स्मेरस्य सस्मार सहस्ररश्मे. ॥ १५ ॥
अवातरन्मडलतोऽथभासा पत्यु पुमानुद्यतमडलाग्रः।
तं चाभिषिच्याश्वदसीयरक्षाविधौ व्यधादेष मख सुखेन ॥ १६ ॥
पपात यत् पुष्करमत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत्।
यच्चायमागादथ चाहमान. पुमानतोऽख्यायि स चाहमान. ॥ १७ ॥
हम्मीर महाकाव्य, सर्ग १।

'इसल' दुर्लभ मे और 'वीसल*' विग्रहराज मे बदल गए हैं। बिजोलियाँ के लेख का सिंहट नाम पृथ्वीराज-विजय मे नही है और पृथ्वीराजविजय का अपरगांगेय (अमरगंगू)† उक्त शिलालेख मे नही है। प्रबन्धकोप के अन्त मे दी हुई चौहानो की वंशावली भी बीजोल्याँ के लेख और पृथ्वीराजविजय से अधिकतर मिलती है, क्योंकि उसमे दिए हुए ३१ नामो मे से २२ नाम ठीक मिल जाते है। हम्मीर महाकाव्य मे दिए हुए ३१ नामो मे से २१ नाम पृथ्वीराजविजय से और उनके अतिरिक्त ३ नाम प्रबन्धकोष से मिलते है। 'सुर्जनचरित' महाकाव्य बूँदी के चौहान राव सुर्जन के समय मे वि० सं० १६३५ के आसपास बना, इसलिये उसमें प्राचीन ग्रंथो से बहुत अधिक समानता नही पाई जाती, तो भी २७ नामो मे से १३ नाम मिल जाते हैं। उसमे और हम्मीर महाकाव्य तथा प्रबन्धकोष में अधिक समानता है। उपर्युक्त नामो के अतिरिक्त सुर्जनचरित के ७ नाम प्रबन्धकोष या हम्मीर महाकाव्य से मिलते है, परन्तु पृथ्वीराजरासो के ४४ नामो में से केवल कहीं कहीं के ७ नाम ही बिजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराजविजय के नामो से मिलते है, अन्य सब कृत्रिम और कल्पित है। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीराजरासो बहुत अधिक अर्वाचीन है। यदि रासो पृथ्वीराज के समय ही बना होता तो उसकी वंशावली मे और पृथ्वीराजविजय की वंशावली मे इतना अधिक अन्तर न होता। पृथ्वीराजरासो १७ वी सदी के पूर्वार्ध मे बने हुए सुर्जनचरित से भी पीछे प्रसिद्धि मे आया, ऐसा ज्ञात होता है। राजपूताने मे चौहानों का मुख्य और पुराना राज्य बूँदी है। यदि सुर्जन के समय पृथ्वीराजरासो वहाँ प्रसिद्धि मे आगया होता, तो उसी के आधार पर सुर्जनचरित मे वंशावली लिखी जाती, परंतु ऐसा न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उस समय तक बूँदी मे उसकी प्रसिद्धि नहीं हुई थी। उस समय पृथ्वीराजरासो की कुछ कथाएँ जनश्रुति से लोगो मे कुछ कुछ अवश्य प्रचलित थी।

---

* अशोक के लेखवाले दिल्ली के सवालक स्तंभ पर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) के वि० सं० १२२० वैशाख सुति (सुदि) १५ के लेखों में वीसल और विग्रहराज दोनो एक ही राजा के नाम दिए हैं। इन्डियन ऐंटिक्वेरी जिल्द १९ पृष्ठ २१८ और प्लेट।

† अबुलफजल ने अमर गंगू नाम दिया है। वह थोड़े ही दिन राज्य कर बचपन मे मर गया था, जिससे उसका नाम छोड़ दिया गया हो।

पृथ्वीराजरासो और पृथ्वीराज की माता

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है—दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी कुँवरी कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया*, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। अंत मे अनगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बदरिकाश्रम मे तप करने को चला गया। ।" यह सारी कथा कल्पित है, क्योकि उस समय न तो अनगपाल दिल्ली का राजा था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ था। दिल्ली का राज्य तो पहले ही सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज (चतुर्थ) ने ही अपने राज्य (अजमेर) के अधीन कर लिया था। बिजोलियाँ के उक्त लेख मे विग्रहराज का दिल्ली और हाँसी को लेना लिखा है‡। तबकाते नासिरी मे शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पहली लड़ाई मे दिल्ली के राजा गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुलतान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई मे, जिसमे पृथ्वीराज की हार हुई, उस (गोविंदराज) का मारा जाना लिखा है§। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय दिल्ली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार मे थी।

पृथ्वीराज की माता का नाम भी कमला नहीं, किंतु कर्पूरदेवी था और वह दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री नही, किंतु त्रिपुरी (चेदि अर्थात् जबलपुर के आसपास के प्रदेश की राजधानी) के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी॥।

---

* पृथ्वीराजरासो, आदि पर्व, रासोसार, पृ० १५।

। वही; दिल्ली-दान-प्रस्ताव, अट्ठारहवाँ समय, रासोसार, पृ० ६२।

‡ प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः [।]
दिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभित (तं)॥ २२॥
बिजोलियाँ का लेख (छाप पर मे)।

§ तबकातेनासिरी का अँगरेजी अनुवाद (मेजर राबर्टी का किया हुआ); पृ० ४५९–६८।

॥ इति साहससाहचर्यचर्यैस्समयज्ञैः प्र[तिपादि]त प्रभावाम्।
तनया स सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य॥ [१९]॥
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ७।

यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता, तो उसमें यह घटना ऐसी कल्पित न लिखी जाती। पंद्रहवीं शताब्दी का लेखक नयचंद्र भी 'हम्मीर-महाकाव्य' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी देता है* और सुर्जनचरित का कर्त्ता भी कर्पूरदेवी ही लिखता है, तथा उसको दिल्ली के राजा की पुत्री नहीं, किंतु दक्षिण के कुंतल देश के राजा की पुत्री बतलाता है।†

पृथ्वीं पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम् ।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात् ॥ [३०] ॥

वही; सर्ग ८ ।

मुक्तेवति सुधवावंशं गलत्पुरुषमौक्तिक ।
देव सोमेश्वर द्रष्टु राजश्रीरुदकण्ठत ॥ [५७] ॥
आत्मजाभ्यामिव यश प्रतापाभ्यामिवान्वित ।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति ॥ [५८] ॥
कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगविवात्मजौ ।
विवेशाजयराजस्य संपन्मूर्तिमती पुरीम् ॥ [५९] ॥

वही; सर्ग ८ ।

* इलाविलासी जयति स्म तस्मात्
सोमेश्वरोऽनश्वरनीतिरीति. ॥ ६७ ॥
कर्पूरदेवीति बभूव तस्य
प्रिया [प्रिया] राधनसावधाना ॥ ६८ ॥

हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग २ ।

† शकुन्तलाभा गुणरूपशीलै
स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम् ।
कर्पूरधारां जनलोचनाना
कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान् ॥ ४ ॥

सुर्जन चरित, सर्ग ६ ।

पृथ्वीराजरासो और पृथ्वीराज की बहिन

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है-'पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड के राजा समरसिंह (रावल तेजसिह के पुत्र और रत्नसिह के पिता) के साथ हुआ था*, जो पृथ्वीराज के पक्ष मे लड़ता हुआ शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई मे मारा गया †।

यह कथा भी बिलकुल कल्पित है; क्योकि समरसिंह पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ। पृथ्वीराज का देहांत (वि०स०१२४६ ई०स० ११६३मे) हो गया था। समरसिंह का दादा जैत्रसिह उक्त संवत् के बहुत बाद तक विद्यमान था। उसके समय के दो शिलालेख मे से एक एकलिगजी के मदिर के चौक मे और दूसरा नादेसमा गाँव मे चारभुजा के मंदिर के निकटवर्ती सूर्य-मंदिर के स्तंभ पर तथा दो हस्तलिखित पुस्तके मिली है। दोनो शिलालेख क्रमशः वि० सं० १२७०‡ और १२७६§ के है। उसी के समय मे 'पाक्षिकवृत्ति' वि० सं० १३०६$ लिखी गई। इन प्रमाणो से स्पष्ट है कि जैत्रसिह वि० सं० १३०६ तक विद्यमान था। समरसिह का पिता तेजसिंह वि० स० १३२४|| तक तो अवश्य विद्यमान था, जैसा कि उसके

---

* पृथ्वीराजरासो, पृथाव्याह कथा, (इक्कीसवॉ समय) रासोसार; पृ०७०-७१ ।

† पृथ्वीराजरासो, बडी लडाई; (छासठवॉ समय) रासोसार पृ०४२८ ।

‡ संवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्री जैत्रसिंह देवेषु ... (भावनगर प्राचीन-शोधसंग्रह; पृ० ४७, टिप्पण। भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० ६३, टिप्पण)।

§ ओ संवत् १२७६ वर्षे वैशाख सुदि १३ सु (शु) के अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराज-श्रीजयतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये . . . (नादेसमा का शिलालेख) ।

$ सवत् १३०६ वर्षे माघ वदि १४ सोमे स्वस्ति श्रीमदाघाटे महाराजाधिराजभगवन्नारायणदक्षिण-उत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिंहदेवतत्पदविभूषणराजाश्रिते जयसिंहविजयराज्ये ... ...ठ० वयजलेन पाक्षिक वृत्तिलिखितेति ॥

(पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट; पृ०१३०)।

|| संवत् १३२४ वर्षे इहचित्रकूटमाहादुर्गे तलहट्टिकायां पवित्र ... ... महाराज श्रीतेजःसिंहदेवकल्याण विजयी ... ।

दी जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल; जि०५५, भाग १, १८८६, पृ०४६-४७।

समय के उक्त संवत् के शिलालेख से, जो गंभीरी नदी (चित्तोड़ के पास) के पुल के नवे कोठे (महराब) मे लगा है, पाया जाता है। समरसिंह के समय के आठ शिलालेख मिले है, जिनमे से प्रथम वि० सं० १३३०* का है, जो चीरवे के विष्णु-मंदिर की दीवार मे लगा है और अंतिम लेख वि० सं १३५८† का है, जो चित्तोड के रामपोल दरवाजे के बाहर पड़ा हुआ पाया गया। इनसे स्पष्ट है कि रावल समरसिंह वि० स० १३५८ तक अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु से १०९ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था मे पृथाबाई के विवाह की कथा भी कपोलकल्पित है। पृथ्वीराज, समरसिंह और पृथाबाई के वि० सं ११४३ और ११४५ (इस संवत् के दो); वि० सं० ११३९ और ११४५; तथा वि० सं० ११४५ और ११५७ के जो पत्र, पट्टे, परवाने नागरीप्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी पुस्तको की खोज मे फोटो सहित छपे है, वे सब जाली है, जैसा कि हमने नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन सस्करण) भाग १, पृ० ४३२-५२ मे बतलाया है।

पृथ्वीराजरासो और सोमेश्वर की मृत्यु

रासो का कर्त्ता लिखता है 'गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का वैर लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुज-रात पर चढ़ाई कर कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य मे मिला लिए'।‡

यह सारी कथा भी असत्य है, क्योकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीम पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले है, जिनमे से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदी ३ का बिजौलियाँ का

---

* यह शिलालेख मेरी तैयार की हुई छाप के आधार पर छप चुका है (विएना ओरिएटल जर्नल; जि० २१, पृ० १५५—१६२)।

† ओ॥ सवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्या ॰ महाराजाधिराज श्रीसमरसिंह दे [वक] ल्याणविजयराज्ये ॰ ।

आवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित)।

यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल मे सुरक्षित है।

‡ पृथ्वीराजरासो; भीमवध (चौवालीसवाँ समय), रासोसार, पृ० १५९।

प्रसिद्ध लेख है* और अंतिम वि० सं० १२३४ भाद्रपद सुदी ४ का है†। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदि १२ का है।‡ वि० सं० १२३६ के प्रारंभ मे सोमेश्वर का देहांत और पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबंधकोष के अंत की वंशावली से ज्ञात होता है।§ भीमदेव वि० सं० १२३५ मे गद्दी पर बिलकुल बाल्यावस्था मे बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि०सं० १२९८ तक वह जीवित रहा$। इतनी बाल्यावस्था मे वह सोमेश्वर को नही मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उसपर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रथो मे भी कही इस बात का उल्लेख नही है। राजपूताना म्यूजियम मे भीमदेव का वि०सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है॥। आबू पर देलवाड़ा गॉव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन-मन्दिर की वि०सं०१२८७ की प्रशस्ति के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था+।

---

* दी जर्नल, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल; जिल्द ५५, भाग १, ई० स० १८८६ पृ० ४० ४६।

† ओ। स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज श्रीसोमेस्व(श्व)रदेवमहाराये(ज्ये) .... ..

संवत् १२३४ भाद्र[पद]शुदि ४ शुक्रदिने०।

आवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल मे सुरक्षित है।

‡ संवत् १२३६ आषाढ बदि १२ श्रीपृथ्वीराजराज्ये .

लोहारी गाँव का लेख (अप्रकाशित)।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल मे सुरक्षित है।

§ पृथ्वीराज संवत् १२३६ वर्षे राज्यं चकार। संवत् १२४८ मृत.।

(यह वि० स० १२४८ कार्तिकादि है, चैत्रादि १२४९ होगा)

प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ५४।

$ सं० १२३५ पूर्वंवर्षाद्वर्ष ६३ श्रीभीमदेवेन राज्य कृत वही, पृ० २४९।

॥ यह लेख इंडियन ऐंटिक्वेरी, जि० ११, पृष्ठ २२१–२२ मे प्रकाशित हो चुका है।

\+ ओ नम. .. [संव] त् १२८७ वर्षे लौकिक फाल्गुन वदि ३ रवौ अद्येह श्रीमदणहिलराटके ... महाराजाधिराज श्री भ ... विजयिराज्ये ... तस्यैव महाराजाधिराज श्रीभीमदेवस्य प्रसा[द] .. ।

एपिग्राफिया इंडिका, जि० ८, पृष्ठ २१९।

डाक्टर बूलरने वि०सं०१२९६ मार्गशीर्ष वदि १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है।* इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमान पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।

पृथ्वीराजरासो और पृथ्वीराज के विवाह

नाहरराय की पुत्री से विवाह

पृथ्वीराजरासो का कथन है कि पृथ्वीराज का प्रथम विवाह, ग्यारह वर्ष की अवस्था मे, मंडोवर के पडिहार नाहरराय की कन्या से हुआ†। यह कथन भी सत्य नहीं है। मंडोवर का नाहरराय पडिहार पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था, जैसा कि मडोवर के पड़िहारो के वि० स० ८९४ के शिलालेख से पाया जाता है‡। वि० स० १२०० से पूर्व मंडोवर पर मे पडिहारो का राज्य अस्त हो गया था और नाडोल के चौहानो ने उस पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज के समय के आस पास तो नाडोल के चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का मंडोवर पर अधिकार था, जैसा कि वहीं से मिले हुए उसके शिलालेख से पाया जाता है§।

इच्छनी से विवाह

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है कि, १२, वर्ष की अवस्था में, पृथ्वीराज ने आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहिन इच्छनी से विवाह किया$। यह कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। आबू पर सलख या जयत नाम का परमार राजा कभी हुआ ही नहीं। आबू पर की वि० सं० १२८७ की वस्तुपाल के मदिर की प्रशस्ति मे आबू के परमारो की उस समय तक की वशावली दी है+। उसमे वहाँ के परमार राजा यशोधवल का पुत्र धारावर्ष होना लिखा है। यशोधवल का वि० सं० १२०२ का

---

* इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ६, पृष्ठ २०६-२०८।

† पृथ्वीराजरासो, विवाह समय (पैंसठवाँ समय), रासोसार, पृ० ३८२।

‡ एपिग्राफिया इंडिका; जि० १८, पृ० ९५-९७।

§ आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युअल् रिपोर्ट, ई० स० १९०९-१०, पृष्ठ १०२-१०३।

$ पृथ्वीराजरासो, विवाह समय (पैंसठवा समय), रासोसार, पृष्ठ ३८२।

+ एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ८, पृष्ठ २०८-२१३।

शिलालेख राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) मे विद्यमान है। उसके पुत्र धारावर्ष के १४ शिलालेख और १ ताम्रपत्र मिला है, जिनमे से वि० सं० १२२० ज्येष्ठ सुदि १५,* वि० सं० १२६५, १२७१ और १२७४† के चार मूल लेख राजपूताना म्यूजियम मे सुरक्षित है, जिनसे निश्चित है कि पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी के पूर्व से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा धारावर्ष था, न कि सलख या जैत।

दाहिमा चावंड की बहिन से विवाह

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है कि, १३ वर्ष की अवस्था मे पृथ्वीराज ने दाहिमा चावंड की बहन से विवाह किया, जिससे रैणसी का जन्म हुआ ‡। यह कथन भी निराधार कल्पित है, क्योकि पृथ्वीराज का पुत्र रैणसी नहीं किंतु गोविंदराज था, जो पृथ्वीराज के मारे जाने के समय बालक था। फारसी तवारीखो मे उसका नाम 'गोला' या 'गोदा' पढ़ा जाता है, जो फारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविंदराज का बिगडा हुआ रूप ही है। हम्मीर महाकाव्य मे भी गोविंदराज नाम मिलता है§। सुलतान शहाबुद्दीन ने अपनी अधीनता मे उसे अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परंतु उसके सुलतान की अधीनता मे रहने के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया, जिससे वह रणथंभोर मे जा रहा। हरिराज का नाम पृथ्वीराजरासो मे नही दिया, परंतु पृथ्वीराज-

---

* ओं ॥ स्वस्ति श्री संवत् १२२० जेष्ठ सु[शु]दि १५ शनिदिने सोमपर्व्वे महाराजाधिराज-महामंडलेश्वर श्रीधारावर्षदेवेन शासन प्रदत्तं . ।

इंडियन ऐंटिक्वेरी, जि० ५६, पृ० ५१।

† सवत् १२७४ माघफाल्गू (ल्गु) नयो [म] ध्ये [सो]मग्रहणपर्व्वे श्रीसोमराजसंतान जसधवलदेवसूत (सुत) श्रीधारावर्ष विजयराज्ये।

वही; जि० ५६, पृ० ५१।

‡ पृथ्वीराजरासो, विवाह समय (पैंसठवाँ समय), रासोसार, पृ० ३८२।

§ तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक पित्रातो निरासितः।
पुत्रो गोविन्दराजाख्य स्वसामर्थ्यात्तवैभत्र ॥ २४ ॥

हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ४।

विजय, प्रबंधकोश के अंत की वंशावली और हम्मीर महाकाव्य मे दिया है* और फारसी तवारीखो मे हीराज या हेमराज मिलता है,† जो उसी के नाम का बिगडा हुआ रूप है।

इसी तरह रासे मे देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री शशिव्रता और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती से विवाह करना लिखा है‡। ये दोनो बातें भी कल्पित है, क्योकि देवगिरि मे भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। रणथंभोर पर कभी यादवो का राज्य ही नही रहा। उस पर तो पहले से ही चौहानो का अधिकार था। पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद उसके भाई हरिराज ने अपने भतीजे गोविंदराज को अजमेर से निकाला, तब वह रणथंभोर मे रहा§ और हम्मीर तक उसके वंशजो ने वही राज्य किया$।

शशिव्रता और हंसावती से विवाह

इसी प्रकार ११ वर्ष की अवस्था से लगाकर ३६ वर्ष की अवस्था तक के १४ विवाह होना पृथ्वीराजरासो मे लिखा है, जो ऊपर जॉच किए हुए पाँच विवाहो के समान निर्मूल है। पृथ्वीराज ३६ वप तक जीवित भी नही रहा।

---

* जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; ई० स० १९१३, पृ० २७०-७१।

† इलियट; हिस्ट्री ऑफ इंडिया; जिल्द २, पृष्ठ २१९।

‡ पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैसठवॉ समय), रासोसार; पृ० ३८२।

§ मन्त्रयित्वेति भूपीयं सर्वं कोशबलादिकं।
सहादाय चलति स्म रणस्तभपुरं प्रति ॥ २६ ॥
दावपावकवत् वाद्ये ज्वालयन् देशमुद्धसं।
शक· पश्चादुपागत्याऽजयमेरुपुरं ललौ ॥ २७ ॥
अथ प्राप्य रणस्तभ पुरं गोविन्दभूपतेः।
समगमत ते सर्वे वृत्तान्तं च न्यगादिषु· ॥ २८ ॥
पितृव्यस्य तथाभूत मृत्यु श्रुत्वा धराधिपः।
वाचामगोचरं कष्टं कलयामास मानसे ॥ २९ ॥

हम्मीरमहाकाव्य; सर्ग।

$ वही; सर्ग ४ से सर्ग १४ तक।

वह तो ३० वर्ष से पहले ही मारा गया था। वि० सं० १२२६ मे जब वह गद्दी पर बैठा, उस समय वह बालक था और उसकी माता कर्पूरदेवी अपने मंत्री कादम्बवास की सहायता से राज्य-कार्य करती थी*।

यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय मे लिखा गया होता, तो पृथ्वीराज का वंश परिचय, उसके पूर्व पुरुषो की नामावली, माता, पिता, बहिन और रानियो आदि का तो शुद्ध परिचय मिलना चाहिए था। ऐसा न होना यही बतलाता है कि वह पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे चौहानो के इतिहास से अनभिज्ञ चद बरदाई नाम के किसी भाट ने लिखा होगा।

पृथ्वीराजरासो में दिए हुए भिन्न भिन्न संवतों की जाँच

पृथ्वीराजरासो मे दिए हुए सभी सवत् अशुद्ध हैं। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराजरासो के आधार पर चौहानो का इतिहास लिखते समय संवतो की जॉच कर उन्हे अशुद्ध बताया और लिखा कि आश्चर्यजनक भूल के कारण सब चौहान जातियाँ अपने इतिहासो मे १०० वर्ष पहले के संवत लिखती हैं†। रासो को प्राचीन सिद्ध करने की खीचतान मे पं० मोहनलाल विष्णुलाल पड्या ने टॉड का बतलाया हुआ १०० वर्ष का अन्तर देखकर एक नए 'भटायत' सबत् की कल्पना कर वि० स० १९४४ मे 'पृथ्वीराजरासो की प्रथम सरक्षा' नामक पुस्तिका लिखी, परन्तु इस कल्पना से भी पृथ्वीराजरासो के संवतो की अशुद्धि दूर न हुई। इससे पृथ्वीराज के जन्म सवत् १११५ मे ४३ साल जोडकर उसकी मृत्यु ११५८ भटायत संवत् अर्थात् विक्रम

---

* ऋणशुद्धिं विनिर्माय निर्माणैरीदृशै पितु ।
तत्त्वरे दर्शनं कर्तु परलोकजयी नृप ॥ [७१] ॥
ए [काकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम् ।
बालश्च पृथिवीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२] ॥
[इतित्रास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थव्रतचारिणीम् ।
स्थापयित्वा निजा देवी पितृ] भक्त्या दिवं ययौ ॥ [७३] ॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ८ ।

† टॉड राजस्थान (कलकत्ते का छपा अंगरेजी), जिल्द २ पृ० ५००, टिप्पण ।

संवत १२४८ मे माननी पड़ती थी, परंतु वि० सं० १२४६ में अन्य ऐतिहासिक प्रमाणो से उसकी मृत्यु सिद्ध थी। इस वास्ते इन ६ वर्षों की कमी पूरी करने के लिये उन्होने पृथ्वीराज के जन्म संवत् संबधी दोहे* मे 'अनंद' शब्द को देखकर अनंद संवत की कल्पना की और उक्त शब्द का अर्थ 'अनंद' अर्थात् नौ रहित' किया। फिर इसे नौ रहित सौ अर्थात् ६१ वर्ष का अंतर बताकर उन्होने उक्त नवीन संवत् की कल्पना की और कहा कि पृथ्वीराजरासो मे दिए हुए सब संवतो मे ६१ जोड देने से वे शुद्ध विक्रम सवत् हो जाते है। 'अनद संवत की कल्पना' नाम के विस्तृत लेख† मे हमने इसको निराधारता सिद्ध की है। अब हम पृथ्वीराजरासो मे दिए हुए कुछ सवतो की जॉच नीचे करते है—

वीसलदेव की गद्दी-नशीनी का संवत्

पृथ्वीराजरासो मे वीसलदेव की गद्दीनशीनी का सवत् ८२१ दिया है‡ और लिखा है कि उसने शत्रुओ से अजमेर लिया और उसके बुलाने पर वीसल-सरोवर (बीसलिया नाम का तालाब, अजमेर मे) पर अन्य राजा तो आ गए, परंतु गुजरात के चालुक्य राजा बालुकाराय के न आने के कारण वीसलदेव ने उसकी राजधानी पाटन पर चढ़ाई की। बालुकाराय के मन्त्रियों ने उससे मिल कर संधि करली§।

यह संपूर्ण कथन भी निराधार है। अजमेर बसने के बाद वीसलदेव नाम का एक ही चौहान राजा (सोमेश्वर का बडा भाई) हुआ, जिसने अपने नाम से बीसलसर तालाब बनवाया और उसके समय के शिलालेख वि० १२१०-१२२० के मिले हैं$, जिनसे वि० स० ८२१ अर्थात् पंड्याजी के अनंद संवत् के अनुसार वि०

---

* एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनद। तिहिंरिपु जय पुर हरन कौं, भय पृथीराज नरिंद।

† नागरीप्रचारिणी पत्रिका, (नवीन संस्करण) जिल्द १, पृष्ठ ३७७-४५४।

‡ आठ सैं रु इक ईस बैठि बीसल सु पाट बल। सुक्रवार प्रतिपदा मास वैसाख सेत पख॥ ३३६॥

पृथ्वीराजरासो, आदिपर्व, पहिला समय पृ० ६६।

§ पृथ्वीराजरासो; आदि पर्व, पहला समय, रासोसार पृ० ११।

$ सवत् १२१० मार्ग सुदि ५ आदित्यदिने श्रवण नक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे वालवकरणे

सं० ६३१ में उसका राज्याभिषेक होना किसी प्रकार नहीं माना जा सकता। इसी तरह पंड्याजी के माने हुए संवत् तक पाटन मे सोलंकियो का अधिकार भी नही हुआ था। उस समय तो क्षेमराज चावडा गुजरात का राजा था। वि० सं० १०१७ मे सोलंकी मूलराज ने अपने मामा सामतसिंह को मारकर पाटन का राज्य लिया और चावड़ा वंश की समाप्ति की। बालुकाराय नाम का सोलंकी राजा गुजरात मे कोई हुआ ही नही।

विग्रहराज (वीसलदेव) नाम के चार चौहान राजा हुए, जिनमे से तीन तो अजमेर बसने से पूर्व हुए थे। दूसरे विग्रहराज ने, जिसके समय की वि० सं० १०३० की हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति है, मूलराज सोलंकी पर, जिसने १०१७ से १०५२ तक राज्य किया था* शाकंभरी (साँभर) से चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन पृथ्वीराजविजय, हम्मीर महाकाव्य और प्रबंध-चिंतामणि में मिलता है परंतु पृथ्वीराजरासो के कर्त्ता को तो केवल एक वीसलदेव का ज्ञान था, जिसने वीसलसर बनाया था। वह वस्तुतः चतुर्थ वीसलदेव था। वीसलदेव (दूसरे) की सोलंकी राजा मूलराज पर चढाई करने की परंपरागत स्मृति से रासो के कर्त्ता ने चौथे वीसलदेव की गुजरात पर चढ़ाई लिख दी और वहाँ के राजा का ठीक नाम ज्ञात न होने से उसका नाम चालुकराय धर दिया।

पृथ्वीराजरासो मे वि० सं० १११५ मे पृथ्वीराज का जन्म होना लिखा है। यदि पंड्याजी के कथनानुसार इसे अनंद विक्रम संवत् माने तो भी (१११५+६१)

हरकेलि-नाटकं समाप्त॥ मंगल महाश्री॥ कृतिरियं महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविग्रहराजदेवस्य ·····

(शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर में सुरक्षित)।

ॐ॥ संवत् १२११ श्री (श्री) परमपाशु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रसादे मण्डप[मूषित]॥

(लोहारी के मंदिर का लेख, अप्रकाशित)।

ॐ संवत् १२२० वैशाख शुदि १५ शाकंभरी भूपति श्रीमदन्नल्लदेवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य॥

इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १, पृ० २१।

* राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ २१४—१५।

पृथ्वीराज का जन्म संवत्

विक्रम संवत् १२०६ मे पृथ्वीराज का जन्म मानना पडता है, जो सर्वथा असंभव है, क्योकि पृथ्वीराजविजय मे लिखा है कि सोमेश्वर के देहान्त के समय (वि० सं० १२२६ मे) पृथ्वीराज बालक था। वि० सं० १२०६ तक तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भी बालक था और उसका विवाह भी नहीं हुआ था। पृथ्वीराजविजय मे लिखा है कि सोमेश्वर के उत्पन्न होने पर उसके नाना जयसिंह (सिद्धराज) ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। उसके बाद कुमारपाल ने बालक सोमेश्वर का पालन किया। सोमेश्वर बहुत वीर हुआ। एक युद्ध मे उसने कुमारपाल के शत्रु कोकण के शिलारा राजा मल्लिकार्जुन को मारा था। फिर उसने चेदि कलचुरि राजा की पुत्री से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उसका चूडाकर्म संस्कार होने के नौ मास बाद हरिराज उत्पन्न हुआ।*

इस वर्णन से दो तीन बातें स्पष्ट होती है कि कुमारपाल के गद्दी पर बैठने के समय अर्थात् वि० सं० ११९९ मे सोमेश्वर बालक था। मल्लिकार्जुन के वि० स० १२१३ और १२१७ के लेख† और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का प्रथम लेख

---

* ज्यैष्ठस्य प्रथयन्परन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मा स्थितिम् ।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन्भानो· प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ [५०] ॥

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ७ ।

प्रसूतपृथ्वीराजा देवी गर्भवती पुन ।
उदेश्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ ॥ [४७] ॥
माघस्याथ तृतीयस्या सितायामपरं सुतम् ।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्त] परमवाप सा ॥ [४९] ॥
युद्धेष्वस्य हस्तिदलनलीला भविष्यन्ती जानतेव हरिराजनाम्नायं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पष्ट ।
हरिराजो हि हस्तिमर्दन ।

श्लोक ५० पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक बहुत सा नष्ट हो गया है ।

वही; सर्ग ८ ।

† बबई गजेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ० १८६ ।

वि० सं० १२१६ का * मिला है। इससे स्पष्ट है कि मल्लिकार्जुन वि० सं० १२१८ मे सोमेश्वर के हाथ से मारा गया, जिसके पीछे सोमेश्वर ने चेदि देश मे जाकर कर्पूरदेवी से विवाह किया। बहुत संभव है कि वि० १२२० या उसके कुछ पीछे पृथ्वीराज का जन्म हुआ हो। पृथ्वीराज विजय मे विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग मे लिखा है कि अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रो के पैदा होने का समाचार सुनकर वह मरा†। वीसलदेव की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी संवत मे हुई, जैसा कि उसके अंतिम लेख वि० सं० १२२० और उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीभट्ट (पृथ्वीराज दूसरे) के वि० सं० १२२४ के लेख से मालूम होता है ‡। इस तरह पृथ्वीराजरासो का वि० स० १११५ तथा पड्याजी की उक्त नवीन कल्पना के अनुसार वि० स० १२०६ मे पृथ्वीराज का जन्म होना सर्वथा असंभव है।

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है कि वि० सं० ११३६ मे पृथ्वीराज के सामत सलख (आबू का परमार) ने शहाबुद्दीन को कैद किया§, यह कथन भी कल्पित है। हम ऊपर बतला चुके है कि आबू पर सलख नाम का कोई परमार राजा ही नही हुआ। यदि इस सवत् को अनंद विक्रम संवत् अर्थात् वि० सं० १२२७ माना जाय, तो भी यह संवत् ठीक नही ठहरता। वि० स० १२२७ तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नही बैठा था और न उस समय तक शहाबुद्दीन गोरी भारत मे आया था। वि० सं० १२२०-२१ मे गयासुद्दीन गोरी ने गोर का राज्य पाया। उसके छोटे भाई शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं० १२३० मे गजनी भी छीनी, जिस पर गयासुद्दीन ने उसे वहाँ का हाकिम बनाया। उसने

पृथ्वीराज के सामत सलख के शहाबुद्दीन को कैद करने का संवत्

---

* वही, पृष्ठ १८६।

† अथ भ्रातुरपत्याभ्यां सनाथां जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम्॥ [५३]॥

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८।

‡ इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द ४१, पृ० १६।

§ पृथ्वीराजरासो, सलख युद्ध समय (तेरहवाँ समय), पृ० ५३।

वि० स० १२३२ मे भारत पर चढ़ाई कर मुलतान लिया तो वि० स० १२२७ मे पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन को कैद करना कहाँ तक ठीक सिद्ध हो सकता है। इसी तरह रासो मे दिया हुआ वि० स० १३३८ और अनंद विक्रम संवत् के अनुसार वि० सं० १२२९ मे चामुण्डराय द्वारा शहाबुद्दीन गोरी को कैद करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि गोरी तो वि० सं० १२३२ मे भारत आया था और उस समय तक पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

रासो मे लिखा है कि पृथ्वीराज वि० सं० ११३८ मे दिल्ली की गद्दी पर बैठा* और उसी वर्ष मे उसने खाटू के जंगल से धन निकाला†। समुद्रशिखर के यादव राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती से वि० सं० ११३९ मे उसने विवाह किया‡। वि० सं० ११४१ मे दक्षिण देशीय राजाओ ने कर्नाट देश की एक सुन्दरी वेश्या पृथ्वीराज को अर्पण की$। ये सारे सम्वत् कल्पित है। अनंद सम्वत् मानने से ये सम्वत् क्रमशः १२२९, १२३० और १२३२ होते है; तो भी वे निराधार ठहरते है, क्योंकि उस समय तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

कुछ अन्य सवत्

इसी तरह पृथ्वीराजरासो मे दिए हुए सभी सम्वत् कल्पित हैं, जिनका विवेचन हम अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना नामक लेख मे कर चुके हैं। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो सम्वतों मे इतनी अशुद्धियाँ न होती।

पृथ्वीराजरासो की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाएँ

पृथ्वीराजरासो मे केवल उपर्युक्त घटनाएँ और सम्वत् ही अशुद्ध नहीं दिए, परन्तु उसका मूल कथानक भी ऐतिहासिक कसौटी पर परीक्षा करने से प्रायः संपूर्ण अशुद्ध ठहरता है। उसमे दी हुई मुख्य घटनाएँ प्रायः सभी निराधार तथा अनैतिहासिक है। उनमे से बहुत सी घटनाओ की जाँच ऊपर हो चुकी है।

---

* पृथ्वीराजरासो; दिल्लीदान प्रस्ताव (अट्ठारहवाँ समय), रासोसार, पृ० ६२-६३।

† वही; धन कथा (चौबीसवाँ समय), रासोसार, पृ० ७४।

‡ वही, पद्मावती-विवाह-कथा (बीसवाँ समय), रासोसार, पृ० ६८-६९।

$ वही, कर्नाटी पात्र समय (तीसवाँ समय), रासोसार, पृ० ११२।



अतएव बाकी की घटनाओं में से कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं की जाँच यहाँ करते हैं—

पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना

चन्दबरदाई ने लिखा है कि अनंगपाल ने अपने दोहते पृथ्वीराज को गोद लेकर वि० सं० ११३८ में दिल्ली का राज्य दे दिया। यह कथा भी सर्वथा निराधार है। हम ऊपर बता चुके हैं कि दिल्ली का राज्य तो वीसलदेव ने पहले ही अपने राज्य में मिला लिया था और अनंगपाल की पुत्री से पृथ्वीराज का जन्म नहीं हुआ था। दिल्ली का राज्य तो अजमेर के राज्य का सूबा मात्र था।

मेवाती मुगल से युद्ध

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुगल राजा (मुग्दलराय) से अन्य राजाओं के समान कर माँगा। उसके इंकार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढ़ाई करदी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातों रात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र वाजिदखाँ मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ*।

यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अन्तर्गत था। वहां कोई स्वतंत्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।

संयोगिता का स्वयंवर

चंदबरदाई लिखता है कि कन्नौज के राजा विजयपाल ने, जिसने दिल्ली के अनंगपाल की पुत्री सुंदरी से विवाह किया था, विजय-यात्रा करते हुए सेतुबंध तक का सारा प्रदेश जीत लिया। बहुत से राजा अधीन हो गए, परंतु पृथ्वीराज ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के सुंदरी में उत्पन्न पुत्र जयचंद ने भी जब राजसूय यज्ञ के लिये सब राजाओं को निमंत्रित किया, तब भी पृथ्वीराज न आया। इसलिये और पृथ्वीराज से अपने नाना अनंगपाल का आधा दिल्ली का राज्य लेने के

---

* पृथ्वीराजरासो; मेवाती मुगलकथा (आठवाँ समय), रासोसार, पृ० ३८।

लिये उसने पृथ्वीराज और उसके सहायक रावल समरसिंह पर आक्रमण किया, परंतु उसमे सफलता न हुई। इसलिये उसने राजसूय के साथ सयोगिता के स्वयंवर-मंडप मे द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा रखी। संयोगिता ने, जो पृथ्वीराज की वीरता पर पहले से ही मुग्ध थी, उसकी प्रतिमा के गले मे ही वरमाला डाली। इस पर जयचद ने क्रुद्ध होकर संयोगिता को कैद कर लिया। पृथ्वीराज यह सुनकर ससैन्य कन्नौज पर चढा और युद्ध कर संयोगिता को लेकर दिल्ली लौट आया। इस-पर लाचार होकर जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकंठ को दिल्ल भेजकर दोनो का विधि-पूवक विवाह करा दिया* ।

इस संपूर्ण कथन मे विजयपाल के पुत्र जयचंद के उसके पीछे गद्दी पर बैठने और पृथ्वीराज तथा जयचंद की समकालीनता के सिवा एक भी बात सत्य नही है। सोमेश्वर के समय अनंगपाल दिल्ली की गद्दी पर था ही नही और न उसकी पुत्रियो का विजयपाल और सोमेश्वर से विवाह हुआ था। कमला के सोमेश्वर के साथ विवाह की कथा के समान सुंदरी के विजयपाल के साथ विवाह की की कथा भी कल्पित ही है। विजयपाल के दिग्विजय की कथा भी निर्मूल है। रासो मे उक्त प्रसंग के सम्बंध मे जिन-जिन राजाओ के नाम दिए हैं, वे सब प्राय: कल्पित है। समरसिह का जन्म भी उस समय तक नही हुआ था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। जयचद के राजसूय यज्ञ की बात मनगढ़त कथा ही है। जयचंद बहुत दानी राजा था। उसके कई उपलब्ध दानपत्रो से पाया जाता है कि उसने प्रसंग-प्रसंग पर अनेक भूमिदान किए। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता, तो उस महत्वपूर्ण अवसर पर वह बहुत अधिक दान करता, परतु उसके सबध का न तो अब तक कोई दानपत्र ही मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचद की परस्पर लडाई और संयोगिता-स्वयंवर की कथा भी ऐतिहासिक नही है। ग्वालियर के तँवर राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि जयचद ने वि० स० १४६० के आसपास 'हम्मीर महाकाव्य' बनाया, जिसमे पृथ्वीराज का विस्तृत वर्णन दिया है और उसी की रची हुई 'रंभामंजरी' नाम की नाटिका मे उसने जयचन्द को उसका नायक बनाया है, जिसकी प्रशसा मे लगभग दो पृष्ठ उसके बिशेषणो के दिए हे। इन दोनों

* पृथ्वीराजरासो, सयोगिता नाम प्रस्ताव (पचासवाँ समय), रासोसार, पृ० १८५–८८ ।

पुस्तकों मे पृथ्वीराज और जयचन्द की पारस्परिक लड़ाई, राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख तक नही है। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १४६० तक ये कथाएँ प्रसिद्धि मे नही आई थी।

रावल समरसिह के ज्येष्ठ पुत्र कुंभा का बीदर जाना

रासे के ६६ वें समय से पाया जाता है कि रावल समरसिंह ने, शहाबुद्दीन के साथ की अंतिम लड़ाई मे जाते समय, अपने छोटे पुत्र रतनसिह को उत्तराधिकारी बनाया, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र कुंभ (कुंभा) दक्षिण मे बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जा रहा।

शहाबुद्दीन के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई तक न तो समरसिंह का जन्म हुआ था और न दक्षिण मे मुसलमानो का प्रवेश हुआ था। मुसलमानों का प्रथम प्रवेश दक्षिण मे अलाउद्दीन खिलजी के समय वि०स० १३५६ मे हुआ। बहमनी सुलतान अलाउद्दीन हसन ने दिल्ली के सुलतान से विद्रोह कर बहमनी राज्य की स्थापना की थी। इस वंश का दसवाँ सुलतान अहमदशाह वली ई० स० १४३० (वि०सं०१४८७) मे बीदर बसाकर गुलबर्गा से अपनी राजधानी वहाँ ले आया। अतएव ऊपर लिखा हुआ कुंभा का वृत्तांत वि०सं० १४८७ से पीछे लिखा जा सकता है, जिससे पूर्व बीदर का पृथक राज्य भी स्थापित नही हुआ था।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की मृत्यु

चंदबरदाई पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की अन्तिम लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखता है कि शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा ली। फिर चंद कवि योगी का भेष धारण कर गजनी पहुंचा और उसने सुलतान से मिलकर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चद के संकेत के अनुसार शब्द बेधी बाण चलाकर सुलतान का काम तमाम कर दिया। फिर चद ने अपने जूड़े मे से छुरी निकालकर उससे अपना पेट काटकर वह छुरी पृथ्वीराज को दे दी, जिससे उसने भी अपना पेट फाड़ लिया। इस प्रकार तीनों की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रैणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा*।

---

* पृथ्वीराजरासो, बडी लडाई समय (छाछठवाँ समय), गासोमार प०२८३–४३४।

यह संपूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नही है, क्योकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से वि० सं० १२४९ मे नहीं, किंतु वि० सं० १२६३ चैत्र सुदि ३ को गक्खरो के हाथ से हुई थी। जब वह गक्खरो को परास्त कर लाहोर से गजनी जा रहा था उस समय, धमेक के पास, नदी के किनारे बाग मे नमाज पढता हुआ वह मारा गया। पृथ्वीराज के पीछे भी उसका पुत्र गोविंदराज दिल्ली की गद्दी पर नहीं, किंतु अजमेर की गद्दी पर बैठा था, न कि रेणसी, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

इस तरह ऊपर कुछ मुख्य घटनाओ की जॉचकर हमने देखा कि वे बिलकुल असत्य है और उनका लेखक चौहानो के इतिहास से बिलकुल अपरिचित था। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो इतनी बड़ी भूले न करता।

पृथ्वीराजरासो का समय-निर्णय

यहा तक हमने पृथ्वीराजरासो की विभिन्न घटनाओ की जांच कर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वह ग्रथ पृथ्वीराज के समय मे नही बना। तब वह कब बना, इस पर विचार करना आवश्यक है। हमारी सम्मति है कि वह ग्रंथ विक्रम संवत् १६०० के आस-पास बना। इसके लिये हम संक्षेप से नीचे विचार करते है—

वि० सं० १४६० मे हम्मीर महाकाव्य बना, जिसका निर्देश ऊपर कई जगह किया गया है। उसमे चौहानों का विस्तृत इतिहास है, परंतु उसमे पृथ्वीराजरासो के अनुसार चौहानों को अग्निवंशी नही लिखा और न उसकी वंशावली को आधार माना गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक पृथ्वीराजरासो प्रसिद्धि मे नही आया। यदि रासो की प्रसिद्धि हो गई होती, तो हम्मीर महाकाव्य का लेखक उसी के आधार पर चलता।

चन्दबरदाई ने रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाना लिखा है, जिसकी जॉच हम ऊपर कर चुके है। पृथ्वीराज के समय मे तो दक्षिण मे मुसलमानो का प्रवेश भी नही हुआ था। बीदर का राज्य तो बहमनी राज्य की उन्नति के समय मे अहमदशाह वली ने ई० सं० १४३० (वि० सं० १४८७) मे स्वतन्त्र रूप मे स्थापित किया। इससे यह निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो उक्त संवत् के पीछे बना होगा।

चन्द्बरदाई ने सोमेश्वर और पृथ्वीराज की मेवात के मुगल राजा से लड़ाई और उसमे उसके क़ैद होने तथा उसके पुत्र वाज़िदखाँ के मारे जाने की कथा लिखी है, जिसकी जाँच हम ऊपर कर आए हैं। हिन्दुस्तान मे मुगल राज्य तो वि० संवत् १५८३ मे बाबर ने स्थापित किया। उससे पूर्व भारत मे मुगलो का कोई राज्य था ही नही और मुगलों का सबसे पहला प्रवेश, मुगल तैमूरलग द्वारा वि० सं० १४५५ मे हुआ, जिससे पहले मुगल-राज्य की भारत मे कल्पना भी नही की जा सकती। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासो वि० सं० १५८३ मे और यदि बहुत पहले भी मानें तो वि० सं० १४५५ से पूर्व नही बन सकता।

महाराणा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १५१७ मे कुम्भलगढ़ के किले की प्रतिष्ठा की और वहाँ के मामादेव (कुम्भ स्वामी) के मंदिर मे बड़ी-बडी पाँच शिलाओ पर कई सौ श्लोको का एक विस्तृत लेख खुदवाया, जिसमे मेवाड़ के उस समय तक के राजाओ का बहुत कुछ वृत्तांत दिया है। उसमे समरसिंह के पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह करने या उसके साथ शहाबुद्दीन की लडाई मे मारे जाने का कोई वर्णन नहीं है, परन्तु वि० सं० १७३२ मे महाराणा राजसिंह ने अपने बनवाए हुए राजसमुद्र तालाब के नौ चौकी नामक बाँध पर २५ बडी-बडी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया, जो अब तक विद्यमान है। उसके तीसरे सर्ग मे लिखा है कि "समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह किया और शहाबुद्दीन के साथ की लडाई मे वह मारा गया, जिसके वृत्तांत भाषा के 'रासो' नामक पुस्तक मे विस्तार से लिखा हुआ है।"* इन दोनो लेखो से निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो

---

* ततः समरसिंहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपते ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दत ॥ २४ ॥
गोरीसाहिबदीनेन गज्जनीशेन सगर ।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामतशोभित· ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत् ।
स द्वादशसहस्रैस्ववीराणासहितो रणे ॥ २६ ॥
बध्वा गोरीपतिं दैवात् स्वर्यात· सूर्यबिंबमित् ।
भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तर ॥ २७ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३ ।

वि० सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय मे बना होगा। वि० सं० १६४२ की पृथ्वीराजरासो की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति मिली है, इसलिये उसका वि० स० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् १६०० के आसपास बनना अनुमान किया जा सकता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा

पृथ्वीराजरासो की भाषा विक्रम की तेरहवी शताब्दी की नहीं, किंतु वि० सं० १६०० के आसपास की है। हेमचद्र के 'प्राकृत व्याकरण' मे अपभ्रंश भाषा के छंदोबद्ध उदाहरणो, सोमप्रभ के 'कुमारपाल प्रतिबोध', मेरुतु ग की 'प्रबंध-चितामणि' तथा 'प्राकृत-पिंगल' मे दिए हुए रणथभोर के अंतिम चौहान राजा हम्मीर के प्रशंसात्मक पद्य, तथा वि० म० १५९२ के बीठू सूजा रचित 'जैतसी राव को छद' नामक ग्रथ मे मिलनेवाले छदो की भाषा मे पृथ्वीराजरासो की भाषा का मिलान किया जाय, तो बहुत बडा अंतर मालूम होता है। पठित चारण और भाट लोग अब भी कविता बनाते है, उसमे वीर रस को कविता बहुधा डिंगल भाषा मे करते है और दूसरी कविता साधारण भाषा मे। डिंगल भाषा की कविता मे व्याकरण की ठीक व्यवस्था नही होतो और शब्दो के रूप तथा विभक्तियो के चिन्ह कुछ पुराने ढ़ग के होते है। एक ही ग्रंथ मे भिन्न-भिन्न प्रकार की कविता देखनी हो, तो विक्रम संवत् १८७९ मे आढा किशन के बनाए हुए 'भीमविलास' और विक्रम की बीसवी सदी मे बने हुए मिश्रण सूर्यमल के वृहद्ग्रंथ 'वशभास्कर' को देखना चाहिए। राजस्थानो भाषा की कविता मे पहले फारसी-शब्दो का प्रयोग नही होता था, पीछे से कुछ-कुछ होने लगा। पृथ्वीराजरासो मे प्रति सैकडा दस फारसी शब्द पाए जाते है, जो उसकी प्राचीनता सिद्ध नहीं करते। आधुनिक लेखक भी स्वीकार करते है कि 'भाषा' की कसौटी पर यदि ग्रन्थ (पृथ्वीराजरासो) को कसते है तो और भी निराश होना पडता है, क्योकि वह बिल्कुल बेठिकाने है—उसमे व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नही है। दोहो की और कुछ-कुछ कवित्तो (छप्पयो) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदो मे तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दो की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसे किसी ने संस्कृत प्राकृत की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे मे ढली सी दिखाई पडती है, क्रियाएँ नए रूपो मे मिलती है। पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली

प्राचीन साहित्यिक रूप मे भी पाई जाती है, जिसमे प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के रूप और विभक्तियो के चिह्न पुराने ढंग के हैं। इस दशा मे भाटो के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का रह गया है*।

भाषा की दृष्टि से भी रासो वि० सं० १६०० से पूर्व का सिद्ध नही हो सकता।

पृथ्वीराजरासो का परिमाण

भाषा साहित्य के आधुनिक इतिहास-लेखक जब पृथ्वीराजरासो की घटनाएँ अशुद्ध पाते है, तब यह कहते हैं कि 'मूल पृथ्वीराजरासो छोटा होगा और पीछे से लोगो ने उसे बढ़ा दिया हो, यह सम्भव है', परन्तु यह कथन भी स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि चन्द्बरदाई के वंशधर कवि जदुनाथ ने करौली के यादव राजा गोपालपाल (गोपालसिंह) के राज्य-समय अर्थात् वि० स० १८०० के आसपास 'वृत्तविलास' नाम का ग्रन्थ बनाया। उसमे वह अपने वंश का परिचय देते हुए लिखता है कि 'चन्द ने १०५००० श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) के परिमाण का पृथ्वीराज के चरित्र का रासो बनाया।'† यह कथन नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो द्वारा प्रकाशित रासो के परिमाण से मिल जाता है। जदुनाथ के यहाँ अपने पूर्वज का बनाया हुआ मूल ग्रंथ अवश्य होगा, जिसके आधार पर ही उसने उक्त ग्रंथ का परिमाण लिखा होगा। ऐसी स्थिति मे पृथ्वी- राजरासो के छोटा होने की कल्पना भी निर्मूल है।

पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिद्ध करनेवालों की कुछ अन्य युक्तियाँ

पृथ्वीराजविजय के पाँचवे सर्ग मे विग्रहराज के पुत्र चन्द्रराज का वर्णन करते हुए जयानक ने उसे अच्छे वृत (छन्द) सग्रह करनेवाले चन्द्रराज से उपमा

---

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका; (नवीन सस्करण) भाग ६, पृ० ३३-३४।

† एक लाख रासौ कियो सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु जाहर सकल जिहान॥ ५६॥
नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ५, पृष्ठ १६७।

दी है। इस पर से कोई-कोई विद्वान् यह कल्पना करते है कि अच्छे छन्दो का वह सग्रह-कर्त्ता चन्दबरदाई हो*, परन्तु यह युक्ति भी स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योकि चन्दबरदाई रासो मे अपने को पृथ्वीराज का मित्र और सर्वेसर्वा होना बतलाता है। इसके विपरीत पृथ्वीराजविजय का कर्त्ता पृथ्वीराज के बंदिराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम 'पृथिवीभट' देता है, न कि चन्द। कश्मीरी पंडित जयानक ने जिस चन्द्रराज का उल्लेख किया है, वह वही चन्द (चन्द्रक) कवि हो सकता है, जिसका उल्लेख विक्रम की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे होने वाले कश्मीरी क्षेमेद्र ने भी किया है†। इसके सिवाय चन्द नाम के कई और भी ग्रंथकार हुए, परन्तु उनमे से किसी को हम चंदबरदाई नही मान सकते।

मिश्रबंधुओ का लिखना है कि 'यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि मे इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी (२५००-पृष्ठो का) वढिया महाकाव्य चद को क्यो समर्पित कर देता'‡। इसके उत्तर में इतना ही लिखना आवश्यक होगा कि चद नाम के अनेक कवि समय समय पर हो सकते है। कालिदास नामक अनेक कवि हो गए और तैरहवी सदी के आस-पास होनेवाले 'ज्योतिर्विदाभरण' के कर्त्ता ज्योतिषी कालिदास ने अपने को विक्रम का मित्र और उसके दरबार के नवरत्नो मे से एक होना लिख दिया है। इतना ही नही, किंतु कलियुग सवत् ३०६८ (वि० स० २४) मे अपने ग्रन्थ का प्रारंभ और अंत होना भी लिख डाला है।

उपसंहार

इस तरह हमने जॉचकर देखा कि पृथ्वीराजरासो बिलकुल अनैतिहासिक ग्रंथ है। उसमे चौहानो, प्रतिहारो और सोलकियो की उत्पत्तिके सबंध की कथा, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और रानियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओ के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ

---

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, पृ० ३४।

† आफ्रेक्ट, कैटेलॉगस कैटेलॉगरम, भाग १, पृ० १७६।

‡ मिश्रबंधु; हिंदीनवरत्न, (तृतीय सस्करण) पृष्ठ ५६१।

तथा सामंतो आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित है; कुछ सुनी सुनाई बातो के आधार पर उक्त बृहत् काव्य की रचना की गई है। यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय मे लिखा जाता तो इतनी बडी अशुद्धियो का होना असंभव था। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रंथ प्राचीन नही दीखता। इसकी डिंगल भाषा मे जो कहीं-कहीं प्राचीनता का आभास होता है वह तो डिंगल की विशेषता ही है। आज की डिंगल मे भी ऐसा आभास मिलता है, जिसका बीसवीं सदी मे बना हुआ 'वंश-भास्कर' प्रत्यक्ष उदाहरण है। रासो की भाषा मे फारसी शब्दो की बहुलता भी उसके प्राचीन होने मे बाधक है। वस्तुतः पृथ्वीराजरासो वि० सं० १६०० के आस-पास लिखा गया। वि० स० १५१७ की प्रशस्ति मे रासो की घटनाओं का उल्लेख नही है और रासो की सब से पुरानी प्रति वि० सं० १६४२ की मिली है, जिसके बाद यह ग्रथ बहुत प्रसिद्ध हो गया, यहाँ तक कि वि० सं० १७३२ की राजप्रशस्ति मे रासो का स्पष्ट उल्लेख है। यह भी नही कहा जा सकता कि पहले पृथ्वीराज-रासो का मूल ग्रथ उसके वतमान परिणाम से बहुत छोटा था, परतु पीछे से बढ़ाया गया है, क्योकि आज से १८५ वर्ष पूर्व उसी के वशज कवि जदुनाथ ने उसका १०५००० श्लोको का होना लिखा है। पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिद्ध करने के लिए जो दूसरी युक्तियाँ दी जाती हैं, वे भी निराधार ही है। अनद विक्रम संवत् की कल्पना तो बहुत व्यथ और निमू ल है, जिसका विस्तृत खडन नागरी-प्रचारिणी पत्रिका मे किया जा चुका है। सक्षेप से इस लेख मे भी उसकी जाँच की गई है।

इस ग्रंथ के प्रसिद्धि मे आने के कारण राजपूताने के इतिहास मे बहुत अशुद्धि हुई। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर आदि राज्यो की ख्यातो के लिखनेवालो ने रासो के सवतो को शुद्ध मानकर वहाँ के कई पुराने राजाओ के संवत् मनमाने झूठे धर दिए। हिंदी भाषा का इतिहास लिखनेवाले जो विद्वान् चदबरदाई को पृथ्वीराज का समकालीन मानते है, वे सत्य जाँच की उपेक्षा कर हठधर्मी ही करते है। यदि वे निष्पक्ष होकर इसकी पूरी जाँच करें, तो उन्हे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि रासो वि० स० १६०० से पूर्व का बना हुआ नही है और न वह ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

सम्पादकीय टिप्पण

1. पृ० ७६, पंक्ति १०, 'अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राजकन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए।' 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य' मे सुधवा के पुत्रो का उल्लेख है; परन्तु उनमे नाम केवल विग्रहराज (चतुर्थ, बीसलदेव) का ही मिलता है, जो छोटा पुत्र था। अन्य आधारो से सुधवा से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र का नाम जगद्देव निश्चित हुआ है, जिसने अपने पिता अर्णोराज का सहार किया था। पितृहता होने के कारण वंशावली लेखक ऐसे व्यक्ति का नाम नही लिखते, जिससे उस (जगद्देव) का नाम भी वंशावली मे नही रखा गया हो ।

2. पृ० ७६, पंक्ति २६, 'अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी मे अपने मन्त्री कादंबवाम (कादबवास) की सहायता से कर्पूरदेवी राज-काज चलाने लगी।' महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज (तृतीय) के समय कादंबवास चौहान राज्य का प्रधान मन्त्री था। रासो मे उस (कादबवास) का नाम कैमास बतलाते हुए महाकवि चन्द ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है एव उसको दाहिमा जाति का क्षत्री बतलाया है। मारवाड मे मारोठ का समीपवर्ती प्रदेश 'दधिमत प्रदेश' कहलाता है और दाहिमा क्षत्री उसको अपना उत्पत्ति स्थान मानते हैं। दाहिमा क्षत्रियो की भांति ब्राह्मणो की एक ज्ञाति 'दधिमत प्रदेश' के नाम से 'दाधीच' (दाहिमा) ब्राह्मण भी हैं।

मन्त्री कादंबवास चौहान राज्य का बुद्धिमान मन्त्री था, जिसका समर्थन पृथ्वीराज विजय से भी होता है। जैन ग्रन्थो मे भी उसके लिए उल्लेख है कि खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनपतिसूरिजी एवं पद्मप्रभ (दिगंबर आचार्य) के बीच वि०सं०१२३९ मे शास्त्रार्थ हुआ, तब महाराजा पृथ्वीराज ने निर्णायक का स्थान ग्रहण किया था और उसकी अविद्यमानता मे मन्त्री कादंबवास ने। इससे स्पष्ट है कि कादंबवास विद्वान् भी था ।

3. प० ८३, पक्ति ८, 'प्रतिहार चालुक्य (सोलंकी) और चौहानों के १६ वी शताब्दी के पूर्व के शिलालेखो और पुस्तको मे कही अग्निवंश या वशिष्ठ के यज्ञ के संवध की कोई बात नहीं मिलती।' प्रतिहारो, चालुक्यो और चौहानों के शिलालेखो आदि मे उनकी अर्बुद पर वशिष्ठ के यज्ञ से उत्पत्ति होने की तथा

अग्निवंशी होने की कथा नही है, और केवल परमारो के लिए ही उनके शिलालेखो आदि मे वशिष्ठ के यज्ञ से उत्पन्न होने का वर्णन हुआ है। वस्तुतः यह चारो भिन्न-भिन्न राजवंश हैं और उनको रघुवंशी, सूर्यवंशी, चंद्रवंशी और अग्निवंशी नामों से संबोधित किया गया है। ना०प्र०सभा० द्वारा प्रकाशित रासो मे आक्षेपयुक्त कथा अवश्य है और अन्य प्रतियो मे भी लिखा मिलता है। किन्तु रासो से ही यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि महाकवि चंद ने दोहा, कवित्त, साटक और गाथा छन्दो मे ही अपनी रचना की थी, जिनमे कही यह वर्णन नहीं है, एवं यह वर्णन अन्य प्रकार के छन्दो में है, जो चन्द की रचना के न होकर क्षेपक रूप मे पीछे से जोड दिये गये है। यह मानने योग्य है कि प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चौहान वंश की उत्पत्ति विषयक अग्निवंशी और वशिष्ठ ऋषि द्वारा अर्बुद पर होने वाले किसी यज्ञ विशेष की कथा के कथन मूल मे चन्द रचित न होकर क्षेपक रूप से हो, तथापि उनका कोई आधार अवश्य होगा। इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से अधिक कुछ नही कहा जा सकता और इस वर्णन को रूपक मानलें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि बैसवशी महाराजा हर्ष के पीछे जब भारत मे संकटकालीन स्थिति उत्पन्न होकर विदेशी शत्रुओ के आक्रमणो की संभावना होने लगी, तब स्वदेश की रक्षा के हेतु मुख्यतः चार क्षत्रिय वंशो ने यह गुरूतर भार अंगीकृत किया और उनके मुखियाओ ने पवित्र स्थान अर्बुद पर सम्मिलित हो, वशिष्ठ द्वारा होने वाले यज्ञ मे विधिवत् दीक्षा ग्रहणकर शत्रु संहार का व्रत लिया। कालान्तर मे वे अग्निवंशी और वशिष्ट के यज्ञ द्वारा उत्पन्न कुल कहलाने लग गये। यह एक कल्पना ही है; जो तत्समयक स्थिति को देखते विपरीत नही जान पडती। इतिहास बतलाता है कि प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चाहमान वंश का अस्तित्व वि० सं० की आठवी शताब्दी के पूर्व हो चुका था। तथा उनका अभ्युत्थान इस समय के आस-पास हुआ। यह प्रत्यक्ष है कि प्रतिहार, परमार और चौहान राजस्थान के निवासी थे। ऐसी अवस्था मे रासो के पिछले संस्करण कर्त्ताओ ने अग्निवश, वशिष्ठऋषि के यज्ञ आदि की कथाएं, जो उस समय प्रचलित थी, रासो मे सन्निवेषित करदी तो कोई दूषित कार्य नही किया। प्रत्युत् उन्होने अपने ज्ञान का प्रकाश करते हुए रासो की कथा को अधिक प्रभावोत्पादक कर दिया और प्रचलित कथाओ को भी भिन्न-भिन्न छन्दो में रचकर मूल रासो के छन्दो के साथ मिलादी, जैसी कि परम्परा चली आ रही थी। इसको कोई दूषित मनोवृत्ति नही कह सकते और

वर्तमान समय मे भी यह परम्परा किसी न किसी रूपमे विद्यमान है।

4 पृ० ८४, पंक्ति ५, 'प्रतिहार पहले अपने को अग्निवंशीय ही नही, किन्तु सूर्यवशीय (रघुवशी) मानते थे।' रासो मे भी प्रतिहारो को कुछ स्थलों पर रघुवंशी होना लिखा है (देखो-सा० संस्थान [रा० वि० विद्यापीठ] उदयपुर से प्रकाशित शोधपत्रिका, भाग, २, अंक ३, मे कवि राव मोहनसिंहजी का 'पृथ्वीराज रासो पर कीगई शंकाओ का समाधान' विषयक लेख, पृ०१४६-५०)।

5 पृ० ८६, पक्ति ७, 'पृथ्वीराज के समय तथा उससे पूर्व भी सोलंकी अपने को अग्निवशी नही; किन्तु चन्द्रवंशी और पांडवो की सन्तान मानते थे।' रासोकार ने सोलंकियो को 'ब्रह्म-चालुक्य नाम से सबोधित किया है, (देखो शोधपत्रिका, भाग २, अंक ३, मे प्रकाशित कविराव मोहनसिंहजी लिखित 'पृथ्वीराज रासो पर की गई शकाओ का समाधान' नामक लेख। चालुक्यो, सोलंकियो को रासो मे ब्रह्म चालुक्य लिखने का कारण ऐसा जान पडता है कि वे मूल मे चौल देश के निवासी थे और ब्राह्मणो से संसर्ग रहा था। श्री ओझाजी के मतानुसार सोलंकियो को पाडु वंशी मान ले तो ऐसा भी कह सकते हैं कि कुरुवंशी महाराज विचित्रवीर्य की निःसंतान युवावस्था मे ही मृत्यु होगई। तब वंश नष्ट न होने के के लिए नियोग की प्रथा अपनाई जाकर महर्षि कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) का आवाहन किया गया, और विचित्रवीर्य की दोनो राणियो से क्रमशः धृतराष्ट्र और पाडु दो पुत्र उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्र की सन्तान कौरव और पांडु की सन्तान पांडु कहलाई। इस कथा को रासोकार जानता था। अतएव पांडु के वंश को 'ब्रह्म-चालुक्य' बतलाया, जो ठीक ही है।

6 पृ० ८८, पक्ति २, 'पृथ्वीराज के पूर्व से लगा कर वि०स०१४६० के आसपास तक चौहान अपने को सूर्यवशी मानते थे। यदि पृथ्वीराज रासो, पृथ्वीराज के समय बना हुआ होता, तो वह चौहानो को 'अग्निवंशी' न कहता।' पृथ्वीराजरासो मे चाहमान की उत्पत्ति सूर्यलोक से तेजरूप मे दिव्यपुरुष की भाति होना बतलाकर ब्रह्मा द्वारा यज्ञ होने की कथा का उल्लेख हुआ है। अजमेर के निकटवर्ती पुष्कर क्षेत्र मे ब्रह्मा का पूर्ण माहात्म्य है। इसलिए यह यज्ञ पुष्कर मे होना सभव है। पृथ्वीराजविजय मे भी यह कथा इसी ही भांति से मिलती है,

जिससे दोनों का समन्वय होता है। इस विषय पर उदयपुर के कविराव मोहनसिंह जी ने शोध पत्रिका भाग, २, अंक ३, मे प्रकाशित 'पृथ्वीराजरासो पर कीगई शंकाओं का समाधान' नामक लेख मे कई उदाहरणो के साथ प्रकाश डाला है।

चौहानो के अग्निवंशी होने के कथन मे एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि चौहानो का वत्स गौत्र है और वत्स गौत्र भृगुवंश की शाखा है। महर्षि भृगु का विशेषण 'अनल-प्रभव' दिया है (मनु०अ०५ श्लोक २)। श्रुति भी यह साक्षी देती है-'तस्य यद्रेतसः प्रथमं देदीप्यते तदसावादित्योभवत्। यद्वितीय मासीद् भृगु'। अर्थात्-उसकी शक्ति (रेतस्=वीर्य) से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ, वह सूर्य बन गया और दूसरा हुआ, उसी का भृगु' (देखो-पं० झाबरमल शर्मा लिखित'चौहानो के अग्निवंशी कहलाने का आधार' शीर्षक निबंध, राजस्थानी कलकत्ता, भाग ३, अङ्क २,)।

इन बातो को देखते रासो का वर्णन कपोल कल्पना नही है और सुदृढ आधार पर है, तथा जो बात उस समय प्रवाहित हो रही थी, उसको रचनाकार ने अपने ग्रन्थ मे उल्लिखित की, जिससे मिथ्यात्व का उस पर दोष नहीं आसकता है।

7. पृ० ८८, पंक्ति ६, 'पृथ्वीराज रासो मे पृथ्वीराज तक की जो वशावली दी है, वह अधिकांश मे कृत्रिम है'। श्री ओझाजी ने पृथ्वीराजविजय, तथा बीझो-लियां के लेख आदि से वंशावलियों का मिलान किया, उनमे परस्पर कुछ अन्तर बतलाते हुए तीन-नाम गण्डू, इसल और बीसल लौकिक नामो मे बदलना स्वीकार किया है। पृथ्वीराजविजय और बीझौलिया का लेख एक समय के बने हुए होने पर भी परस्पर उनमे अन्तर है, तो फिर रासो जैसा लोकप्रिय ग्रन्थ अनेको हाथो मे गया और समय-समय पर उसके सस्करण होते रहे, बशावली मे अन्तर होना आश्चर्य की बात नही है। प्रचलित पृथ्वीराजरासो मे वशावली के छन्द है, वे महाकवि चन्द की वर्णन शैली को देखते मूल के नही जान पड़ते और पीछे से मिले जान पडते है। यह भी प्रत्यक्ष है कि वंशावली के कुछ नाम जो रासो मे दिये है; पृथ्वीराजविजय और बीझौलियां के लेखो के नामां से मिलते है। शेष नामों का मिलान नहीं होना यही प्रकट करता है कि अधिकांश नाम लौकिक

तथा उपनाम रूप से हो रासो ग्रन्थ उस समय की लौकिक भाषा का रूप प्रकट करता है। अतएव उसमें सस्कृत शैली से नामोच्चारण करना कवि के लिये वाच्छनीय नहीं था। यदि रासो मे वर्णित चौहानो की वशावली मूल ग्रन्थ के साथ ही की निर्मित मानी जाय तो उसकी प्राप्ति का आधार जयानक महाकवि चन्द्र ज्ञाति का 'ब्रह्मभट्ट' था। अतएव उनके निर्मित ग्रन्थ मे यदि कोई वंशावली पीछे से जोड़ भी दी गई हो—तो उसका मूल आधार वंश परम्परागत लिखे हुए भट्ट ग्रन्थ ही होने चाहिये, जिनमें रूढिवाद से युक्त सीधी-साधी भाषा, एक वचन और लौकिक नामों का ही उल्लेख होता है। ऐसा भी देखा गया है कि एक शाखा के नष्ट होने पर दूसरी शाखा का आधिपत्य हुआ तो वशावली लेखकों ने सारे के सारे नाम, जो दूसरी शाखा के थे, पहली शाखा के अन्त में लाकर मिला दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि वंशावली मे नामों की संख्या बढ गई। इस प्रकार के उदाहरण राजस्थान के राजवंश की वंशावलियों मे सर्वत्र विद्यमान है। इसका दोष मूल वशावली लेखको को न दिया जाकर उनके पीछे के क्रमानुयायिकों को देना चाहिये, जो अपने पूर्वजों की संचित वंशावलियों को यथा क्रम न रख सके या उनको ठीक प्रकार से समझ नही सके। इसका कारण यह भी हो सकता है कि भारत मे वह युद्धकालीन युग था। विदेशियों की चढाइयाँ भी होती रहती थी। ऐसी अवस्था मे प्राणों के बचाने की ही सबसे प्रथम चिन्ता रहती थी और वंशावलियों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री का सुरक्षित रहना तो ऐसे कठिन अवसरों पर बहुत ही दुस्तर कार्य था। यदि हम वंशावली लेखकों पर यह दोष लगा कर उनकी सग्रहित वशावलियों को निकम्मी मानले तो, जो कुछ भी सच्ची बाते उस सग्रह मे होगी वे भी सब नष्ट हो जायगी, जिससे इतिहास का अहित साधन ही होगा।

महाकवि चन्द द्वारा रासो ग्रन्थ का निर्माण भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज की कीर्ति गाथा को अमर करने के लिए ही हुआ है। इस अवस्था में वशावली तो गौण वस्तु ही रही। यह ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि रासो में वर्णित वंशावली के कितने ही छन्द चन्द की वर्णित शैली से भिन्न हैं, इसलिए उनका कोई महत्व अंकित नही कर उनको हटा दे तो रासो का शुद्ध रूप निकल आयगा। यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि चन्द की वर्णित शैली के विपरीत जितने भी छन्द हैं, वे उसका कलेवर तथा कथानक बढ़ाने के हेतु पीछे से सम्मिलित कर दिये गये है। कुछ विभिन्न स्थानों पर रासो में पृथ्वीराज के पराक्रमी पूर्वजों का नामोल्लेख मिलता है, जो चन्द वर्णित शैली के अनुकूल हैं और इतिहास के क्रमानुसार है।

8. पृ० ६१, पंक्ति १६–२० 'पृथ्वीराज की माता का नाम कमला नहीं, किन्तु कर्पूरदेवी था और वह दिल्ली के राजा अनङ्गपाल की पुत्री नहीं, किन्तु त्रिपुरी (चेदि अर्थात् जबलपुर के आस-पास के प्रदेश की राजधानी) के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी, श्री ओझाजी का उपरोक्त कथन पृथ्वीराज विजय के अनुसार है। किन्तु जब मूल ग्रन्थ पृथ्वीराज विजय को पढते हैं, तो जहाँ सोमेश्वर के साथ कर्पूरदेवी के विवाह का वर्णन है, वहाँ न तो मूल श्लोक (जयानक रचित) और न टीका (जौनराज कृत) में वह (कर्पूरदेवी) चेदि अर्थात् जबलपुर के आस-पास के प्रदेश की राजधानी के हैहय (कलचुरि) वंशी नरेश की राजकुमारी होने का उल्लेख है और न मूल वर्णन में उस (कर्पूरदेवी) के पिता का नाम तेजल दिया है। जौनराज अपनी की हुई उक्त ग्रन्थ की टीका मे कर्पूरदेवी को श्लेष्य रूप में तेजल की पुत्री बतलाता है। किन्तु मूल लेखक और टीकाकार दोनों में से एक भी उसको हैहय वंशी राजकुमारी नहीं कहता केवल पृथ्वीराज विजय में दो स्थान पर उस (कर्पूरदेवी) का त्रिपुरी नरेश्वर की कन्या होने का उल्लेख होने से ही उस (पृथ्वीराज विजय) के दोनों विद्वान् सम्पादक त्रिपुरी की स्थिति मध्य प्रदेश मे मानते हुए उसे चेदि की राजधानी होना बतला कर्पूरदेवी को हैहय वंशी राजकुमारी होने का उल्लेख करते हैं। निस्सन्देह पृथ्वीराज के विद्वान् सम्पादकों की विद्वत्ता और प्रतिभा आदरणीय वस्तु है, इस बात को मानते हुए 'तेजल' या (अचलराज) को कर्पूरदेवी का पिता मान लेते है, परन्तु जब चेदि के हैहय (कलचुरी) वंशी नरेशों की वंशावली में 'तेजल' या 'अचलराज' नाम तलाश करते है तो नहीं मिलता और निराश होना पड़ता है। खड्गविलास प्रेस बाकीपुर (पटना) से प्रकाशित हिन्दी टॉड राजस्थान की विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों मे हैहय वंशी नरेशो की वंशावली देते हुए श्री ओझाजी ने 'तेजल' या 'अचलराज' को चेदि नरेश बतलाया है; किन्तु फिर उन्होंने कभी ऐसा नहीं माना और 'अनंद विक्रम संवत् की कल्पना' तथा 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' नामक निबन्धो मे कर्पूरदेवी के पिता के स्थान मे उस (तेजल) या अचलराज का नामोल्लेख तक नहीं किया है, जिससे कह सकते है कि यह विषय सन्दिग्ध ही है। 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'सुर्जनचरित' मे पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी होने के कथन भी अस्पष्ट है और उनसे तो यही ध्वनि निकलती है कि पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर कर्पूरदेवी से ब्याहा अवश्य था, परन्तु वह (कर्पूरदेवी)

न तो चेदि देश के राजा की पुत्री थी और न उसका पिता तेजल या अचलराज था और न उसके उदर से पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए–

इला विलासी जयतिस्म तस्मात् सोमेश्वरोऽनश्वर नितिरीति ॥ ६७ ॥
कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया [प्रिया] राधन सावधाना ॥ ६८ ॥
हम्मीर महाकाव्य, सर्ग २ ।

शकुन्तलाभा गुण रूप शीलै सकुन्तलानामधिपम्य पुत्रीम् ।
कर्पूरधारां जन लोचना नां कर्पूरदेवी मुदुबाह विद्वान् ॥ ४॥
सुर्जन चरित, सर्ग ६ ।

उपरोक्त दोनों ग्रन्थ कर्पूरदेवी के पिता के नाम और कुल पर कुछ भी प्रकाश न डाल कर मौन साध लेते है। साथ ही कर्पूरदेवी का पितृकुल किस स्थान पर था, इस पर हम्मीर महाकाव्य का कर्त्ता बिल्कुल ही चुप्पी साधकर मौन होजाता है और सुर्जनचरित का रचनाकार कर्पूरदेवी का पितृकुल कुन्तल प्रदेश मे होना वतलाता है।

अब यहां कुन्तल प्रदेश की स्थिति पर विचार किया जाय तो उसकी स्थिति निम्नलिखित स्थिर होती है —

कामगिरि समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरी ।
श्रीकुन्तला मिधो देशो वर्णित. शक्तिसंगमे ॥ १ ॥

अर्थ–कामगिरि से लेकर द्वारिका तक हे पार्वती, कुन्तल नाम का देश होना शक्ति संगम तन्त्र मे कहा है।

ऐसी स्थिति मे पृथ्वीराज विजय का कथन संशय युक्त है। उक्त अपूर्ण ग्रन्थ के इन अस्पष्ट और अनिश्चित् वर्णनों के आधार पर रासो का कथन बिल्कुल ही झूठ मान लेना उचित नहीं है। आश्चर्य है कि जयानक पृथ्वीराज का आश्रयी और समकालीन कवि होते हुए भी उसकी (पृथ्वीराज) माताके पितृकुल और राज्य का वर्णन करने मे संकुचित वृत्ति रखे और सोमेश्वर की माता कांचनदेवी के पितृकुल आदि का समुचित वर्णन करे, अवश्य ही संशय का स्थल उत्पन्न करता है।

पृथ्वीराज रासो मे महाराजा सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के तंवर नरेश अनङ्गपाल की राजकुमारी से होना और उसके उदर से पृथ्वीराज का जन्म होना आदि

कथा दी गई है। उसकी पुष्टि का रासो के अतिरिक्त अन्य कोई सम-सामयिक ग्रन्थ नहीं है; किन्तु इस विषय में जो तर्क दिये गये है, वे असङ्गत नहीं है। दिल्ली पर विग्रहराज (चतुर्थ बीसलदेव) का अधिकार होने के पूर्व तंवरों का आधिपत्य था। संभव है कि चौहानों द्वारा हांसी आदि विजय कर लेने पर तंवरों ने चौहानों की अधीनता स्वीकार करली हो और तंवर राज्य करद राज्य बन गया हो। जैन पट्टावलियों से वि० सं० १२२३ मे दिल्ली का शासक मदनपाल होना विदित होता है, जो अनङ्गपाल नाम से भी प्रसिद्ध हो। राजपूतो मे बहु विवाह की प्रथा भी उस युग मे विद्यमान थी। स्वयं सोमेश्वर के पिता अर्णोराज के दो विवाह होना पृथ्वीराजविजय से ही सिद्ध है। ऐसी अवस्था में सोमेश्वर का भी चौहान राज्य की प्राप्ति के पीछे तंवर राजकुमारी से विवाह हुआ हो। यदि पृथ्वीराज तंवर राजकुमारी से उत्पन्न सोमेश्वर का पुत्र न हो और अन्य राजकुमारी से उत्पन्न सोमेश्वर का राजकुमार हो तो भी दोनो ही अवस्था मे तंवर राजकुमारी पृथ्वीराज की माता होगी और तंवर नरेश उसका नाना ही कहलायगा। तंवरों की स्थिति निर्बल हो चुकी थी और पंजाब की तरफ से शहाबुद्दीन के आक्रमण की इस समय संभावना बढती जारही थी जिससे निरुपाय होकर तंवरों ने अपना पैतृक राज्य बलवान पृथ्वीराज को सौंप दिया, यही दिल्ली दान कथा का सारांश हो सकता है। शहाबुद्दीन के आक्रमण के समय दिल्ली मे पृथ्वीराज के सर्दार गोबिंदराज का युद्ध करना और सुल्तान के भाले से उसके दो दांत टूटना यही प्रकट करता है कि इसके पूर्व ही तंवर अपने राज्य से मुक्त हो चुके थे।

१ पृ० ६३, पंक्ति १०–११–'पृथ्वीराज और पृथ्वीराज की बहिन। इस विषय पर श्री ओझाजी का कथन है कि 'यह कथा बिल्कुल कल्पित है, क्योंकि समरसिंह मेवाड़ का गुहिल वंशी नरेश) पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ।' मेवाड से प्राप्त शिलालेखों तथा अन्य साधनों से यह स्पष्ट है कि गुहिलवंशी महारावल समरसिंह का राज्यकाल वि० सं० १३३०–१३५८ तक रहा। ऐसी अवस्था में रासो के वर्णन के विरोध मे अब तक जिन-जिन विद्वानोंने कलम चलाई है वह असंगत नहीं कहा जासकता है क्योंकि महारावल समरसिंह, पृथ्वीराज के पूरे सौ वर्ष पीछे उत्पन्न हुआ था। किन्तु सारे राजस्थान में यह बात पूर्ण रूप से प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज की बहिन का विवाह मेवाड़ के राजा से हुआ। ऐसी अवस्था मे परंपरागत कथाओं को निर्मूल नहीं माना जा सकता। रासो की अधिकांश सब ही प्रतियों मे पृथ्वीराज की बहिन का विवाह

मेवाड़ के राजा के साथ होने और उसके पृथ्वीराज की सहायतार्थ शहाबुद्दीन गौरी की अन्तिम चढाई के समय युद्ध में काम आने का उल्लेख मिलता है। 'अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना' शीर्षक निबन्ध देखो (ऊपर पृ० ६०) मे स्वय श्री ओझाजी ने उल्लेख किया है कि "मेवाड़ में यह प्रसिद्ध है। रावल समरसिह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के साथ हुआ था। यदि इस प्रसिद्धि का 'पृथ्वीराजरासो' की कथा के अतिरिक्त कोई आधार हो और उसमे कुछ सत्यता हो तो उसका समाधान ऐसा मानने से हो सकता है कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दूसरे) की, जिसको 'पृथ्वीराज-विजय' मे पृथ्वीभट्ट कहा है, बहिन का विवाह मेवाड़ के राजा समतसी (सामन्तसिह) के साथ हुआ हो। मेवाड़ की ख्यातों मे सामन्तसिह को समतसी और समरसिह को समरसी लिखा है। समरसी नाम प्रसिद्ध भी रहा, जिससे समतसी के स्थान मे समरसी लिख दिया हो। पृथ्वीराज (दूसरे) के शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५, और १२२६ के मिले है और समतसी का वि० सं० १२२८ और १२३६ मे विद्यमान होना उसके शिलालेखो से निश्चित है, तथा वि० सं० १२२८ से कुछ पहले उसका मेवाड का राज जालोर के चौहान कीतू ने छीना था। अतएव चौहान पृथ्वीराज (पृथ्वीभट्ट) दूसरे और मेवाड़ के समतसी (सामन्तसिंह) का समकालीन होना निश्चित है। सम्भव है कि उन दोनो का सम्बन्ध भी रहा हो"।

उदयपुर के श्री रामनारायणजी दूगड़ (स्वर्गवासी) ने राजस्थान रत्नाकर भाग २, पृ० ६० और ६२ मे एक पुरानी ख्यात के आधार पर माना है कि मेवाड़ के राजा विक्रमसिंह का विवाह प्रसिद्ध महाराजा पृथ्वीराज चौहान की बहिन से हुआ, जिससे रणसिंह या कर्णसिंह का जन्म हुआ। कवि राव मोहनसिहजी भी मेवाड़ के राजा विक्रमसिंह (श्री पुंज) का विवाह महाराजा पृथ्वीराज की बहिन से होने का उल्लेख करते हुए उस (विक्रमसिंह) का महाराजा पृथ्वीराज के सहायतार्थ तराइन के अंतिम युद्ध में मृत्यु पाना मानते है। इसके प्रमाण मे उन्होंने रासो के कई छन्दों के अवतरण दिए हैं, जो विक्रमसिंह को 'समरविक्रम', 'विक्रमकेसरी' आदि नामों से सम्बोधन करते हैं। मेवाड़ के राजवंश की शोध पूर्वक वंशावलियों में विक्रमसिंह का नाम चौड़सिंह के पीछे आता है और उस (विक्रमसिंह) को आबू के वि० सं० १३४२ के लेख में चौड़सिह का पुत्र तथा कुम्भलगढ़ के वि० सं० १५१७ के लेख में चौड़सिह का बड़ा भाई होना बतलाया है।

पालड़ी (उदयपुर से उत्तर में चार मील दूर) गॉव के वि० सं० ११७३ का लेख बतलाता है कि उस समय मेवाड़ में विजयसिह का पुत्र अरिसिह राज्य कर रहा था। उसके पीछे क्रमश चौड़सिह और विक्रमसिंह मेवाड़ के राजा हुए। इनका समय वि० सं० की बारहवी शताब्दी का अन्त और तैरहवीं शताब्दी का आरम्भ होगा। इसके बाद ही रणसिंह मेवाड़ का राजा होना चाहिये, किन्तु उपरोक्त आबू की प्रशस्ति विक्रमसिंह के पीछे क्षेमसिंह और सामन्तसिह आदि को ही मेवाड़ के राजा होना बतलाती है, रणसिह को नहीं। विपरीत इसके कुम्भलगढ की प्रशस्ति विक्रमसिह के पीछे रणसिंह का राजा होना बतला कर उसके बाद क्षेमसिह, सामन्तसिह आदि का मेवाड़ के राजा होने का उल्लेख करती है। मेवाड़ में विक्रमसिह और रणसिह के अब तक कोई लेख प्राप्त नहीं हुए हैं। किन्तु महाराणा कुम्भकर्ण विरचित एकलिङ्ग माहात्म्य में उस (रणसिंह) के समय गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) की मेवाड़ पर चढाई होने का निम्न वर्णन है —

येनमहासग्रामे प्रभुवत्सो भीम महीराजौ ॥
धरवीरोनरनाथो भग्नो रण रंगमल्लेन ॥४४॥

इससे रणसिह का समय अवश्यमेव आगे बढ जाता है। सिरोही के अजाहरी (अजारी) गॉव से वि० सं० १२२३ का एक लेख मिला है, जिसके लिए डा० देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर का अनुमान है कि उक्त मेवाड़ के गुहिल वंशी राजा रणसिह का हो। किन्तु दूसरा पक्ष इस शिलालेख को आबू (चन्द्रावती) के पदच्युत् परमार वंशी राजा विक्रमसिह के पुत्र रणसिंह के समय का होना मानता है। कुम्भलगढ की उपर्युक्त प्रशस्ति रणसिह के प्रसङ्ग में गुजरात के राजा भीमदेव की मेवाड़ पर चढ़ाई होना नहीं बतलाती और सामन्तसिह का वि० सं० १२२८ वा १२३६, मथनसिंह का वि० सं० १२४३ का शिलालेख तथा पद्मसिंह का वि० सं० १२५१ का ताम्रपत्र मिल जाने से रणसिह का समय स्थिर होने के विषय में और भी अधिक जटिलता उत्पन्न हो गई है। गुजरात के सोलकी नरेश भीमदेव (दूसरा) का लम्बा राज्य काल है, जो लगभग वि० सं० १२३६ के आरम्भ होकर वि० सं० १२९८ तक बना रहता है। एकलिङ्ग महात्म्य के अनुसार मेवाड़ के राजा रणसिंह को गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा, भोला भीम) का सम–सामयिक मान लिया जाय, वहां उस (भीमदेव) के समकालीन मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामन्तसिंह, कुमारसिंह, मथनसिंह, पद्मसिंह, और जैत्रसिंह होना भी सुनिश्चित् है।

रणसिंह के विषय में उपरोक्त एकलिङ्ग माहात्म्य बतलाता है कि उसने सुरम्य आहोर पर्वत पर दुर्ग बनवाया, जिसका आशय यही जान पड़ता है कि उस (रणसिंह) से मेवाड़ का राज्य छूट गया हो, जिससे उसको पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश मे बढकर आहोर का नवदुर्ग निर्माण करने की आवश्यक्ता हुई हो। फिर उस (रणसिंह) की सहायतार्थ नाडोल के चौहान कीनू आदि ने मेवाड़ पर अपना प्रभाव स्थापित कर क्षेमसिंह के पुत्र कुमारसिंह का वहाँ से अधिकार उठा दिया हो एवं कुमारसिंह ने गुजरात के सोलंकी नरेश भीमदेव की कृपा संपादन कर अनहिलवाड़ा की सैनिक सहायता से पुन: मेवाड़ का राज्य प्राप्त किया हो, यहाँ रणसिंह से मेवाड़ का राज्य छूटने की बात कल्पना मात्र है और शेष इतिहास सम्मत है। एकलिङ्ग माहात्म्य की कथा को इस प्रकार मानने से इतिहास में उसका ठीक-ठीक समन्वय हो जाता है और शिलालेखों से भी उसका विरोध नही रहता। इस काल का इतिहास अभी तक साधनों के अभाव में पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आया है और अधिकांशत अंधकार में ही है। राणा शाखा की पृथक्ता के विषय मे यह सर्व मान्य है कि विक्रमसिंह का पुत्र रणसिंह ही राणा शाखा का प्रवर्त्तक हुआ, जिसको कर्णसिंह भी कहते है, उसका समय तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ही होना चाहिये।

महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के समकालीन मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह, कुमारसिंह, मथनसिंह और पद्मसिंह होना स्पष्ट है। इन चारों गुहिल-वंशी राजाओं मे से सामन्तसिंह का सोहार्द्र गुजरात के सोलंकी नरेशों के साथ रहा हो ऐसा पाया नहीं जाता। उसके विषय में शिलालेखों में लिखा है कि उसने सामन्तों का सर्वस्व (भू भाग) छीन लिया। इससे यह अनुमान करना व्यर्थ न होगा कि सामन्तसिंह के इस कृत्य (छीना झपटी) के परिणाम स्वरूप वहाँ (मेवाड़ मे) विप्लव होगया और मेवाड़ पर सौनिगरों का अधिकार जम गया। सामन्तसिंह के क्रमानुयायी कुमारसिंह का गुजरात के सौलंकियों से मेल रहा और उसने पीछे दो पीढी तक गुजरात के नरेशों का मेवाड़ पर खासा प्रभाव रहा, यह तत्समयक शिलालेखों आदि से प्रकट है। रासो मे सामन्तसिंह का नाम भी अंतिम युद्ध के प्रसङ्ग में आता है। अतएव यह असंभव नहीं कि उसका वि० सं० १२३६ के पीछे का समय चौहान महाराज्य की रक्षा करने में व्यतीत हुआ हो और वह अन्तिम युद्ध मे स्वर्गवासी हुआ हो।

गुहिल राजवंश के बीच वैवाहिक संबंध होने के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का भतीजा पृथ्वीराज (पृथ्वीराज दूसरा, पितृघाती जगदेव का पुत्र) गुहिलवंश का भगिनेय था। मेवाड़ के राजा नरवाहन की रानी चौहान वंश की थी। मेवाड़ और अजमेर का राज्य पास-पास है। दोनों राज्यों के बीच विरोध तथा मैत्री भी होने के उदाहरण मिलते हैं। यह दोनों कुल शैव धर्मावलंबी और प्रतिष्ठित थे एवं मेवाड़ का राजा गुहिलवंशी सामन्तसिंह वीर तथा सर्व सुन्दर शरीर वाला था, अतएव चौहान राजा सोमेश्वर के कोई पुत्री हो और उसका विवाह सामन्तसिंह से हुआ हो तो भी असंभव नहीं है। किन्तु यह भी कल्पना ही है, जब तक इस विषय में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिले, निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

राजस्थान में सर्वत्र यह कथा प्रसिद्ध है कि महाराजा पृथ्वीराज की बहिन पृथाकुमारी का विवाह मेवाड़ के गुहिल राजवंश में हुआ था। परंपरागत यह कथा एक बार ही मिथ्या नहीं हो सकती। इस समय भी मेवाड़ में तीन ऐसे घराने हैं, जो अपना महाराजा पृथ्वीराज की बहिन के साथ दहेज में आना बतलाते हैं। इन तीनों घरानों की प्रतिष्ठा अब तक भी मेवाड़ में बनी हुई है और सौलहवी शताब्दी से तो उनके मेवाड़ में होने का पूरा प्रमाण मिलता है—

(१) सनाढ्य ब्राह्मण—पुरोहित गुरु राम का वंश।

(२) दाधीच ब्राह्मण—आचारज ऋषि केष का वंश।

(३) माहेश्वरी महाजन—देवपुरा गौत्र के शाह श्रीपति का वंश।

वंश भास्कर के ग्रन्थकार ने भी इन तीनों वंशों का चौहान राजकुमारी के साथ मेवाड़ में दहेज में आना माना है। उनकी ख्याते तथा अन्य कुछ पुस्तकें भी जो सौलहवीं शताब्दी के पीछे की है, ऐसा ही उल्लेख करती हैं। इस विषय पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश डाले जाने पर ही अधिक प्रकाश पड़ेगा। अभी तक यह विषय शोध की पूरी गुंजाइश रखता है।

10. पृ० ६३, पंक्ति १६–२० (विषय–पृथ्वीराज रासो और सोमेश्वर की मृत्यु) 'यह सारी कथा भी असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर, भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीम, पृथ्वीराज के हाथ से।' गुजरात के सोलंकियों और अजमेर के चौहानों के इतिहास से प्रकट है कि गुजरात के सोलंकी नरेश कुमारपाल अजमेर का

चौहान राजा सोमेश्वर समकालीन था। कुमारपाल के पीछे गुजरात के सिंहासन पर, उस (कुमारपाल) के बड़े भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल आसीन हुआ। वह (सोमेश्वर) उस (अजयपाल,) का भी समकालीन रहा और दोनो की मृत्यु के समय मे अधिक अन्तर नही है। अजयपाल का उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र मूलराज (दूसरा) हुआ, जो दो वर्ष से अधिक समय तक राज्य नही करने पाया और काल कवलित होगया। एवं उसके स्थान पर उस (मूलराज) का छोटा भाई भीमदेव वि० स० १२३६ के लगभग गद्दी बैठा। उधर अजमेर के सिहासन पर सोमेश्वर का वीर पुत्र पृथ्वीराज (तृतीय) वि० स० १२३४ के अन्त मे, अथवा वि० स० १२३५ के आरभ मे आरूढ हुआ। यह गुजरात और अजमेर दोनो राज्यो के नरेशो की गद्दीनशीनी का प्रारभिक काल है। इसही समय के आस-पास वि० स० १२३५ (ई० स० ११७८) मे नाडोल और अनहिलवाडा (गुजरात) पर सुलतान शहाबुद्दीन गौरी भी चढ़ आया। पृथ्वीराजविजय मे उल्लेख है कि 'सुलतान की इस चढाई के दिनो मे महाराजा पृथ्वीराज ने मन्त्री कदबवास (कैमास) को आज्ञा दी कि नाडोलपर शीघ्र ही आक्रमण किया जावे। उसका उत्तर उक्त मन्त्री इस प्रकार देता है कि 'शत्रुओ पर मुसलमानो का आक्रमण हो रहा है, जिससे उनका क्षय हो जायगा।' इससे पाया जाता है कि सोमेश्वर का, सुलतान शहाबुद्दीन गौरी का गुजरात पर आक्रमण होने के पूर्व देहावसान होकर पृथ्वीराज गद्दी पर बैठ गया था, किन्तु उसका राज्य सुदृढ़ नही होने पाया कि इसही बीच सुल्तान भी गुजरात मे आ धमका। कुमारपाल और सोमश्वर के बीच मेल रहता है; पर थोड़े ही दिनो पीछे दोनो राज्यो के बीच बिगाड़ हो-जाता है और भयङ्कर शत्रुता होजाती है जिसमे नाडोल के चौहान नरेश जो सांभर और अजमेर के चौहानो के वंशधर थे, गुजरात के नरेशो के साथ रह कर लड़ते है और पृथ्वीराज की अधीनता स्वीकार न करअजमेर के चौहान नरेशो का साथ नही देते। यह ऐसी बात थी, जिसको पृथ्वीराज जैसी उतावली प्रकृति वाला नरेश स्वीकार नही कर सकता। इसही कारण से गद्दी पर बैठते ही पृथ्वीराज मत्री कदंबवास को नाडोल पर आक्रमण करने का आदेश देता है। इन बातो पर विचार करते हुए यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अजयपाल की मृत्यु पीछे गुजरात और अजमेर के राजाओ के बीच कोई गभीर कारण उप-स्थित होकर युद्ध का मौक़ा होगया हो, जिसमे सोमेश्वर मारा गया हो, अथवा

क्षत-विक्षत होकर कुछ दिनो बाद मर गया हो। तथा इस समय नाडोलके चौहान, गुजरात के नरेशो के साथ रह कर अजमेर वालो से लड़े हो। संभवतः सोमेश्वर के साथ होने वाला सोलंकियो का यह युद्ध मूलराज (दूसरे) के समय ही होसकता है। इस युद्धका एक और भी कारण हो सकता है और वह यह कि गुजरात के सोलकी नरेश अजयपाल तक, अजमेर तथा सांभर के चौहान नरेश, गुजराती नरेशों को कर दिया करते थे, जो अजयमाल की मृत्यु पश्चात् मूलराज की बाल्यावस्था और निलर्बता समझ बन्द कर दिया गया हो। इस पर उभय राज्यो के बीच विरोध होकर युद्धका अवसर होगया हो और उसमे सोमेश्वर मारा गया हो। रासो में पृथ्वीराज की गुजरात पर चढ़ाई होने का वर्णन है, वहा युद्ध मे भीमदेव के सरदारो द्वारा ही सोमेश्वर की मृत्यु होना बतलाया है, जो अनुपयुक्त नही है; क्योकि चाहे सोमेश्वर, मूलराज (दूसरे) के समय होने वाले युद्ध मे मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, फिर भी बालक होने से मूलराज स्वतः इस युद्ध मे भाग नही ले सकता और सरदार वही थे, जो भीमदेव के समय मे भी रहे। अस्तु, यह वर्णन किसी प्रकार बिपरीत नही हो सकता। इसही प्रकार भीमदेव का पृथ्वीराज के साथ होने वाले युद्ध मे मारे जाने का वर्णन रासो का मूल अश नही है और वह प्रक्षिप्त ही समझना चाहिये, जो पिछले रासो के सस्करण कर्ताओं ने बढ़ा दिया हो।

॥' पृ० ६५, पंक्ति ४,-'पृथ्वीराजरासो और पृथ्वीराज के विवाह'-इस विषय मे डा० ओझा की मान्यता है, "११ वर्ष की अवस्था से लगाकर ३६ वर्ष की अवस्था तक (पृथ्वीराज) के १४ विवाह होना रासो मे लिखा है, जो ऊपर जांच किये हुए पांच विवाहो के समान निमू ल है।" राजाओ मे उस समय भी बहु-विवाह की प्रथा थी। अस्तु, पृथ्वीराज के कई विवाह हुए हो, यह असंभव नही है; क्योकि पृथ्वीराज की युवावस्था थी। इस आयु मे साधारण श्रेणी के मनुष्यो मे भी कामवासना की मात्रा प्रबल होती है, फिर पृथ्वीराज जैसे युवक और आसक्तिमय राजा के लिए, जिसको सर्व साधन प्राप्त थे, यह बात नहीं रही हो, ऐसा कोई नही मान सकेगा। जयानक स्वयं 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य' मे तिलोत्तमा नामक रूपवती राजकुमारी पर उस (पृथ्वीराज) का मुग्ध होना बतलाता है।

मारवाड़ के मंडोवर नामक स्थान मे प्रतिहारो (पडिहारों) का राज्य वि० सं० की पन्द्रहवी शताब्दी तक रहना पाया जाता है और वर्तमान राठोड

नरेशों के पूर्वज राव चूंडा ने प्रतिहारों से ही मंडोवर का राज्य प्राप्त किया था। मंडोवर के प्रतिहार राजाओं मे नाहरराव पडिहार भी हुआ है, जिसका समय नवीं शताब्दी के आस-पास स्थिर होता है। एक ही वंश मे एक ही नाम के कई राजा हुए है। अतएव नाहरराव नाम का मंडोवर के प्रतिहार वंश मे इस काल मे भी कोई व्यक्ति हो सकता है। रासोकार नाहरराव की जूनागढ़ मे स्थिति होना बतलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिहार वशी नरेशो का सौराष्ट्र पर भी अधिकार रहा था और उनके वशधरो मे यह नाहरराव होकर जूनागढ़ पर अधीन राजा की भाति अधिकार रहता हो। राजपूतो मे उस काल मे बाल्यविवाह होने के भी कई उदाहरण मिलते है। इस बात को देखते हुए यह भी कल्पना की जा सकती है कि पृथ्वीराज का विवाह उस समय मे हुआ हो, जब सोमेश्वर जीवित था, एवं गुजरात के चालुक्य (सोलकी) नरेशो से, जिनका केवल गुजरात ही नही, सौराष्ट्र पर भी सार्वभोमत्व था, तथा चौहानों और उनके मित्रता थी।

आबू पर परमारो का राज्य था, यह इतिहास सम्मत है। पृथ्वीराज की परमार रानी इन्छिनी आबू के मुख्य राजा की पुत्री न रही हो, किन्तु वह परमार वंश की हो सकती है, जिसका उद्भव आबू से हुआ। उस समय आबू के परमार राजवश की कइ शाखाएँ होगई थी और उन्होने कई ठिकाने बांध लिये थे। आबू के मुख्य परमार राज्य मे इस समय कमजोरी आकर वे गुजरात के सोलंकी नरेशो के अधीन मडलेश्वर के रूप मे राज्य करते थे। सोलंकी नरेशो की कृपा पर आबू के परमार नरेशो का अस्तित्व अवलंबित था। रासो के लेखानुसार इच्छनी के पिता का राज्य एक भिन्न अस्तित्व रखता है। अतएव इस कथा को कल्पना मान कर इच्छनी को आबू के मुख्य नरेश की राजकुमारी न मानते हुए, उसही कुटुम्ब की मानलें तो इतिहास दूषित नही होगा।

मारवाड का दधिमति प्रदेश मारोठ आदि मे दाहीमा क्षत्रियों का निवास था और पृथ्वीराज का मुख्य मन्त्री कईमवास (कयमास) दाहिमा जाति का था। उसही कईमवास का भाई चामुंड होना रासो मे बतलाया है। अतएव दाहिमा चामुंड (कईमवास का भाई) की बहिन का विवाह पृथ्वीराज से होना और उसके गर्भ से कुमार रैणसी के उत्पन्न होने का कथन भी आश्चर्य युक्त नही है। राजाओं के ही नही, सामान्य पुरुषो के भी कई संतान होती है। इस बात को दृष्टि मे रखते हुए कुमार रैणसी को पृथ्वीराज का पुत्र मानने के विषय मे शंका करनी भी निर्मूल है। रैणसी को रासोकार मुसलमान सेना से लड़ कर मारे जाने का उल्लेख करता है, अतएव उसकी कथा वही समाप्त होजाती है, फिर अजमेर की गद्दी पर गोविन्दराज को आरूढ़ करने का कथन भी उचित ही है।

शशिव्रता देवगिरि के यादव राजा और हंसावती रणथंभोर के यादव राजा

की पुत्री होना असंभव नही। यहां देवगिरि की स्थिति संस्कृत भाषा के महाकाव्य मघदूत के अनुसार मालवा प्रदेश मे उज्जैन और मन्दसौर के बीच होना चाहिये। जहा उस समय परमारो के सामन्त रूप मे यादवो का अधिकार हो। इसही प्रकार रणथंभोर मे भी।

उपरोक्त विचार धाराओं के अनुसार रासो में वर्णित विवाहो की कथा एक बार ही मिथ्या नहीं हो सकती। इस काल का सम्पूर्ण रूप से इतिहास उपलब्ध नही है। यथार्थ मे देखा जाय तो भारत मे शोध का कार्य अभी प्रारभिक अवस्था मे ही है। शोध का क्षेत्र अनन्ता है और उससे कितनी ही बातो पर नवीन प्रकाश पड़ता है। अभी तक तो यही माना जाता रहा है कि पृथ्वीराज का मुख्य मन्त्री कईम्बास ही था। किन्तु आधुनिक शोध कर्त्ताओ को लन्दन स्थित इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी मे सगृहित कवि लक्ष्मीधर रचित 'विरुद्ध विधि विध्वंस' नामक संस्कृत ग्रन्थ का पता मिला है, जिसमे उलेख है कि "शाकंभरी और अजमेर के चौहान नरेश सोमेश्वर का मत्री स्कन्द नागर जाति का ब्राह्मण था। स्कन्द के पीछे उसका पुत्र सोढ़, सोमेश्वर का मंत्री हुआ। सोढ़ के दो पुत्र स्कन्द और वामन हुए, जो सोमेश्वर के पुत्र और उत्ताराधिकारी महाराजा पृथ्वीराज के क्रमशः सेनापति और सांधिविग्रहिक हुए। स्कंद ने जब किसी दूसरे देश पर चढ़ाई गया था, तब मुसलमानो की निद्राव्यसनी राजा पृथ्वीराज पर चढाई हुई, जिसमे उस (पृथ्वीराज) का पतन हुआ।" पृथ्वीराजविजय महाकाव्य तथा अन्यत्र रासो आदि मे उक्त नागर परिवार का उल्लेख नही मिलता, तो क्या इससे उपरोक्त ग्रन्थ के कथन को निर्मूल मान लिया जायेगा?

इस प्रकार अन्य विवाहो तथा रासो के सम्वतो भाषा आदि विषयों पर भी समय-समय पर विद्वानो ने उत्तर दिये है। सयोगिता स्वयबर की कथा सुर्जन चरित्र मे उल्लिखित है। पृथ्वीराजविजय मे पृथ्वीराज की माता के गर्भ धारण के समय उल्लिखित ग्रह स्थिति पर विचार करते हुए उदयपुर निवासी प० बिहारीलालजी लालूजी दशोरा, शास्त्री,ज्यौतिर्विद ने गणित द्वारा निर्णय किया है कि वि० स० १२२० मे धन राशि पर शनि स्थित था। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शनि २॥ वर्ष अर्थात् ३० मास तक एक राशि पर रहता है। इस नियम क अनुसार कुंभ राशि पर शनि वि० स० १२२५ के आसपास पहुंचेगा। अतएव वि० सं० १२२५ वैशाख मास मे कर्पूरदेवी का गर्भ धारण करना संभवित है। सतति शास्त्र के नियमानुसार नौ या दस मास मे सन्तान उत्पन्न होती है। फलतः माघवदि १२ जिस दिन 'भीष्म द्वादशी' थी, पृथ्वीराज का जन्म संवत् स्थिर होगा।

रासो की भाषा के विषय में जो बातें बताई गई है, उसकी उपेक्षा नहीं की जासकती; पर मूल रासो का अस्तित्व पुराना है, यह अवश्य मानना पडेगा।

३ विमल–प्रबन्ध और विमल

राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड, कच्छ आदि देशो के श्वेतांबर जैनों के हृदय मे जैन-धर्म का बड़ा उपकार करने वाले तीन महापुरुषो—विमल (विमलशाह), वस्तुपाल तथा उसके भाई तेजपाल—के नाम अंकित है, और सदा अकित रहेगे। विमलशाह विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी मे हुआ और वस्तु-पाल तथा तेजपाल तैरहवी में। वस्तुपाल स्वयं बडा विद्वान् था और विद्वानो का बड़ा आदर करता था, जिससे अनेक समकालीन एव पिछले विद्वानो ने उसका नाम अमर करने के लिये उसका विस्तृत चरित निम्नलिखित ग्रंथो मे लिखा–सोमे-श्वर-रचित 'कीर्ति-कौमुदी' (वि० सं० १२८२ के आस पास) अरिसिंह-कृत 'सुकृत-संकीर्तन' (वि० सं० १२८५ के आस-पास), चद्रप्रभसूरिप्रणीत 'प्रभावक-चरित' (वि० सं० १३३४), मेरुतुंग-रचित 'प्रबध-चितामणी' (वि० स० १३६१), राज-शेखर-रचित 'चतुर्विंशति-प्रबन्ध' (वि० सं० १३६७) जयसिंह सूरि-कृत 'हम्मीर-मद-मर्दन, (वि० सं० १२८३ के आस-पास), और 'वस्तुपाल-प्रशस्ति', जिनहर्ष का 'वस्तुपालचरित' आदि ।

विद्वानो की जो कृपा-दृष्टि वस्तुपाल और तेजपाल पर रही, वह कृपा संपा-दन करने मे विमलशाह सौभाग्यशाली हुआ हो, ऐसा पाया नही जाता; क्योकि उसके समकालीन या उसके निकटवर्ती किसी विद्वान् का लिखा हुआ उसका चरित अब तक प्रसिद्धि मे नही आया, तो भी जैन-धर्मावलंबियो तथा अन्य आबू के भव्य मदिरो को देखने वालो के चित्त से विमल की स्मृति कभी मिट नही सकती। ऐसे महापुरुष का चरित्र-ग्रंथ न मिलना हमारे देश के इतिहास के लिये–विशेषत: जैन इतिहास के लिये—खेद-जनक है। विमल से ४०० वर्ष पीछे लावण्य

समय[1] नामक जैन-आचार्य ने विक्रम संवत् १५६८ में उस समय की प्रचलित (पुरानी) गुजराती भाषा मे, जो उस समय की राजस्थानी भाषा से बहुत कुछ मिलती हुई है, नव खंड और एकचूलिका (परिशिष्ट) मे छन्दोबद्ध विमल-प्रबध नाम का ग्रंथ लिखा, और उसके दस वर्ष पीछे उसका संस्कृत-भाषांतर भी हुआ, जो उपलब्ध हो चुका है। गुजराती प्रबंध की सबसे पुरानी हस्त-लिखित प्रति वि० सं० १५८४ की लिखी उपलब्ध हुई, जिसके तथा पिछली प्रतियो के आधार पर वि०स०१६७० मे श्रीयुत मणिलाल बकोर भाई व्यास ने उसका गद्य-अनुवाद सहित एक उत्तम संस्करण प्रकाशित कर गुजराती भाषा की अच्छी सेवा की है। यह ग्रथ विमल से ४०० वर्ष पीछे लिखा हुआ होने तथा उसके कर्त्ता को अधिक पुरानी सामग्री न मिलने के कारण उसमे विमल का वास्तविक चरित कम और कवि-कल्पना तथा कल्पित बातें विशेष रूप से है।

हम सुधा के पाठको के लिये उक्त पुस्तक का प्रथम संक्षिप्त परिचय देकर उसकी ऐतिहासिक आलोचना कर आधुनिक खोज से विमल के विषय मे जो कुछ बातें प्रसिद्धि मे आई है, उनका निर्देश करेंगे, ताकि हिंदी के अनुरागी उस महापुरुष के कामो से यत्किंचित् परिचित हों।

विमल-प्रबंध का सार

प्रथम खंड—इसमे ऋषभदेव, अंबाजी, अर्बुदा, कुलदेवी, श्रीमाता (लक्ष्मी

---

१ लावण्य-समय के पूर्वज श्रीमाली-जाति के महाजन और पाटन (अणहिलवाडा) के निवासी थे। कवि का दादा संगपाटण से अहमदाबाद आया, और अजदरपुरे मे रहा। उसके ज्येष्ठ पुत्र श्रीधर के चार पुत्र हुए। चौथा पुत्र लहराज १५२१ पौष-वदि ३ को पैदा हुआ। ६ वर्ष की आयु मे उसे तपागच्छ के आचार्य लक्ष्मीसागर सूरि ने दीक्षा देकर उसका नाम लावण्य-समय रक्खा। उसने अपने गुरु समयरत्न से विद्याभ्यास किया। सोलहवर्ष की अवस्था मे ही वह अच्छा कवि हो गया। उसने इस ग्रथ के अतिरिक्त 'गौतम पृच्छारास', 'बोहानोरास', 'सीमधर स्वामीनी सज्भाय' और 'नेमिछद' लिखे, जो उपलब्ध हो चुके हैं। गुजराती-भाषा के अतिरिक्त वह सस्कृत का भी कवि था। मेवाड के महाराणा रत्नसिंह के मत्री कर्मासाह ने शत्रुंजय का सातवॉ उद्धार कराया, जिसकी विस्तृत सस्कृत-प्रशस्ति की रचना वि०सं० १५८७ मे उसी ने की, जो एपिग्राफिया इंडिका, जि० २, पृ० ४२-४७ में प्रकाशित हुई है। उसकी कविता उत्तम होने पर भी वह निरभिमान पाया जाता है।

पद्मावती, चक्रेश्वरी आदि का ध्यान करते हुए वागीश्वरी का गुण-गान किया गया है। तदनंतर लक्ष्मी के निवासस्थान हेमकूट का वर्णन, श्रीमाल-नगर की स्थापना, चारो युगो के अनुसार उसके चार नाम —पुष्पमाल, रत्नमाल, श्रीमाल और भिल्लमाल (भीनमाल)—श्रीमाल-नगर मे लक्ष्मी देवी की स्थापना और लक्ष्मी का श्रीमाल-नगरवासियो को आशीर्वाद देने का उल्लेख है।

द्वितीय खंड—श्रीमाल-नगर मे उहड और रोहड़ नाम के दोनो भाई संपत्तिशाली थे; परंतु रोहड बहुत अधिक धनवान् था। एक दिन उहड ने अपने भाई से एक लाख रुपया माँगा; परन्तु उसने देने से इन्कार कर दिया, जिससे रुष्ट होकर वह अपने घर चला आया।

श्रीमाल–नगर के राजा के कुँअर उत्पलदेव ने एक दिन अपने पिता से बड़ी जागीर माँगी; परंतु मत्री के समझाने पर भी राजा ने उसे वह न देकर यही कहा कि वह रुष्ट होकर क्या करेगा, उसे तो इस युवावस्था मे कोई नया राज्य स्थापित करना चाहिए। कुँअर को जब यह मालूम हुआ, तो वह अप्रसन्न होकर उहड के पास चला गया, और उससे सारा वृत्तांत कहा। वे दोनो नया राज्य स्थापित करने का निश्चय कर ठट्टा के स्वामी के पास पहुंचे। 'वहाँ के राजा ने उत्पलदेव को अच्छी जागीर देना चाहा; परंतु कुँअर ने उसे अस्वीकार कर यही निवेदन किया कि मै तो किसी ऊजड प्रदेश को आबाद करना चाहता हूँ, इसलिये ऐसा कोई प्रदेश बताइए। इस पर राजा ने उसे सद्वैवत-नामक घोड़ा देकर कहा कि इस पर सवार होकर उत्तर को जाइए, और जहाँ यह उत्तम घोडा ठहर जाय, वहाँ इसकी लगाम निकालकर इसे छोड दीजिए। आठ पहर मे जितनी भूमि पर भ्रमण कर यह आपके पास लौट आवे, उतनी भूमि पर एक नगर बसाना। उसने वैसाही किया और उस भूमि पर उएस (ओसियाँ, मारवाड मे)-नगर बसा कर वहाँ अपनी राजधानी स्थिर की, तथा उहड को अपना मंत्री बनाया।

एक दिन शचीदेवी ने स्वप्न मे आकर उहड से कहा, मै इस नगर की अधिष्ठात्री देवी हूं, और तुझे आज्ञा देती हूं कि ऊस-वंश की स्थापना कर एक जिनेश्वर का मंदिर और उसके पास मेरा मदिर बनाना। उहड़ ने यह बात राजा से कही। राजा ने वहाँ दोनों मंदिर बनवा दिए, और उस नगर के सब निवासी लोग ऊसवाल (ओसवाल) कहलाए।

इधर श्रीमाल-नगर की अव्यवस्था होजाने के कारण लुटेरे लोग उसे लूटने लगे, जिससे वहाँ के व्यापारियो ने मिलकर खंभपुर (स्तभपुर) के चक्रवर्ती राजा पौरव से रक्षा की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर उसने १०,००० योद्धाओं को वहाँ भेज दिया। उनके आने से श्रीमाल निर्भय हो गया। वे योद्धा श्रीमाल की पूर्व दिशा में ठहरे, इसलिये प्राग्वाट (पोरवाड़) कहलाए। श्रीमालियो की जाति सब जातियों से बड़ी थी। उससे और उसकी शाखा-जातियो से वैश्यों की चौरासी जातियाँ पैदा हुई। फिर अठारह वर्णो तथा छः दर्शनो का परिचय है।

तृतीय खंड—कलियुग मे धर्म नष्ट होगया। व्रत और तपस्या में दंभ के सिवा कुछ न रहा। राजा भी कुटिल होगए। ब्राह्मण शस्त्र धारण करने लगे। स्नान, शौचादि लुप्त हो गए, पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति क्षीण होगई। सन्तों का आदर कम हो गया। पुत्र पिता से, बहू सास से, शिष्य गुरु से विरोध करने लगे। गुरु, योगी और महासतियो ने जप, तप आदि छोड़ दिए। अन्याय और छल बढ़ गया। सारांश यह कि सब प्रकार के अनर्थ होने लगे। परतु इस युग मे कई अच्छी बाते भी हुई। महावीर ने इसी युग में मोक्ष प्राप्त किया। महावीर के अनुयायियो मे जंबूस्वामी, शालीभद्र, कालिकाचार्य, देवसूरि, हेमचद्राचार्य, वस्तुपाल, सती-सुभद्रा, सुलसामाता आदि उत्तम पुरुष और स्त्रियाँ इसी काल मे हुई। इन्ही सत्पुरुषो मे विमल भी हुआ।

विमल के पूर्वज निर्धनता के कारण श्रीमाल-नगर को छोडकर गांभु में आ बसे। वि० सं० ८०२ मे बनराज (चावडा) ने अणहिलपुर बसाया। यह समाचार सुनकर विमल का पूर्वज निनग भी वहाँ चला गया। उसका पुत्र लहिर बहुत प्रतापी हुआ। यह देख कर वहाँ के राजा ने उसे अपना दंडनायक (सेनापति) नियत किया। वनराज के बाद होनेवाले तीन राजो का भी वही दडनायक रहा। लिहर का पुत्र वीर हुआ, जो राज्य का कार्य-भार छोडकर जप-तप और धर्म-ध्यान आदि की तरफ लगा रहा। उसका पुत्र विमल हुआ।

चतुर्थ खड—विमल बहुत सौभाग्यशाली था। उसके बहुत-से शारीरिक लक्षण सौभाग्य-सूचक थे। वह बडा कुशाग्र-बुद्धि था। वह व्याकरण पैशाचीलिपि अनियमितलिपि, यक्षलिपि, नागरीलिपि, पारसीलिपि, वणिक्लिपि द्राविडी आदि लिपियों और वास्तु-विद्या, कामशास्त्र, राजनीति, जैनधर्म, मत्र-तंत्र, युद्ध

नीति, व्यापार, पाकशास्त्र, कृषिशास्त्र, साहित्य, ज्योतिष, गणित आदि अनेक विषयो मे शीघ्र पारंगत हो गया। तत्पश्चात् उसका पिता दीक्षा लेकर साधु हो गया।

विमल की कुशाग्र-बुद्धि और चतुरता को देखकर उसके शत्रुओ के मन मे ईर्ष्या उत्पन्न हुई। शत्रु उसका अनिष्ट न कर दे, इस भय से उसकी माता उसे लेकर अपने पीहर चली गई। विमल का नाना बहुत गरीब था। इसलिए उसने उसको अपने पशु चराने पर नियत किया। अंबाजी ने उसके शील के कारण बहुत प्रसन्न होकर उसे वर्ण-कला, वाजि-परीक्षा, और पचकोश तथा शर-प्राप्ति के वर दिए।

उन्ही दिनो श्रीदत्त नाम का एक धनाढ्य व्यापारी पाटण (अणहिल-वाडे) मे अपनी लड़की के लिये योग्य वर की तलाश मे था। ज्योतिषियो ने उसे बताया कि वीर का पुत्र विमल तुम्हारी कन्या के योग्य वर है; क्योंकि उसी के साथ इस पुत्री का जन्मयोग मिलता है, और वह इस समय अपने नाना के घर है। उक्त व्यापारी ने उसी के साथ अपनी कन्या के विवाह का निश्चय कर लिया। इसके बाद विमल को एक स्थान पर गड़ा हुआ बहुत-सा धन मिला।

पंचम खड—श्रीदत्त व्यापारी की कन्या बहुत सुन्दर और सुलक्षणा थी। उनका विवाह शुभ मुहूर्त मे बड़े समारोह से हो गया। नव-विवाहित दंपती बड़े सुख से रहने लगे। कुछ समय बाद विमल पाटण मे चला आया।

षष्ठ खंड—विद्वान् जैन-आचार्य धर्मघोष सूरि ने विमल को अंबाजी की स्तुति का उपदेश दिया। तदनुसार उसने अनशनव्रत कर अबाजी को प्रसन्न किया, जिससे अंबा और चक्रेश्वरी ने उसे वरदान दिया। इसके बाद विमल ने अपनी बाणकला से पाटण के राजा भीमदेव को अत्यंत प्रसन्न किया, जिस पर उसने उसे अपना दंडनायक नियत किया। शनैः शनैः विमल बहुत उन्नति करता गया, और बहुत धनाढ्य हो गया। उसकी उन्नति देखकर उसके वैरी बहुत कुढने लगे और उसे निकलवाने के लिये उसके विरुद्ध राजा के कान भरने लगे। राजा ने उस की बहकावट मे आकर उनसे विमल के बध का उपाय पूछा। मंत्रियो ने कहा कि उस पर बाघ छोड दिया जाय। राजा ने शहर मे बाघ छोड

दिया। शहर के लोग उसे देखकर डरने लगे। विमल यह खबर सुनते ही बाजार मे पहुंचा, और उसे पकड़कर मल्लयुद्ध द्वारा मार डाला।

सप्तम खड—इस प्रकार राजा ने अपने पहले उपाय मे असफल होने पर विमल के पूर्वजो पर झूठा क़र्ज़ा बताकर उससे वसूल करना चाहा। उसने भी राजा का सच्चा अभिप्राय समझकर पाटण छोड़कर चंद्रावती जाने का निश्चय किया और वह बहुत संपत्ति, सवार, पैदल आदि को साथ लेकर चंद्रावती[1] पहुँचा; परंतु वहाँ का राजा विमल का आना सुनकर डर से ठट्ठा के राजा के पास भाग गया। तब चद्रावती-प्रदेश के मांडलिको (सरदारो) ने विमल को अपना राजा बनाया। एक दिन वह दरबार मे बैठा हुआ था। उस समय एक विदेशी ने आकर कहा कि बंगाल मे रोमनगर नाम का एक विशाल शहर है। वहाँ का सुलतान हिंदुओ पर बहुत प्रकार के अत्याचार करता है। आप हिंदुओ की रक्षा करे। इसे स्वीकार कर विमल ने बड़ी भारी सेना लेकर बंगाल की तरफ प्रस्थान कर दिया। वहाँ जाकर शीघ्र ही उसने उसे अपने अधीन कर लिया, और कहा कि तुम्हारी बेगमे हिंदु-वेश पहनकर मेरे सामने आवे। सुलतान को लाचार यह मानना पड़ा। विमल उन बेगमो तथा सुलतान को पोशाके देकर लौट आया।

अष्टम खंड—एक दिन विचित्र वेशधारी एक पुरुष विमल के पास आया, और उसे इस आशय का पत्र दिया कि पश्चिम देश (ठट्ठा) का पड्यारराजा विमल को लिखता है कि तुम राजा के साथ विरोध कर पाटण से चंद्रावती चले आए हो, इसलिये हमारी सेवा स्वीकार करो, तो तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा, अन्यथा हमारे क्रोधभाजन बनोगे। अच्छा यही होगा कि तुम हमारे चरणों मे आ झुको। इस अपमानजनक पत्र को पढ़कर विमल ने सिधु-देश पर चढाई की और वहाँ के ब्राह्मण-राजा को कैद कर चद्रावती ले आया।

इसके कुछ दिन बाद पाटण के राजा भीमदेव ने विमल के लिये छत्र, चामर और राजा की पदवी भेज दी। तदनंतर विमल ने चंद्रावती को नए ढंग से बसाया।

---

१ आबू के परमारो की राजधानी। यह विशाल और प्रसिद्ध नगर आबू के नीचे ही बसाया हुआ था, अब उजाड है।

नवम खंड—विमल गुरुमुख से जैन-धर्म का स्वरूप सुनकर अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये धर्मघोष सूरि के पास गया। उसने उसे आबू पर तीर्थ (मंदिर) स्थापित करने का उपदेश देते हुए आबू का पौराणिक वृत्तांत, अर्बुदा देवी की कथा और आबू की महत्ता सुनाई। आज्ञा शिरोधार्य कर विमल ने अबाजी की सहायता से आबू पर जैनमंदिर बनाया, और १०८८ वि० मे धर्मघोष सूरि से आदिनाथ की प्रतिष्ठा कराई। इस अंतिम कार्य से विमल का यश बहुत बढा।

चूलिका (परिशिष्ट)—पुह—वीतलि, पोटा, श्रीधर, भूपति आदि पाँच सौ ग्यारह भाट विमल की कीर्ति को सुनकर उससे मिलने के लिये चद्रावती आए। चद्रावती की भव्यता और विमल का कैलास-सदृश सफेद महल देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए; परंतु वहाँ विमल को न देखकर लौटने लगे। यह देखकर विमल की धर्मपत्नी श्रीदेवी ने कहा की मत्री यद्यपि बाहर गए है, तथापि उनका घर यही है। इसलिये भोजन कर लो, तब तक वह भी आ जायँगे, उनसे मिलकर जाना। श्रीदेवी ने भाटो को भोजन कराया। तदनंतर भाटो ने स्त्रियो की श्रेष्ठता-सूचक बहुत-से पद्य कहे, और विमल का नाम अमर रखने का वचन दिया।

विमल-प्रबंध की ऐतिहासिक समालोचना

प्रथम खंड —कवि का यह कथन कि श्रीमाल-नगर कृतयुग से विद्यमान था, और चारो युगो मे उसके चार भिन्न-भिन्न नाम थे, भ्रम-पूर्ण ही है; क्योकि श्रीमाल-नगर अनुमानत: दो हज़ार वर्ष से अधिक पुराना नही है। ऐसे ही पुष्प-माल और रत्नमाल नाम भी कल्पित है, क्योकि उनका कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। भिल्लमाल (भीनमाल) और श्रीमाल दो ही नाम मिलते हैं। भीनमाल नाम का प्रयोग चीनी यात्री हुएन्त्सग की यात्रा की पुस्तक[1] मे मिलता है, और भीनमाल-नगर से मिलनेवाले शिलालेखों मे[2] भी 'श्रीमाल' नाम पाया जाता है।

---

१ बील, बुद्धिस्ट रैकर्ड्स ऑफ दी वैस्टर्न वर्ल्ड, जि० २, पृ० २७०।

२ संवत् ११९७ माघ सुदि ६ रवौ श्रीश्रीमाले परमारवशोद्भवो महाराजाधिराज श्रीकृष्णराज"। (भीनमाल के वाराहजी के मंदिर के पूर्व की एक धर्मशाला के स्तंभ पर का लेख)

प्रबंधचिंतामणि में श्रीमाल और भीनमाल, दोनों नामों का प्रयोग मिलता है[1]।

द्वितीय खंड— सेठ उहड-सहित राजकुमार उत्पलदेव का अपने पिता से अप्रसन्न होकर ठट्टा के राजा के पास जाना और उससे अश्व प्राप्त कर ओसिया नगर बसाना, यह भी कल्पित ही है। परमार राजा उत्पलदेव (उत्पलराज) का ओसिया मे अधिकार होना पाया जाता है; परंतु उसी ने ओसिया-नगर बसाया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वह तो आबू के परमार राजा सिंधुराज का पुत्र था[2] और उसके राज्य के अंतर्गत श्रीमाल, ओसिया आदि अनेक नगर थे। शत्रुओ की चढ़ाई से श्रीमाल-नगर की अव्यवस्था होना, वहाँ के व्यापारियों का खंभपुर के राजा के पास जाना, वहाँ से १०,००० योद्धाओ को लाना और श्रीमाल के पूर्व मे उनके निवास करने के कारण उनका प्राग्वाट (पोरवाड़) कहलाना, ये सारी बाते कल्पित है। श्रीमाल (भीनमाल) पर खलीफा हसन के समय सिंध के हाकिम जुनेद की चढाई होने का उल्लेख लाट के सोलंकी पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के वि० स० ७९६ के ताम्रपत्र तथा 'फतूहुल्बुल्दान' नामक फ़ारसी तवारीख़ मे मिलता है[3]; परंतु उस चढ़ाई का समय उत्पलदेव से बहुत पहले का है। प्राग्वाट तो मेवाड़ के एक विभाग का पुराना नाम था, जैसा कि शिलालेखादि से पाया जाता है। वहाँ के निवासी भिन्न-भिन्न जगहो मे जाकर रहे, जहाँ वे अपने मूल निवास-स्थान के कारण प्राग्वाट कहलाते रहे।

वैश्यों की चौरासी जातियो की उत्पत्ति क्रमशः श्रीमालियो से होना भी मानने योग्य नही है; क्योंकि ओस या ओसिया नगर से ओसवाल, प्राग्वाट देश से प्राग्वाट, लाट देश से लाड कहलाए है।

तृतीय खंड—विमल के प्रपितामह निन्नग का पाटण के चावडा राजा वनराज का दडनायक होना और तीन पीढी तक पद पर बने रहना, उसके पुत्र लिहर का

---

१ सवत् ११२३ ज्येष्ट-वदि १२ शनौ। अद्येह श्रीश्रीमाले महाराजाधिराज श्रीकृष्णराजराज्ये'।
(भीनमाल के जगस्वामी के मडप के पूर्व की तरफ से स्तंभ पर का लेख)
ऐसे ही भीनमाल के अन्य शिलालेखो मे भी भीनमाल का नाम श्रीमाल मिलता है।
मेरुतुंगरचित प्रबंधचिंतामणि, पृ० ८४—८८।

२ वसंतगढ का वि० स० १०९९ का शिलालेख;

३ ना० प्र० पत्रिका, भाग १, पृ० २१०—११।

दंडनायक होना, ये कथन भी निर्मूल है; क्योंकि निनग वनराज का समकालीन नहीं था। वनराज ने वि० सं० ८०२-२१ तक राज्य किया, और निनग का पौत्र वीर (वीरम) गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा मूलराज (वि० सं० १०१७-५२[1] के दरबार मे विद्यमान था[1], ऐसा विमल के बड़े भाई नेढ़ के प्रपौत्र दशरथ के वि० सं० १२०२ के विमल के बनवाए हुए आबू के प्रसिद्ध आदिनाथ के मंदिर की दसवीं देवकुलिका के बाहर खुदे हुए शिलालेख से पाया जाता है। विमल के मंदिर की हस्तिशालावाले लेख मे निनग को महामात्य लिखा है। अतएव संभव है कि वह भी प्रारंभ मे मूलराज का मंत्री हो। यदि निनग वनराज का समकालीन होता, तो उसका प्रपौत्र विमल अनुमानत. उस (वनराज) से सवा दो सौ वष पीछे होनेवाले भीमदेव सोलंकी का समकालीन नहीं हो सकता। अतएव निनग वनराज का समकालीन किसी प्रकार नहीं माना जा सकता।

चतुथ खंड—विमल की माता का उसे लेकर अपने पिता के घर जा रहना, वहाँ उसका पशु चराना और अंबादेवी का उसे वरदान देना भी कवि-कल्पना-मात्र होने से विश्वसनीय नहीं है।

विमल के दादा लिहर के समय से ही ये लोग सोलंकी राजो के बहुधा महामात्य (महामंत्री) रहते चले आते थे।

पचम खड—इसमे ऐसी कोई ऐतिहासिक बात नहीं है, जिसका विवेचन किया जाय।

षष्ठ खंड—इस संपूर्ण खंड मे केवल विमल का भीमदेव के दंडनायक होने का कथन ही ठीक है। विमल का वरदान पाना, विमल के शत्रुओ द्वारा बहकावट मे आकर राजा का उसको मरवाने के लिये बाघ छोड़ना और विमल का उसे मार देना आदि कथाएँ कवि ने केवल अपने काव्य को चित्ताकर्षक करने के लिये ही खड़ी की है। विमल तो भीमदेव का विश्वासपात्र सेनापति था, जैसा कि आगे बताया जायगा।

---

१ देखो आगे उक्त शिलालेख का अवतरण।

सप्तम खंड—भीमदेव का विमल के पूर्वजों पर झूठा क़र्ज़ा बताना, विमल का पाटण छोड़कर ससैन्य चंद्रावती जाना, वहाँ के राजा का भागना और वहाँ के सरदारों का विमल को राजा बनाना, ये कथन भी कल्पित है। विमल तो राजा भीम का विश्वासपात्र सेवक होने से ही आबू का दंडनायक नियत किया गया था।

ऐसे ही बंगाल के रोमनगर के सुलतान पर चढ़ाई करना और उसे जीतना भी निर्मूल ही है; क्योंकि उस समय तक बंगाल में मुसलमानों का प्रवेश भी नहीं हुआ था।

अष्टम खंड—ठट्ठे के ब्राह्मण राजा पर विमल का आक्रमण और उसे क़ैद कर लाना भी अविश्वसनीय है। सिंध पर से ब्राह्मण राजों का अधिकार तो कई शताब्दी पूर्व उठ गया था, और उस समय तो वहाँ पर मुसलमानों का अधिकार था। ग्रंथकर्ता ने विमल को चंद्रावती का राजा मान लिया, इसी से उसको बंगाल और ठट्ठा का विजय वर्णन करना भी अभीष्ट हुआ। इसी प्रकार भीमदेव का छत्र-चँवर और राजा की पदवी देकर राजा बनाना भी कल्पित है; क्योंकि वह तो भीमदेव का सेनापति था, और उसी की तरफ़ से आबू और चंद्रावती पर शासन करता था।

नवम खंड—इस खंड में धर्मघोष सूरि के उपदेश से आबू पर विमल का मंदिर बनवाना लिखा है; परन्तु धर्मघोष सूरि के उपदेश से बनवाया या नहीं, यह संदिग्ध है; क्योंकि उसी मंदिर में महामात्य कवडि ने वि० सं० १२२६ में अपने माता-पिता की मूर्तियाँ बनवाकर रखवाई, जिनकी प्रतिष्ठा धर्मघोष सूरि ने की थी, ऐसा उन पर के लेख से निश्चित है।

चूलिका—इसमें भाटों की जो कथा है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि पहले राजों, सरदारों और श्रीमतों के यहाँ भाटों का पर्याप्त आदर होता था। परन्तु भाटों के जो ५११ नाम दिए हैं, वे हमारी सम्मति में विश्वसनीय नहीं है।

इस सारे ग्रन्थ में विमल के सम्बन्ध का ऐतिहासिक तत्व इतना ही है कि वह प्राग्वाट-जाति का श्रीमाल गोत्र का महाजन था। वह निनग का प्रपौत्र, लिहर का पौत्र और वीर का पुत्र था। एक बार वह गुजरात के चौलुक्य-राजा भीमदेव का दंडनायक हुआ और वि० सं० १०८८ में उसने आबू पर विमलवसही

नाम का आदिनाथ (ऋषभदेव) का मंदिर बनवाया। बाक़ी का अधिकतर हाल कवि कल्पना या सुनी-सुनाई बातो से भरा हुआ है। जैसे राजपूताने की वि० सं० १७०० के पीछे की लिखी हुई ख्याते प्राचीन इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नही हैं, वैसे ही विमल के ४०० वर्ष पीछे बना हुआ यह प्रबन्ध भी विमल का विशेष वास्तविक वृत्तांत प्रकाशित नही करता।

विमल

हम ऊपर लिख आए है कि विमल का चरित्र लिखने वाला समकालीन या निकटवर्ती विद्वान् नही हुआ, और विमल के प्रसिद्ध मदिर मे भी उसके बनने के समय की कोई प्रशस्ति नही लगाई गई, जिससे विमल और उसके कुटुम्ब का वास्तविक चरित्र अंधकार मे ही है।

आधुनिक खोज से मिले हुए शिलालेखों मे से केवल तीन ही ऐसे है, जिनमे विमल का कुछ वृत्तांत मिलता है। पहला शिलालेख उपर्युक्त वि० स० १२०२ का है, जिससे पाया जाता है—श्रीमाल-कुल और प्राग्वाट-वश मे धर्मात्मा निन्नक हुआ। उसका पुत्र लहर हुआ, जो नीतिज्ञ, देवता और साधुओ का भक्त, दान-शील, दयालु और जिनधर्म का ज्ञाता था। उसका पुत्र महत्तम वीर मूलनरेन्द्र (चौलुक्य राजा मूलराज) की सेवा मे रहता था। वह बुद्धिमान्, उदार और दानी था। उसका जैन-धर्मनिष्ट, ज्येष्ठ पुत्र नेढ मन्त्री बना और दूसरा विमल दंडाधिपति (दंडनायक) हुआ, जिसने यह मंदिर (विमलवसही) बनवाया, इसके आगे नेढ की वशावली है[1]।

---

१ श्रीश्रीमालकुलोत्थनिर्मलतरप्राग्वाटवशावरे

आजच्छीतकरोपमो गुणनिधि श्रीनिन्नकाख्योगृही ,

आसीद्ध्वस्तसमस्तपापनिचयो विज्ञो वरिष्ठाशय

धन्या(न्यो)धर्मनिबद्धसु(शु)द्धधिषि(ष)ण स्वाम्नायलोकाग्रणीः ॥ २ ॥

सकलनयविधिज्ञो भावतो देवसाधु प्रतिदिनमतिभक्तो दानशीलो दयालु· ,

विदितजिनमतोल धर्मकर्मानुरक्तो 'लहर' इति सुपुत्रस्तस्य जातः पवित्रः ॥ ३ ॥

प्रावाजीज्जितदर्पितारिनिचयो यो जैनमार्गे परमार्हत्यं सुविशुद्धमन्वयवशप्राप्तं समाराध(ध्य) च ;

श्रीमान मूलनरेद्र सन्निधिसुधानिस्फदससेकितप्रज्ञापात्रमुदात्तदानचरितस्तत्सूनुरासीद (द्व) र ॥४॥

विमल के कोई पुत्र था या नहीं, इसका अब तक कोई पता नहीं लगा; क्योंकि विमल के पीछे की वंशावली नहीं मिलती। केवल एक लेख उक्त मंदिर में, अंबाजी की मूर्ति पर, खुदा हुआ है, जिसका आशय है कि विमल के वंशज अभयसिंह के पुत्र जगसीह, लखमसीह और कुरसीह हुए, तथा जगसीह का पुत्र भाण हुआ। इन सबने मिलकर विमलवसही (वसति=देवमंदिर) में अंबाजी की मूर्ति स्थापित की[1]।

तीसरा शिलालेख विमलवसही के जीर्णोद्धार का, वि० सं० १३७८ का है, जिसमें लिखा है कि चन्द्रावती का राजा धंधु (धंधुराज) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की, तब राजा (भीमदेव) उस पर बहुत क्रुद्ध हुआ, जिससे वह मनस्वी (धंधुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा भीमदेव ने प्राग्वाट-वंशी मंत्री विमल को आबू का दंडपति (सेनापति) बनाया। उसने वि० सं० १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मंदिर बनवाया[2]।

जिनप्रभ सूरि ने अपने तीर्थकल्प में अर्बुदकल्प के प्रकरण में लिखा है कि जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक पर क्रुद्ध हुआ, तब उस (विमल) ने

निजकुलकमलदिवाकरकल्प सकलार्थी सार्थ कल्पतरु ;
श्रीमद्वीरमहत्तम इति य ख्यात क्षमावलये ॥ ५ ॥
श्रीमन्नेढो धीधनो धीरचेता आसीन्मंत्री जैनधर्मैकनिष्ठ ,
आद्य पुत्रस्तस्यमानी महेच्छ त्यागी भोगी बन्धुपद्माकरेंदु ॥ ६ ॥
द्वितीयको द्वैतमतावलंबी दंडाधिप· श्रीविमलो बभूव ;
येनेदमुच्चैर्भवसिंधुसेतुकल्प विनिर्मापितमत्र वेश्म ॥ ७ ॥

१ संवत् १३९४ वर्षे जेष्ठ-वदि ५ शनौ अर्हं विमलान्वये ठ० अभयसीहभार्या अहिवदेपुत्रमह जगसीह लखमसीह कुरसीह मह० जगसीहभार्या जेतलदे तत्पुत्रमह भाण (मडल, भाण) केन कुटुम्ब-सहितेन विमलवसहिकाया देव्याः श्री· अम्बिकाया । मूर्तिकारिता । प्रतिष्ठिता ।

२ तत्कुलकमलमरालः काल· प्रत्यर्थिमण्डलीकानाम् ;
चन्द्रावतीपुरीश समजनि वीराग्रणीर्धन्धु· ॥ ५ ॥
श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्यमान किल धन्धुराज ;

भक्ति से भीमदेव को प्रसन्न कर धांधुक को चित्रकूट[१] (चित्तौड) से लाकर वि० सं० १०८८ मे उस (धांधुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च[२] से विमलवसहि-नामक सुंदर मंदिर बनवाया[३] विमल का इससे अधिक कोई वृत्तांत उपलब्ध नही हुआ।

विमल का मंदिर

विमल का कीर्तिस्तंभ तो उसका बनवाया हुआ मंदिर ही है। यह मंदिर और उसके पास का नेमिनाथ का मंदिर कारीगरी की उत्तमता के लिये संसार-भर मे अनुपम है। इनमे भो विमल का मंदिर कारीगरी की दृष्टि से अधिक उत्तम है। मुख्य मंदिर के सामने विशाल सभामडप और चारो तरफ छोटी-छोटी कई देव-कुलिकाएँ है। इस मंदिर मे मुख्य मूर्ति ऋषभदेव की है, जिसके दोनों तरफ एक-एक खडी हुई मूर्ति भी है और भी वहाँ पीतल तथा पाषाण की कई मूर्तियाँ है,

---

नरेशरोषाच्च ततोमनस्वी धाराधिप भोजनृपं प्रपेदे ॥ ६ ॥
प्राग्वाटवंशाभरणं बभूव रत्नप्रधान विमलाभिधान ॥७॥
ततश्चभीमेन नराधिपेन प्रतापवह्निर्विमलो महामति ,
कृतोर्बुदेदंडपति: सताप्रियोप्रियंवदो नदतु जैनशासने ॥८॥
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्व्यतितेऽष्टाशीतियाते शरदा सहस्रे ;
श्रीआदिदेव शिखरेर्बुदस्य निवेमि(शि)न श्रीविमलेन वंदे ॥११॥
(आबू का शिलालेख)

१ उस समय चित्तौड का किला मालवा के राजा भोजदेव के अधिकारमे था, जहाँ वह रहा भी करता था। वहाँ उसने एक विशाल शिवालय बनवाया था।

२ जैनो मे यह प्रसिद्धि है कि इस मंदिर के बनाने में अठारह करोड़ रुपये व्यय हुए थे। इसमे सत्यता कितनी है, यह हम नहीं कह सकते; परंतु इतना तो निश्चित है कि आज कई अठारह करोड रुपए लगाने पर भी वैसा मंदिर नहीं बन सकता।

३ राजानक श्रीधन्धुके क्रुद्ध श्रीगुर्जरेश्वरम् ,
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥३६॥
वैक्रम वसुवस्वाशा १०८८मितेऽब्देभूरिरैव्ययान ,
सत्प्रासाद स विमलवसत्याह्वं व्यधापयत् ॥४०॥
(तीर्थकल्पअर्बुदकल्प)

जो पीछे की बनी हुई है। इस मंदिर की कारीगरी की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। स्तंभ, तोरण, गुंबज, छत, दरवाज़े आदि पर जहाँ देखा जाय, वही कारीगरी की सीमा पाई जाती है। कर्नल टॉड ने इस मंदिर के विषय मे लिखा है कि भारत-भर मे यह मंदिर सर्वोत्तम है और ताजमहल के सिवा कोई दूसरा स्थान इसकी समानता नही कर सकता। फर्गूसन ने लिखा है कि इस मंदिर मे, जो संगमरमर का बना हुआ है, अत्यंत परिश्रम सहन करनेवाली हिंदुओ की टाँकी से फीते जैसी बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियाँ बनाई गई है कि उनकी नकल कागज़ पर बनाने को कितने ही समय तथा परिश्रम मे भी मैं समर्थ नही हो सकता। रासमाला के कर्ता फार्ब्स ने लिखा है कि इन मंदिरो की खुदाई के काम मे स्वाभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र बनाए है, इतना ही नही किंतु सांसारिक जीवन के दृश्य, व्यापार तथा नौका-शास्त्र-संबंधी विषय एव रणखेत के युद्धों के चित्र भी खुदे हुए है। छतो मे जैन-धर्म की अनेक कथाओ के चित्र भी अंकित है।

मंदिर के बनने से अनुमान डेढ सौ वर्ष पीछे मंदिर के सम्मुख हस्तिशाला भी बनाई गई, जिसमे दरवाज़े के सामने विमलशाह की अश्वारूढ़ मूर्ति बनी हुई है। हस्तिशाला में संगमरमर की दस हथिनियाँ है, जिन पर पुरुष सवार थे; परंतु अब केवल दो-तीन रह गए है। नव हथिनियो के आसनो पर निम्नलिखित लेख खुदे है, जिनसे उनके सवारो का पता लगता है।

१. संवत् १२०४ फागुण-सुदि १० शनौ दिने महामात्य श्रीनीनुकस्य (महामात्य नीनुक की हथिनी)।

२. संवत् १२०४ फागुण-सुदि १० शनिदिने महामात्य श्रीलहरकस्य।

३ संवत १२०४ फागुण-सुदि १० शनौ महामात्य श्रीवीरकस्य।

४. संवत १२०४ फागुण-सुदि १० शनौ दिने श्रीनेढकस्य।

५. .... दिने महामात्य श्रीधवलकस्य।

६ संवत १२०४ फागुण-सुदि १० शनौ दिने महामात्य श्रीआनंदकस्य।

७ संवत् १२०४ फागुण-सुदि १० शनौ दिने महामात्य श्रीपृथ्वीपालस्य

८. संवत १२३७ आषाढ-सुदि ८ बुधदिने पउंतार (?) ठ० श्रीजगदेवस्य

६. संवत् १२३७ आषाढ़-सुदि ८ बुध दिने महामात्य श्रीधनपालस्य।

१०. .. .. । वि० सं० १९६८ मे सिरोही-राज्य का इतिहास लिखते समय हमने इन सवारो के नाम और सवतो का परिचय दिया था; परतु उस समय तक ऐसे साधन उपस्थित नही हुए थे, जिनसे यह बतलाया जाता है कि ये पुरुष कौन और कहाँ के मत्री आदि थे। वि० स० १२०२ के शिलालेख से पाया गया कि पहले तीन विमल के पूर्वपुरुष और चौथा नेढ उसका बडा भाई था, जिसका नाम विमलचरित्र मे नही। बाकी की पॉच हथिनियो पर के पुरुष कौन है, यह निश्चय करने की आवश्यकता है। उपर्युक्त १२०२ वाले शिलालेख मे नेढ का पुत्र लालिग, उसका महिंदुक और उसके दो पुत्र हेम और दशरथ का होना बताया है, परन्तु हस्तिशाला मे उनमे से किसी के नाम की हथिनी नही है। हरिभद्र सूरि-रचित[1] श्रीमल्लिचरित–नामक प्राकृत काव्य के तीसरे प्रस्ताव मे पाया जाता है कि महामन्त्री नेढ का पुत्र धवलक राजा कर्ण का मन्त्री हुआ। उसका पुत्र आनन्द जयसिंह (सिद्धराज) का मन्त्री रहा। उसने आबू पर विमल के मन्दिर के आगे का मडप (हस्तिशाला) बनवाया[2] उक्त मन्दिर के वि० स० १२४५ के एक शिलालेख से स्पष्ट है कि पृथ्वी-

---

१ यह पुस्तक कुमारपाल के समय मे बनी थी, जिसकी एक प्रति आचार्यजो महाराज श्री विजयेंद्र सूरि के द्वारा हमे उपलब्ध हुई। अतएव हम उनके उपकृत हैं।

२ अहनेढमहामइणो तणओ सिरिकएण एव रज्जम्मि,
जाच्यो नियजसधवलियभुवणो धवलोत्तिमन्तिवरो।
जयसिंह राव रज्जे गुरुगुणवसउल्लसंतमाहप्पो;
जाओ भुवणाणंदो आणंदो नाम सचिविंदो।
अहसिद्धिराम सिरिकुमारवालरावावणिंद तिलयाणम्,
विपुरणभरभारहुरियमिवद दुणं पुहवीपीढम्।
सिरीकुमरवालनरनायगाण रज्जेसु,
सिरिपुहइवालमन्ती अवितहनामा इमो विहिओ।
अब्बुय गिरिम्मिसिरिनेढ विमलजिणमन्दिरे कराविउम्;
मडवमईयविम्हयजयणं पुरओ पुणो तस्स।
विलसिरकरेणुमाण सवस पुरिसोत्तमाणमुत्तीओ,
विहियं च सघभत्ति बहुत्थयवत्थदाणेण।

पाल का पुत्र ठ० (ठक्कुर)[1] जगदेव था[2]। उक्त संवत् के एक अन्य शिलालेख से यह भी निश्चित है कि महामात्य धनपाल भी पृथ्वीपाल का दूसरा पुत्र था[3]। इस प्रकार निश्चित है कि इन नव हथिनी-सवारों मे से पहले तीन विमल के पूर्वज, चौथा उसका बडा भाई नेढ़ और बाक़ी के पाँच उस (नेढ) के वंशधर है। यह भी निश्चित है कि हस्तिशाला वि० सं० १२०४ मे बनी, और सात हथिनियाँ उक्त संवत में स्थापित की गई, तथा बाकी की दो वि० सं० १२३७ मे।

हस्तिशाला मे अपने वंश के इन पुरुषो की हथिनी पर मूर्तियाँ स्थापित करने का क्या अभिप्राय था, यह निश्चित रूप से लिखा हुआ नही मिला, तो भी विमल के मन्दिर के पासवाले तेजपाल के बनवाए हुए दूसरे भव्य मंदिर के शिलालेख से इस विषय का कुछ पता लगता है। उक्त मदिर की हस्तिशाला के पीछे की दीवार के अन्दर संगमरमर के दस बडे बडे ताक (खत्तक) बने है, जिनमे वस्तुपाल के दस कुटुम्बियो—चडप, चंडप्रसाद, सोमसिह, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह, और लावण्यसिह को स्त्रियो-सहित मूर्तियाँ बनी है, जिनके नीचे उनके नाम भी खुदे है। हस्तिशाला मे यही दस पुरुष हथिनियो पर स्थापित किए गए थे; परन्तु ये मूर्तियाँ पीछे से तोड़ डाली गई। उक्त मंदिर की वि० स० १२८७ की प्रशस्ति मे लिखा है कि हथिनियों पर बैठी हुई जिन-दर्शन के लिये आई हुई ये दस मूर्तियाँ दिक्पालों के समान चिरकाल तक

---

१ जिन ब्राह्मण, महाजन और कायस्थो को अच्छी सेवा के लिये राज्य की ओर से जागीरें मिलती थी, वे भी ठाकुर कहलाते थे।

२ सवत् १२४५ वै०वदि ५ भृगौ प्राग्वाट पृथ्वीपालात्मज ठ० जगदेव पत्नी ठ० श्रीमालदे आत्मश्रेयोर्थ श्रीसुपार्श्वनाथ प्रतिमा का० श्रीसिह [सूरिभिः प्रतिष्ठिता ।]

(विमल के मंदिर की देवकुलिका की एक मूर्ति पर का लेख)

सिरोही का इतिहास लिखते समय हमने जगदेव को परमार वंशी अनुमान किया था, परतु पिछले अनुसंधानो से निश्चय हुआ कि वह माहामात्य नेढ का वशधर था।

३ श्रीअभिनन्दनस्य । [स० १२४५ वर्षे] वैशाख वदि ५ गुरौ पृथ्वीपालात्मजमाहामात्यश्रीधनपालेन मातृ श्रीपद्मावतीश्रेयोर्थ कारिता [प्र०] श्रीकोसहृद (कासहृद) गच्छे श्रीसिंहसूरिभि ।

(विमल के मदिर की देवकुलीका की मूर्ति पर का लेख)

सुशोभित रहेगी [१]। इससे स्पष्ट है कि धनवान् लोग अपने बनाए हुए मन्दिरो मे अपने को तथा अपने पूवजो आदि को उक्त मन्दिर के दर्शनार्थ आए हुए सूचित करने के लिये ऐसी मूर्तियाँ स्थापित करते थे। राजपूताने मे जैन-मन्दिरो के अतिरिक्त शिव और विष्णु के मदिरो के सामने भी हाथियो पर चढी हुई मूर्तियाँ देखने मे आई, जिनका भाव भी यही होना चाहिए।

पीछे से मुसलमानो ने विमल के मन्दिर का कुछ अश तोड डाला था, जिससे मडोर के रहनेवाले जेल्हा के वशधर महणसिह के पुत्र लल्ल और वीजड़ ने वि० सं० १७३८ मे उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, जैसा कि तत्सबधी प्रशस्ति से पाया जाता है [२]।

अनुमान होता है कि इस मन्दिर के बनने के बाद शीघ्र ही विमल का देहांत हो गया होगा; क्योकि न तो वह हस्तिशाला बना सका, और न देवकुलिकाओ मे से एक मे भी किसी मूर्ति की प्रतिष्ठा करा सका। देवकुलिकाओं मे जो मूर्तियाँ विद्यमान है, वे सब पीछे से अन्य लोगो की प्रतिष्ठित की हुई है, जैसा की उन पर के लेखो मे पाया जाता है। विमल के वशजो का भी कोई पता नहीं लगता, केवल अभयसीह और उसके तीन पुत्रो का पता अंबादेवी की मूर्ति के उपर्युक्त लेख से लगता है। विमल के बड़े भाई नेढ़ के वंशज क्रमश गुजरात के चौलुक्य (सोलकी) राजो के मंत्री बने रहे। उन्होनेहस्तिशाला के अतिरिक्त देवकुलिकाओ मे भी कई मूर्तियाँ स्थापित की। (सुधा मा.प. लखनऊ वर्ष १, खंड १, ई.स १९२७)

---

१ श्रीमच्चण्ड (प) सम्भव (सम) मवच्चण्डप्रसादस्तत -
सोमस्तत्प्रभवोऽ श्वराज इति तत्पुत्रा पवित्राशया ;
श्रीमल्लूणिगमल्लदेवस चिवश्रीवस्तुपालाह्वया-
स्तेजपालसमन्विता जिनमतारामोन्नमन्नीरदा ॥ ६२ ॥
श्रीमत्रीश्वरवस्तुपालतनयः श्रीजैत्रसिहाह्वया-
स्तेजपालसुतश्च विश्रुतमतिर्लावण्यसिंहाभिध ;
एतेषा दशमूर्तय करिवधूस्कधाधिरूढाश्चिरं-
राजते जिनदर्शनार्थमयता दिग्नायकानामिव ॥ ६३ ॥

२ स्वपितृश्रेयसे जीर्णोद्धार ऋषभमदिरे-
कारयामासतुर्लल्ल-वीजडौ साधुसत्तमौ (मौ) ॥३८॥ (विमल के मदिर के जीर्णोद्धार की प्रशस्ति)

(स०टि०) 1 सोलकी राजा मलराज का ...

४ वीसलदेव रासो का निर्माणकाल

नरपति नाल्ह रचित 'वीसलदेव रासो' के निर्माणकाल के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न विद्वानो के मत भिन्न-भिन्न है और हस्तलिखित प्रतियो मे कही उसका वि० सं० १०७३, कही १०७७, कही १२७२, कही १३७७ और कही १७७३ मे निर्माण होना लिखा मिलता है। श्रीयुत अगरचंद नाहटा ने 'राजस्थानी' (त्रैमासिक पत्रिका, भाग २ अंक ३) मे अपने 'वीसलदे रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ' नामक लेख में भिन्न-भिन्न पंद्रह प्रतियो के आधार पर उसकी रचना के ऊपर दिए हुए भिन्न-भिन्न सवत् दिए है। और उसकी भाषा सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा बतलाई है। तथा सोलहवी शताब्दी मे नरपति नाम के एक जैन कवि के होने का भी सकेत किया है। तिस पर भी उक्त पुस्तक का रचना-काल अनिश्चित ही रहता है, जिसका निश्चय करना आवश्यक है।

छपे हुए 'वीसलदेव रासो' मे, जो काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है, उसका रचना काल—

बारह सै बहतराँ[1] हाँ मँझारि।
जेठ बदी नवमी बुध वारि[2] ॥

---

१ उक्त पुस्तक के सम्पादक ने "बारह सै बहत्तराँ" का अर्थ १२१२ किया है (वीसलदेव रासो की भूमिका, पृ० ८) और कुछ विद्वान ऐसा ही मानते भी हैं। परन्तु यह ठीक नही है, क्योंकि राजस्थानी भाषा मे "बहत्तराँ" का अर्थ १२ नही, ७२ होता है।

२ वीसलदेव रासो (नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित), पृ० ४, छन्द ६।

अर्थात् वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ वदि ६ बुधवार दिया है। राजपूताने में पहले विक्रम संवत कहीं चैत्रादि (चैत्रसुदि १ से प्रारंभ होनेवाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक सुदि १ से प्रारंभ होनेवाला) चलता था, जैसा कि वहाँ से मिलने वाले शिलालेखो, दानपत्रो, और पुस्तको से पाया जाता है[1]। चैत्रादि वि० स० १२७२ ज्येष्ठ वदि ६ को शुक्रवार था और कार्तिकादि वि० संवत् के अनुसार अर्थात् चैत्रादि १२७३ मे उक्त तिथि को बुधवार आता है। यह प्रति जयपुर से प्राप्त वि० सं० १६६६ की लिखी हुई प्रति के आधार पर सपादित हुई है। नाहटाजी की वि० सं० १७२४ की लिखी हुई प्रति न० १ मे भी यही संवत् दिया है[2], इसलिये उस पर अलग विचार करने की आवश्यकता नही।

उनकी प्रति संख्या २ मे

सवत् सहस सत्तिहतरइ जाणि ·
सुकल पख पंचम श्रावण मास
रोहिणी नक्षत्र[3] · ·

अर्थात वि० स० १०७७ श्रावण सुदि ५ रोहिणी नक्षत्र दिया है। इसमे वार नही है। चैत्रादि संवत् के अनुसार वि० सं० १०७७ श्रावण सुदि ५ को बुधवार और हस्त नक्षत्र था और कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को सोमवार और हस्त नक्षत्र आता है। यह संवत् भी नक्षत्र की विभिन्नता के कारण ग्राह्य नही हो सकता। प्रति नंबर ८, ११ और १२ में केवल "संवत् सहस तिहुतरइ" अर्थात् वि० स० १०७३ ही दिया है,[4] मास, पक्ष तिथि, वार आदि कुछ नही है; इसलिये उनके संबंध मे जाँच नही हो सकती। प्रति नबर १० मे "सवत् सतर तिहोतरे" अर्थात् वि० स १७७३ दिया है,[5] जिस पर विचार करना निरर्थक है;

---

१ राजपूताना के राज्यो मे कही आषाढसुदि १, कहीं सावणवदि १ और कही भाद्रपद सुदि २ से वर्षारंभ मानते है, परन्तु ये राजकीय हिसाब के लिये है। जनसाधारण मे पंचाग के अनुसार, ब्राह्मणादि मे चैत्रादि और व्यापारी वर्ग मे बहुधा कार्तिकादि संवत् का ही प्रचार अधिकता से पाया जाता है।

२ राजस्थानी (त्रैमासिक पत्रिका), भाग ३, पृ० २०।

३ वही, भाग ३, अक ३, पृ० २०।

४ वही, भाग ३, अंक ३, पृष्ठ २०।

५ वही, भाग ३, पृष्ठ २०।

क्योकि जयपुर की वि० सं० १६७६ फाल्गुन वदि १ की लिखी हुई प्रति मिल गई है।

प्रति नंबर १३ मे—

संवत तेर मतोतरइ जाणी ·· · ·· ···
सुक्ल पचमी नइ श्रावणमास
हस्त नक्षत्र रविवार सुं
सुभ दिन जोमी रे जोड़ियल राम[1]

अर्थात् वि० सं० १३७७ श्रावण सुदी ५ हस्त नक्षत्र रविवार दिया है। चैत्रादि सवत के अनुसार वि० सं० १३७७ श्रावण सुदि ५ को हस्त नक्षत्र और शुक्रवार था तथा कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को चित्रा नक्षत्र और गुरुवार आता है। इस तरह यह संवत् भी अशुद्ध ठहरता है।

इन सब सवतो मे कार्तिकादि संवत् मानकर वार आदि का मिलान करने से छपी हुई पुस्तक और नाहटाजी की प्रति न० १ के सवत्, मास, पक्ष, तिथि और वार आदि ठीक मिल जाते है, शेष के नही। ऐसी दशा मे अब तक मिली हुई उक्त पुस्तक की हस्त-लिखित प्रतियो के आधार पर कार्तिकादि वि० सं० १२७२ (चैत्रादि १२७३) ही उसका रचनाकाल मानना पडता है।

अब हम ग्रंथ की भीतरी बातो पर विचार करेगे। अजमेर और साँभर के चौहानो मे विग्रहराज नाम के, जिनको वीसलदेव भी कहते थे,[2] चार राजा हुए।

---

१ राजस्थानी (त्रै० प०); ३, पृष्ठ २०-२१।

२ आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेछविच्छेदनाभी-
र्देव शाकंभरींद्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपाल ॥ १ ॥
ब्रूते सप्रति चाहमानतिलक शाकंभरीभूपति
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सतानजानात्मन ॥ २ ॥

दिल्ली के फीरोजशाह की लाट पर चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के वि० स० १२२० वैशाख सुदि १५ गुरुवार के लेख मे।

प्रत्येक राजा का औसत राज्य-समय पंद्रह वर्ष[1] मानने से विग्रहराज द्वितीय से दस पीढ़ी पूर्व अर्थात वि० सं ८८० के लगभग हुआ होगा[1]। वीसलदेव द्वितीय (विग्रहराज) वि० सं० १०३० में विद्यमान था, जिसने गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज पर चढ़ाई की थी। विग्रहराज तृतीय का, जो विग्रहराज द्वितीय से आठवी पीढ़ी में हुआ, समय वि० सं० ११५० के लगभग होना चाहिए। वह परमार राजा भोज के भाई उदयादित्य का समकालीन था, जो वि० सं० १११६[2] के आसपास गद्दी पर बैठा था और जिसके समय के वि० सं० ११३७[3] और ११४३[4] के शिला-लेख मिल गए हैं। विग्रहराज तृतीय की सहायता पाकर उदयादित्य ने गुर्जर देश के सोलंकी राजा कर्ण को जीता था। कर्ण के दानपत्र वि० सं० ११३१[5] और ११४८[6] के मिले है। विग्रहराज चतुर्थ ने वि० स० १२१० मे 'हरकेलि नाटक' समाप्त किया था और वि० स० १२२० तक के उसके कई शिलालेख मिल गए हैं।

'वीसलदेव रासो' मे वीसलदेव के पूवजों की कोई वंशावली नही दी है, जिससे यह निर्णय नही होता कि वह उक्त चारो वीसलदेवो मे से किससे संबंध रखता है। 'वीसलदेव रासो, मे कवि ने मुख्यतया दो घटनाओं का वर्णन किया है—एक तो वीसलदेव के राजा भोज की पुत्री से विवाह होने की और दूसरी उस (वीसलदेव) के उडीसा जाने की। जहाँ तक पहली घटना का संबध है, बीज रूप मे उसमे सत्य का अश अवश्य है, परंतु शेष कथा कल्पित ही प्रतीत होती है, जैसा हम आगे चलकर बतलाएँगे।

---

१ विग्रहराज द्वितीय वि० स० १०३० और विग्रहराज चतुर्थ वि०स० १२१० मे विद्यमान थे। इन दोनों के बीच १८० वर्षों में बारह पीढियाँ हुई। हिसाब करने से प्रत्येक राजा का औसत राज्य-काल पद्रह वर्ष आता है, जो हमने ऊपर माना है।

२ बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० ६, पृ० ५४६।

३ इंडियन एंटिक्वेरी, जि० २०, पृ० ८३।

४ यह लेख झालरापाटन म्यूजियम मे सुरक्षित है। बगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० १०, पृ० २४१।

५ जर्नल आव दि बाबे ब्राच आव् रायल एशियाटिक सोसाइटी, जि० २६, पृ० २५७।

६ एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १, पृ० ३१७-१८।

'वीसलदेव रासो' में लिखा है कि वीसलदेव की रानी राजमती परमार राजा भोज की पुत्री थी। परमार राजा भोज उदयादित्य का बड़ा भाई था और उस (भोज) ने चौहान राजा वाक्पतिराज (द्वितीय) के छोटे भाई वीर्यराम को युद्ध मे मारा था, जिससे संभव है मालवा के परमारों और सांभर के चौहानो मे अनबन हो गई हो। राजपूतो मे ऐसी अनबन पुत्री विवाहने से मिटती थी, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास मे मिलते है। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के बीजोल्यां के शिलालेख में दी हुई चौहानो की वंशावली में विग्रहराज (तृतीय) की रानी का नाम राजदेवी दिया है[1]। 'वीसलदेव रासो' की राजमती और यह राजदेवी नाम एक ही रानी के सूचक होने चाहिएँ। परमार राजा भोज के अंतिम समय उसके राज्य पर बड़ी आपत्ति आई और गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (प्रथम) तथा चेदि के राजा कर्ण ने उस पर चढाई की। इस चढाई के समय ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके पीछे उसका पुत्र जयसिंह परमार राज्य का स्वामी हुआ, जिसके समय का वि० सं० १११२[2] का एक दानपत्र और १११६[3] का एक शिलालेख पाणाहेड़ा (बाँसवाड़ा राज्य) से मिला है। उसका उत्तराधिकारी उसका चाचा उदयादित्य हुआ, जिसने अपने राज्य की स्थिति दृढ की। उसने चौहानों के साथ का अपना वैर मिटाने के लिये अपनी भतीजी (भोज की पुत्री) राजदेवी अथवा राजमती का विवाह वीसलदेव तृतीय से किया हो, जिससे पीछे से गुजरातवालो के साथ की लड़ाई में उसे उस (वीसलदेव तृतीय) की सहायता प्राप्त हुई हो। इससे तो यही अनुमान दृढ़ होता है कि 'वीसलदेव रासो' का नायक चौहान राजा वीसलदेव तृतीय है, न कि चतुर्थ, जैसा प्रकाशित पुस्तक के संपादक ने मान लिया है एवं कुछ अन्य विद्वान् भी मानते है।

---

१ चामुंडोऽवनिपेति गणकवर श्रीसिंघटा दूसल-
स्तद्भ्राताथ ततोपि वीसलनृप श्रीराजदेविप्रिय ॥ १४ ॥
बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० ५५, भाग १ (सन् १८८६), पृ० ४१।

२ एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ३, पृ० ४८।

३ राजपूताना म्यूज़ियम अजमेर की रिपोर्ट; ई० स० १९१६–१७, पृ० २।

'वीसलदेव रासो' का रचनाकाल वि० सं० १२१२ मानकर उसके नायक को वीसलदेव चतुर्थ और उसके रचयिता नरपति नाल्ह को उसका समकालीन कवि मानना भ्रमपूर्ण कल्पना ही प्रतीत होती है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। 'वीसलदेव रासो' का रचना-काल कार्तिकादि वि० सं० १२७२ (चैत्रादि १२७३) होना चाहिए, न कि १२१२ और उसका नायक वीसलदेव तृतीय, न कि वीसलदेव चतुर्थ। नरपति को भोज की पुत्री से वीसलदेव का विवाह होने की बात ज्ञात थी। उसी के आधार पर उसने उक्त घटना से लगभग १५० से भी अधिक वर्षों बाद अपने काव्य की रचना की। यह विवाह कब हुआ, इसका ठीक ठीक पता उसे न था, पर वधू के भोज की पुत्री होने से उसने उसके समय में ही विवाह होना लिख दिया। अपने काव्य को लोकप्रिय और रोचक बनाने तथा नायक की महत्त्व-वृद्धि के निमित्त काव्य में वर्णित अन्य घटनाओं में उसने कल्पना का आश्रय लिया। विवाह के समय भोज का आलीसर, कुंडाल, मडोवर, सौराष्ट्र, गुजरात, साँभर, टोड़ा, टोंक, चित्तौड़ आदि देश वीसलदेश को देना कोरी कवि कल्पना ही है। जैसलमेर, अजमेर, आनासागर आदि उक्त काव्य की रचना के समय अर्थात् चैत्रादि वि० सं० १२७३ में विद्यमान थे। कवि ने उनके नाम भी उसमें समाविष्ट कर दिए। अनेक नामों की भरमार के ऐसे उदाहरण प्राचीन काव्यों में स्थल-स्थल पर मिलते हैं। उड़ीसा जाने की कथा भी कल्पित ही ठहरती है, क्योंकि चारों वीसलदेवों में से किसी के भी उड़ीसा विजय करने का प्रमाण नहीं मिलता। वीसलदेव का अपने भतीजे को अपना उत्तराधिकारी नियत करने की घटना भी कल्पना-मात्र ही है।

कवि ने अपने काव्य में सब जगह वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है, इससे भी कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वह वीसलदेव का समकालीन था; परंतु यह कोई जरूरी बात नहीं कि वर्तमान-कालिक क्रिया का प्रयोग करनेवाला कवि समकालीन ही हो। काव्य में वर्णित घटनाओं को सत्य रूप देने के लिये बहुधा कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है। नरपति वीसलदेव का समकालीन नहीं, बल्कि, उससे १५० से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था।

श्रीयुत नाहटाजी ने 'वीसलदेव रासो' की भाषा के विषय में संदेह प्रकट करते हुए उसे सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा माना है। यद्यपि

पीछे से मूल रासो में बहुत-कुछ हेर-फेर हुआ है, फिर उसमे प्राचीनता के चिह्न वर्तमान है, जिससे यह स्पष्ट है कि वह वि० सं० १२००-१३०० के आसपास ही रचा गया होगा। नीचे हम उसी समय की भाषा के कुछ उदाहरण देते हैं, जिसके साथ 'वीसलदेव रासो' की भाषा का मिलान करने पर इस विषय मे संदेह को स्थान न रहेगा।

(१) पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चंपिज्जइ अवरेण ॥
(२) जैवडु अंतरु रावण रामहँ तेवडु अंतरु पट्टण गामहँ।
(३) जा मति पच्छइ संपज्जइ सा मति पहिली होइ ॥
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ॥
(४) जइ यह रावणु जाईयउ दहमुह इक्कु सरीरु।
जणणि वियंभी चिंतवइ कवणु पियावउ खीरु ॥
(५) राणा सव्वे वाणिया जैसलु वड्डउ सेठि।
काहूँ वणिजडु मांडीयउ अम्मीणा गढ हेठि ॥
(६) वाढी तो वढवाण वीसारता न वीसरइ।
सोना समा पराण भीगावह पइं भोगवइ ॥
(७) नवजल भरीया मग्गड़ा गयणि धडक्कई मेहु ॥
इत्थंतरि जरि आविसिइ तऊ जाणीसिइ नेहु ॥

इनमे से सं० १ और २ के उदाहरण अनेक विषयो के प्रकांड विद्वान् प्रसिद्ध हेमचंद्राचार्य-रचित अपभ्रंश भाषा के व्याकरण से लिए गए हैं, जो वि० सं० १२०० के आसपास बना था और सं० ३, ४, ५, ६ और ७ के उदाहरण 'प्रबंधचिंतामणि' से है, जो जैन आचार्य मेरु-तुंग ने वि० सं० १३६१ में वढवान मे बनाई थी। इन पुस्तकों में ये उदाहरण के रूप में दिए गए हैं, अतएव निश्चित है कि ये इनके निर्माणकाल से पूर्व की रचनाओं से लिए गए हैं।

भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैनों के धर्मग्रंथ (सूत्र) प्राकृत (अर्द्धमागधी) भाषा मे होने के कारण जैन लेखक अपने भाषा-काव्यों मे प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे है, जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गई है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ

प्रचलित भाषा मे करते थे, जिससे इन दोनो प्रकार के लेखको की पुस्तको की भाषा मे अंतर होना स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटी सदियाँ नही है। एक ही समय मे कोई सरल भाषा मे अपनी रचना करता है, तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है।

'बीसलदेवरासो' के कर्त्ता ने उसकी रचना का समय आरंभ मे दिया है, इससे श्रीयुत नाहटाजी ने यह अनुमान किया है कि उसने मुसलमानी प्रथा का अनुसरण किया है; क्योंकि उनके मतानुसार यह प्रथा मुसलमानो के समय से ही प्रारंभ हुई और उसके पहले कवि अथवा लेखक ग्रथ-रचना का समय अंत में दिया करते थे; परंतु यह केवल अनुमान ही है। रचना का समय ग्रथ के किसी अंश मे देने की पहले कोई प्रथा हो, ऐसा पाया नही जाता। यह तो रचयिता की रुचि का प्रश्न था। जहाँ पहले के अनेक ग्रथो मे रचना का समय अत मे मिलता है, वहाँ कई मे प्रारम्भ मे भी पाया जाता है और कितने ही ग्रथो मे तो रचना का समय ही नही दिया है। जैन कवि मानरचित 'राजविलास' नामक ग्रंथ मे भी उसकी रचना का समय आरम्भ मे ही स्तुतियो के बाद दिया है, पर इससे यह कहना अनुचित है कि उसने मुसलमानी प्रथा का अनुसरण किया था। ऐसे उदाहरण और भी मिल सकते है।

इन सब बातो पर विचार करने से हमारा मत तो यही है कि 'बीसलदेव रासो' मूल रूप मे कार्तिकादि वि० स० १२७२ (चैत्रादि १२७३) की ही रचना होनी चाहिये और उसका आधार वीसलदेव तृतीय के साथ भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती के विवाह की घटना है। नरपति न तो इतिहासज्ञ था और न कोई बडा कवि ही। उसने अपनी रचना लोक-रंजनार्थ बनाई थी। इसलिये उसमे ऐतिहासिकता और काव्य के गुणो की तलाश करना तथा उनके आधार पर उसके बारे मे कोई मत स्थिर करना असंगत है।

ना० प्र० प०(त्रै० न०)काशी, भाग १, वि० सं० १९९७, ई० स० १९४०-४१।

सम्पादकीय टिप्पण

विग्रहराज प्रथम का समय वि० सं० ८८० के लगभग मानना उपयुक्त प्रतीत नही होता; क्योंकि इस संवत् के लगभग गोविंदराज प्रथम (गूवक), जो प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय का समकालीन था, शासन कर रहा था और वह विग्रहराज प्रथम से चार पीढ़ी पीछे हुआ था।

५ कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड पर चढाई के समय काम आनेवाले वीर गोरा बादल की कथा राजपूताने आदि मे घर-घर प्रसिद्ध है। प्रत्येक जगह उक्त वीरो की वीर-गाथा बड़े ही प्रेम से सुनी जाती है। गत सितम्बर मास मे मेरा दौरा बीकानेर राज्य के इतिहास-प्रसिद्ध भटनेर (हनुमानगढ) नामक दुर्ग के अवलोकनार्थ हुआ। उस समय बीकानेर मे पुरानी राजस्थानी एव हिंदी भाषा के परम प्रेमी ठाकुर रामसिंहजी एम० ए० (डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इंसट्रक्शन; बीकानेर स्टेट) और स्वामी नरोत्तमदास एम० ए० (प्रोफेसर ऑफ हिंदी तथा संस्कृत, डूंगर कॉलेज, बीकानेर) से मिलना हुआ। मुझे यह बात जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि ये दोनो विद्वान् आजकल ढोला-मारू की प्राचीन कथा का संपादन कर रहे है और 'गोरा बादल की बात' नाम पद्यात्मक पुस्तक का भी संपादन करने-वाले हैं। उन्होंने मुझको उपर्युक्त दोनो पुस्तके दिखलाईं, जिनको मैने इस प्रवास मे पढ़ा। पाठको के अवलोकनार्थ आज मै 'गोरा बादल की बात' नामक पुस्तक का आशय यहाँ पर प्रकट कर ऐतिहासिक दृष्टि से उस पर कुछ विवेचना करता हूं।

प्रारभ मे यह बतला देना आवश्यक है कि उक्त काव्य का कथानक मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत से मिलता जुलता है, तो भी कई स्थलो मे उससे भिन्नता भी है। संभव है कि जटमल ने, जो इस ग्रंथ का रचयिता है, जायसी के ग्रथ 'पद्मा-वत' को देखा हो अथवा सुना हो; क्योंकि वह उसकी रचनासे ८३ वर्ष पूर्व बन चुका था। जटमल ने इस ग्रंथ मे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन (रत्नसिंह) और उसकी रानी के संबंध की कथा लिखते हुए गोरा बादल के युद्ध का विशेष रूप से वर्णन

विशद वर्णन नहीं मिलता। उसकी कथा का सारांश निम्नलिखित है—

जंबूद्वीप के अंतर्गत भरतखंड मे चित्तौड़गढ़ नाम का एक बडा नगर है, जहाँ का राजा रत्नसेन शूर-वीरो का प्रेमी था और उसकी सेवा मे बहुत से राजपूत रहते थे। यह चौहान राजा चतुर और दानी था, जिससे उसके यहाँ दूर-दूर से याचक लोग आया करते थे। एक दिन उक्त राजा के पास याचक (भाट) आए और उन्होने उसकी प्रशंसा के विरुद सुनाए। तब राजा ने पूछा कि तुम कहाँ से आए हो। उन्होने उत्तर दिया तुम्हारी कीर्ति सुनकर हम सिंहलद्वीप से आए है। राजा ने उनका सम्मान कर पूछा कि सिंहलद्वीप कैसा है। वहाँ क्या-क्या वस्तु पैदा होती है ? उन याचक भाटो ने कहा कि समुद्र के पार वह अद्भुत नगर है, जहाँ ऐरावत हाथी और पद्मिनी स्त्रियाँ होती है।

राजा के पद्मिनी के गुण पूछने पर भाटो ने स्त्रियो मे चित्रिणी, हस्तिनी, शङ्खिनी और पद्मिनी चार जाति होना कह, पद्मिनी के लक्षण, रूप, रग का वर्णन किया, जिससे राजा पद्मिनी पर आसक्त हो गया। इतने मे एक दिन वहाँ एक योगी आया और उसने राजद्वार पर धूनी लगा दी। राजा ने उसे बडा सिद्ध देख भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की, जिससे योगी ने राजा को मनोवाछित वर माँगने को कहा। इस पर उसने कहा कि मेरा विवाह पद्मिनी स्त्री के साथ करा दीजिए। फिर योगी ने राजा को कहा कि सिंहलद्वीप मे पद्मावती (पद्मिनी) है, वहाँ यदि तुमको चलना है तो राज-पाट तजकर चलो। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तदनंतर योगी ने मृग-चर्म पर बैठ कर मन्त्र पढा, जिसके प्रभाव से रत्नसेन तथा वह योगी उडकर सिंहलद्वीप पहुँचे। योगी ने राजा को कहा कि तुम साधु का भेष कर लो और भिक्षा माँगने जाओ। फिर राजा साधु का भेष बना कर राजद्वार पर गया और राजकन्या पद्मावती को देख मूर्च्छित हो गया। राजकन्या ने अपनी दासी के द्वारा मूर्च्छित राजा पर पानी छिडकवाया और बत्तीस लक्षणो से युक्त उसका अनुपम रूप देख मोतियो को तोडकर मोतियो से उसे भिक्षा कराई। फिर वह सिद्ध योगी राजा के महलो मे गया और उसने राजा से कहा कि तुम्हारी पुत्री पद्मिनी विवाह योग्य हुई है; इसलिये मै उसके लिये वर लाया हूँ। रत्नसेन उसका नाम है और वह चित्तौडगढ का स्वामी है, उनके साथ पद्मावती का विवाह कर दो। योगी के वचन सुनकर राजा ने पद्मावती का विवाह

रत्नसेन के साथ कर दिया और दहेज मे बहुत से रत्न, सुवर्ण, मोती तथा वस्त्र आदि दिए। फिर रत्नसेन ने पद्मावती सहित चित्तौड जाने के लिये सिंहलद्वीप के राजा से सीख माँगी। उसने राघवचेतन नामक ब्राह्मण को भी साथ देकर रत्नसेन तथा पद्मावती को विदा किया। रत्नसेन, पद्मावती, योगी और राघव चेतन उडनखटोले (विमान) मे बैठकर चित्तौड पहुंचे। राजा अन्य सब रानियों को छोडकर पद्मावती पर ऐसा मोहित हो गया कि वह उसको देखे बिना जल भी नही पीता था। एक दिन वह दो घडी रात्रि रहे, शिकार को चला। उस समय राघवचेतन को उसने अपने साथ लिया। शिकार के समय जगल मे राजा को प्यास लगी। पर उसका यह नियम था कि पद्मावती को देखे बिना वह जल नही पीता था, इसलिये राघवचेतन ने एक पुतली बनाई जो सब भाँति से पद्मावती के तुल्य थी; यहाँ तक कि पद्मावती के जंघा पर का तिल भी पुतली की जघा पर विद्यमान था। उस तिल को देखकर राजा को राघव के विषय मे संदेह उत्पन्न हुआ। निदान उसने चित्तौड लौट आने पर उसको वहाँ से निकाल दिया। तब वह साधु का भेष धारण कर दिल्ली पहुंचा, जहाँ अल्लावदी (अलाउद्दीन) बादशाह राज्य करता था। एक दिन बादशाह शिकार खेलने को चला, उस समय राघवचेतन ने अपना वाद्य बजाया, जिसकी ध्वनि सुन वन के सब जानवर उसके पास चले गए और शाह को कोई जानवर नहीं मिला। अलाउद्दीन भी उस वाद्य की ध्वनि सुन वहाँ पहुंचा और वहाँ का चरित्र देख उसे आश्चर्य हुआ। फिर वह घोड़े से उतरकर राघव के पास गया और उसके राग से प्रसन्न हो गया। उसने उसको अपने यहाँ चलने को कहा। पहले तो राघवचेतन ने जाना स्वीकार न किया, परतु अत मे बादशाह का आग्रह देख वह उसके साथ हो गया। उसकी गानविद्या की निपुणता से बादशाह का प्रतिदिन उस पर स्नेह बढने लगा।

एक दिन बादशाह के पास कोई व्यक्ति खरगोश लाया। उसके कोमल अंग पर हाथ फेरते हुए बादशाह ने राघव से पूछा कि इससे भी कोमल कोई वस्तु है? उसने उत्तर दिया कि इससे हजार गुनी कोमल पद्मिनी है। शाह ने उससे पूछा कि स्त्रियाँ कितनी जाति की होती है। राघव ने स्त्रियो की चार जातियो के नाम चित्रिणी, हस्तिनी, शखिनी और पद्मिनी बतलाए, और उनके लक्षणो का वर्णन करते हुए सबसे पहले पद्मिनी जाति की स्त्री की बढावे के साथ प्रशंसा की, जैसे कि

उसके शरीर के पसीने से कस्तूरी की सी वास फैलना, मुख से कमल की सी सुगंध का निकलना और भौरो का उसके चारो ओर मँडराना आदि। तत्पश्चात् चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी जाति की स्त्रियो का वर्णन करते हुए शंखिनी की बुराइयाँ बतलाने मे उसने कसर नही रखी। फिर शश, मृग, वृषभ और तुरंग जाति के पुरुषो के लक्षण बताते हुए शश जाति का पुरुष पद्मिनी के, मृग जाति चित्रिणी के, वृषभ जाति का हस्तिनी के और तुरंग जाति का पुरुष शखिनी के लिये उपयुक्त बतलाया। बादशाह ने राघव की बात सुन कर कहा कि हमारे अंतःपुर मे दो हजार स्त्रियाँ है। उनको महल मे जाकर देखो। उसने उनको प्रत्यक्ष देखना अस्वीकार कर तेल के कुंड मे उन सुंदरियो के प्रतिबिम्ब देखकर कहा कि इनमे चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी जाति की स्त्रियाँ तो बहुत है, पर पद्मिनी जाति की एक भी नही है। इस पर सुलतान ने कहा कि जहाँ कही हो वहाँ ले जाकर मुझे पद्मिनी जाति की स्त्री शीघ्र दिखलाओ। उसके लिये जो मांगो वह मै तुम्हे दूँगा। उसने कहा कि पद्मिनी समुद्र के परे सिहलद्वीप मे रहती है। समुद्र को देखकर कायरों के हृदय कपित होते है। राघव का यह कथन सुनकर सुलतान ने पद्मिनी के लिये प्रस्थान कर समुद्र के किनारे पड़ाव डाला और पद्मिनी को देखने के लिये हठ किया। तब राघव ने सुलतान से कहा कि पद्मिनी समीप मे तो रत्नसेन चहुवान के पास है। यह सुनकर शाह ने बडी भारी सेना के साथ रत्नसेन पर चढ़ाई कर दी और वह चित्तौड़ के समीप आ ठहरा। वह १२ वर्ष तक किले को घेरे रहा, परंतु रत्नसेन ने उसकी एक न मानी। तब उस (सुलतान) ने राघव से पूछा कि अब क्या करें। चित्तौड़गढ़ बड़ा बाँका है, वह बलपूर्वक नही लिया जा सकता। राघव ने सुलतान से कहा कि अब तो कपट करना चाहिए; डेरे उठाकर लौटने का बहाना करना चाहिए, जिससे राजा को विश्वास हो जाय। फिर सुलतान ने अपने खवास को भेजकर रत्नसेन से कहलाया कि "मैं तो अब लौटता हूँ। मुझे एक प्रहर के लिये ही चित्तौड़ का किला दिखला दो और मेरे इस वचन को मानो तो मै तुम्हे सातहजारी (मंसबदार) बना दूँ; पद्मिनी को बहिन और तुम्हे भाई बनाऊँ तथा बहुत से नए इलाक़े भी तुम्हे दूँ।"

राजा ने जब देखा कि सुलतान डेरे उठा रहा है, तब उसको गढ़ पर बुलाया। वह (बादशाह) अपने साथ दस-बीस बहादुरों को लेकर कपट-पूर्वक वहाँ

भाई हो गए हो, मुझे पद्मिनी दिखलाओ ताकि मैं घर लौट जाऊँ। रत्नसेन चहुवान ने पद्मिनी को कहा कि सुलतान ने तुमको बहिन बनाया है सो तुम उसको अपना मुँह दिखला दो। इस पर उसने अपनी एक अत्यत सुंदरी दासी को अपने वस्त्राभरण पहिना कर बादशाह के पास भेजा, जिसे देखकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। राघव ने शाह से कहा कि हे सुलतान यह पद्मिनी नहीं है, ऐसा कहकर उसने पद्मिनी के रूप, गंध आदि की प्रशंसा की। इस पर शाह ने राजा का हाथ पकड़कर कहा कि तुमने मुझ से कपट कर अन्य स्त्री दिखलाई है। पद्मिनी से कहो कि वह मुझे अपना मुँह दिखलावे। तब पद्मिनी ने खिड़की से अपना मुँह बाहर निकाला, जिसे देखते ही शाह ने गिरते-गिरते एक स्तभ को पकड लिया। फिर उसने कहा—भाई रत्नसेन क्षण भर के लिये आप मेरे डेरे पर चलो, ताकि मैं भी आपका सम्मान करूँ। सुलतान वहाँ से लौटकर रत्नसेन के साथ पहले दरवाज़े पर पहुंचा, उस समय उस (सुलतान) ने उसको लाख रुपए दिए। दूसरे दरवाज़े पर पहुंचने पर उसने उसको दस क़िले देकर लालच मे डाला। फिर इस प्रकार वह राजा को लुभाकर उसे किले से बाहर ले गया और उसे कपटपूर्वक पकड़ लिया, जिससे गढ़ मे आतंक छा गया। बादशाह राजा को नित्य पिटवाता, चाबुक लगवाता और कहता कि पद्मिनी को देने पर ही तुझे आराम मिलेगा। चित्तौड के निवासियों को दिखलाने के लिये राजा को दुर्ग के सामने लाकर लटकवाता, जिससे वहाँ के निवासी दुखी हो गए। अंत मे मार खाते हुए राजा ने कायर होकर पद्मावती देना स्वीकार किया और रानी को लेने के लिये खवास भेजकर कहलाया कि मेरे जीवन की आशा करती हो तो एक क्षण भी विलंब मत करो। रानी ने राजा से कहलाया कि प्राण चले जायँ तो भी अपनी स्त्री दूसरे को नहीं देनी चाहिए। मृत्यु से कोई नही बच सकता, इसलिये प्राण देकर संसार मे यश लेना चाहिए, मुझको देने मे आप कलंकित होगे और मेरा सतीत्व नष्ट होगा। फिर रानी पद्मावती पान का बीड़ा लेकर बादल के पास गई और कहा कि अब मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं दीखता, केवल तुझमे ही आशा है। उसने उसको कहा कि आप गोरा के पास जायँ, मै बीडा सिर पर चढ़ाता हूँ, निश्चिंत रहे। फिर वह तुरन्त ही गोरा के पास गई और पति को विपत्ति से छुड़ाने के विचार से कहा कि मन्त्रियो ने मुझे बादशाह के पास जाने की सलाह

दी है। इस स्थिति मे जैसा तुम्हारी समझ मे आवे वैसा करो, जिससे राजा छूटे। गोरा ने बीडा उठाकर कहा कि अब आप घर जायँ। फिर गोरा और बादल परस्पर विचार करने लगे कि बादशाह की अपार सेना मे किस प्रकार युद्ध किया जाय। बादल ने कहा कि पाँच सौ डोलियो में दो-दो योद्धा बैठे और चार-चार योद्धा प्रत्येक डोली को उठावे। उन (डोलियों) के भीतर सब भाँति के शस्त्र रख सिंगारे हुए कोतल घोड़े आगे कर उनको बादशाह के पास ले जा कहे कि हम पद्मिनी को लाए हैं, पर कोई तुर्क उसको देखने के लिये आने की इच्छा न करे। अनंतर योद्धा लोग डोलियों को छोड़ शस्त्र धारण करें, रण मे पीठ न दिखाकर राजा के बन्धन काटे और शाह का सिर उडावे। बादल के इस कथन को सभी ने स्वीकार किया। डोलियाँ सुसज्जित हो जाने पर मखमल आदि के कीमती पर्दे उन पर लगाए गए, फिर उनमे सशस्त्र वीरो को बिठला राजपूत वीर ही उन्हें अपने कंधो पर उठा कर ले चले। एक वकील को बादशाह के पास भेज कर कहलाया कि रत्नसेन आज तुम्हे पद्मिनी सौपता है। सुलतान यह बात सुन बडा ही प्रसन्न हुआ, उसने बादल को कहलाया कि पद्मिनी शीघ्र ही लाई जाय। सुलतान के ये वचन सुनकर बादल डोलियो के समीप आया और अपने वीरो को कहने लगा कि ज्योंही मै कहूँ. त्योंही भाला हाथ मे लेकर शत्रुओ पर टूट पड़ना। भाला टूट जाने पर गुरज और गुरज के टूट जाने पर कटार का वार करना।

जब अल्पवयस्क बादल लडने को चला तो उसकी माता ने आकर कहा कि हे पुत्र! तूने यह क्या किया। तू ही मेरा जीवन है, तेरे बिना ससार मेरे लिये अंधकार है और सब कुछ सूना तथा नीरस है। तेरे बिना मुझको नहीं सूझता। मेरे गात्र टूटते है, छाती फटती है, जहाँ कठोर तीर बरसते हैं वहाँ तू आगे बढ़कर शाह की सेना से कैसे लड़ेगा? बादल ने अपनी माता को कहा—"हे माता! तू मुझे बालक क्यो कहती है? बादशाह के सिर पर तलवार का प्रहार करूँ तो मुझे शाबाश कहना। सिंह, बाज-पक्षी और वीर पुरुष कभी छोटे नहीं कहलाते। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं आगे बढ़कर खूब युद्ध करूँगा। स्वामी के लिये अनेक योद्धाओं को मारूँगा, हाथियों को गिराकर, बख्तरों को तोड, तलवार चलाता हुआ बादशाह को मारूँगा। यदि मर गया तो जगत् मे मेरा यश होगा और युद्धस्थल से मुँह मोड़कर मैं तुझे कभी न लजाऊँगा।" बादल की माता

उसकी प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर 'तेरी जय हो' यह आशीष देती हुई लौट गई। फिर उस (माता) ने बादल की स्त्री के पास जाकर कहा कि तेरा पति मेरे समझाए तो समझता नही, अब तू जाकर उसको रोक। उसकी नवोढ़ा स्त्री ने उससे कहा कि हे पति ! अभी तो आपने शय्या का सुख भी नही भोगा। जहाँ साँगो के प्रहार होते है, निरंतर तोपो से गोले चलते है और सिर टूट-टूटकर धड़ों पर गिरते है, ऐसे युद्ध मे आपको नही जाना चाहिए। बादल ने उत्तर दिया कि यदि युद्ध मे मृत्यु हुई तो श्रेष्ठ कहलावेगे और जीते रहे तो राज्य का सुख भोगेंगे। हे स्त्री ! दोनों प्रकार से लाभ ही है। यदि सुमेरु पहाड चलायमान हो, समुद्र मर्यादा छोड़ दे, अर्जुन का बाण निष्फल जाय, विधाता के लेख मिट जायँ, तभी होनहार टल सकती है। मै रण से कभी विमुख न होऊँ। फिर उसने अपना जूडा (मस्तक के बाल) काटकर अपनी स्त्री को इस अभिप्राय से दिया कि उसके युद्ध मे काम आने पर वह इस जूड़े के साथ सती हो जाय।

गढ़ से डोलियाँ नीचे लाई गई। उन पर मृगमिश्रित अरगजा छिड़का हुआ था, जिससे चारों ओर भौरे मँडराते थे। असली भेद बादशाह को मालूम नही हुआ। गौरा और बादल दोनो घोड़े पर सवार हुए। बादशाह के पास पहुँच उन्होने सलाम किया और अर्ज की कि पद्मिनी के आने की खबर सुनकर आपके अमीर उसको देखने की इच्छा से दौडने लगे हैं, जो आपके एवं हमारे लिये लज्जा की बात है। इस पर बादशाह ने आज्ञा दी कि कोई उठकर पद्मिनी को देखने की चेष्टा करेगा तो वह मारा जायगा। तदनंतर उन्होने शाह से कहा कि रत्नसेन को हुक्म हो जाय कि वह पद्मिनी से मिलकर उसे आपके सुपुर्द कर दे। सुलतान ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

फिर रत्नसेन जहाँ पर कैद था, वहाँ जाकर बादल ने अपने मस्तक को उसके चरणो पर रख दिया। उस पर राजा ने क्रोधित हो उससे कहा कि तूने बुरा काम किया कि पद्मावती को ले आया। इस पर बादल ने कहा कि पद्मावती को यहाँ नही लाये हैं। डोलियों को भीतर ले जाकर लुहार से राजा की बेडियाँ कटवाई। तबल के बजते ही सुभट डोलियो से निकल आए। रण-वाद्य बजने लगे। जिसमे शूर वीरो का चित्त उत्साहित होने लगा। शाही सेना मे कोलाहल मच गया। बात और की और हो गई। पद्मिनी अपनी ही ठौर रह गई और युद्ध

के लिये राजपूत आ डटे। अफीम का सेवन किए हुए तीन सहस्र क्षत्रिय वीर मरने-मारने को उद्यत हो गए। बादशाह भी अपनी सेना को सज्जित कर हाथी पर सवार हो गया। युद्ध आरंभ हुआ। गोरा और बादल वीरता दिखलाकर शत्रुओं के सिर उड़ाने लगे। तलवार, तीर, भाले आदि शस्त्रो की वर्षा होने लगी और एक शाही अमीर के हाथ से गोरा मारा गया। बादल ने बहुत से शत्रुओं का संहार किया और राजा को बधन से मुक्त कर घोड़े पर बिठला चित्तौड़ को भेज दिया। लोहू की नदियाँ बहने लगी, दोनो ओर के अनेक वीर मारे गए, अन्त मे बादल विजयी होकर लौटा। पद्मिनी ने आकर बादल की आरती की और मोतियो का थाल भरकर उसके मस्तक पर वारा। उस (पद्मिनी) ने उसको चिरजीव होने की आशीष दी। वह गोरा बादल की वीरता की प्रशसा करने लगी। बादल की स्त्री उसको बधाई देकर शाह के हाथी के दाँतो पर घोड़े के पाँव टिकाने तथा शाह पर तलवार चलाने की प्रशसा कर उसके उत्साह को बढाने लगी। बादल की चाची (गोरा की स्त्री) बादल से आकर पूछने लगी कि मेरा पति युद्ध मे लडता हुआ मारा गया, या भागता हुआ? उसके उत्तर मे बादल के मुख मे गोरा की वीरता का वर्णन सुन गोरा की स्त्री अपने पति की पगड़ी के साथ सती हो गई।

उपर्युक्त अवतरण से पाठको को इस कथा का सारांश ज्ञात होगा। जायसी और जटमल के लेखो मे जो अंतर है, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है—

मलिक मुहम्मद हीरामन तोते के द्वारा पद्मिनी का रूप सुनकर उस पर मोहित होना बतलाता है और जटमल भाटो द्वारा पद्मिनी का परिचय कराता है।

जायसी कहता है कि पद्मिनी पर आसक्त बना हुआ राजा, योगी बनकर सिंहल को चला, अनेक राजकुमार भी चेले होकर उसके साथ हो गए और तोते को भी अपने साथ ले लिया। विविध सकट सहता हुआ प्रेम-मुग्ध राजा सिंहल मे पहुंचा। इस विषय मे जटमल का यह कथन है कि योगी ने मृगचर्म पर बैठकर मन्त्र पढ़ा, जिसके प्रभाव से रत्नसेन तथा योगी सिंहल मे पहुंचे।

जायसी तोते के द्वारा पद्मिनी का रत्नसेन मे परिचय होना और वसत पचमी के दिन विश्वेश्वर के मंदिर मे रत्नसेन तथा पद्मिनी के परस्पर साक्षात् होने पर उसका मोहित हो जाना और अनेक प्रकार से आपत्तियाँ उठाने के बाद शिव की

आज्ञा से सिंहल के राजा का रत्नसेन के साथ पद्मिनी के विवाह होने का वर्णन करता है; तो जटमल कहता है कि जब रत्नसेन सिंहल में पहुँच गया, तब उस योगी ने वहाँ के राजा को रत्नसेन का परिचय देकर पद्मिनी के लिये उसे योग्य वर बतलाया, जिससे सिंहल के राजा ने उसका विवाह उसके साथ कर दिया।

जायसी बतलाता है कि रत्नसेन सिंहल मे कुछ काल तक रह गया। इस बीच मे उसकी पहले की रानी नागमती ने विरह के दुःख मे दुःखित होकर एक पक्षी के द्वारा उसके पास संदेश पहुँचाया, तब रत्नसिंह को चित्तौड का स्मरण हुआ, फिर वहाँ से विदा हो कर अपनी नई रानी (पद्मिनी) सहित चला। मार्ग मे समुद्र के भयंकर तूफान आदि आपत्तियाँ उठाता हुआ बड़ी कठिनता से अपनी राजधानी को लौटा; तो जटमल का कहना है कि राजा, पद्मावती और योगी आदि उड़नखटोले (विमान) मे बैठकर चित्तौड़ को पहुँचे।

जायसी राघवचेतन नामक ब्राह्मण का (जो जादू-टोने मे निपुण था) राजा के पास आ रहना और जादूगरी का भेद खुल जाने पर उसका राजा द्वारा वहाँ से निकाला जाना तथा उसका अलाउद्दीन के पास जाकर पद्मिनी के सौंदर्य की प्रशंसा करना बतलाता है और जटमल राघवचेतन का राजा के साथ. सिंहल से उडनखटोले मे बैठ चित्तौड़ आने का उल्लेख कर कहता है कि राजा पद्मिनी पर इतना अधिक आसक्त हो गया कि उसको देखे बिना जल तक नहीं पीता था। एक दिन वह शिकार को गया, जहाँ प्यास से व्याकुल हो गया; जिस पर राघव ने ठीक पद्मिनी के सदृश पुतली बनाई, यहाँ तक कि पद्मिनी की जंघा पर का तिल भी विद्यमान था। उस तिल को देखकर राजा को उस पर संदेह हुआ और उसको उसने अपने यहाँ से निकाल दिया।

जायसी ने राघवचेतन के दिल्ली जाने और पद्मिनी के रूप की बादशाह से प्रशंसा करने पर बादशाह के उस पर आसक्त होने और रत्नसिंह के पास दूत भेज पद्मिनी दे देने के लिये कहलाने तथा उसके इनकार करने पर चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का उल्लेख किया है। जटमल ने राघवचेतन का साधु बनकर दिल्ली जाना, उसकी गान-विद्या से अलाउद्दीन का उससे प्रसन्न होना, एवं पद्मिनी आदि चारों जाति की स्त्रियों का वर्णन करने पर बादशाह का पद्मिनी जाति की स्त्री पर आसक्त होना और पद्मिनी के लिये चित्तौड पर चढ़ आना बतलाया है।

जायसी का कथन है कि आठ वर्ष तक चित्तौड़ को घेरे रहने पर भी सुलतान उसको फतह नही कर सका। ऐसे मे दिल्ली पर शत्रु की पश्चिम की ओर से चढ़ाई होने की खबर पाकर उसने कपट-कौशल से राजा को कहलाया कि हम आपसे मेल कर लौटना चाहते है, पद्मिनी को नही माँगते। इस पर विश्वास कर राजा ने उसको चित्तौड़ के दुर्ग मे बुलवाकर आतिथ्य किया। वहाँ पर शतरंज खेलते समय अपने सामने रखे हुए एक दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिंब देखकर उसकी दशा और की और हो गई। दूसरे दिन राजा के प्रति अत्यंत स्नेह दिखला कर उसके वहाॅ से बिदा होते समय राजा भी उसको पहुँचाने चला। प्रत्येक द्वार पर वह राजा को भेंट देता गया और सातवे दरवाजे से बाहर निकलते ही. गुप्त रीति से तैयार रखी हुई सेना के द्वारा उसे पकड़वा लिया। फिर उसको बन्दी कर दिल्ली ले गया, जहाँ पर वह राजा से कहता कि पद्मिनी के देने पर ही तुम क़ैद से मुक्त हो सकोगे। इस विषय मे जटमल कहता है कि १२ वर्ष तक लडने पर भी सुल्तान क़िलेको फतह नहीं कर सका, तब उसने दिल्ली जाने के बहाने से डेरे उठाना शुरु कर दिया और रत्नसेन से कहलाया कि मै तो अब लौटता हूॅ, मुझे एक प्रहर के लिये ही चित्तौड़ का क़िला दिखला दो और मेरे इस बचन को मानो तो मै तुम्हे सात हजारी मंनसबदार बना दूँ, पद्मिनी को बहिन और तुम्हें भाई बनाऊँ तथा बहुत से नए इलाके भी तुम्हे दूँ। सुलतान के इस प्रस्ताव को राजा ने स्वीकार किया और बादशाह को अपना मिहमान बना क़िले में बुलाया। वहाँ उसने पद्मिनी को देखना चाहा। फिर खिडकी के बाहर निकला हुआ पद्मिनी का मुख देखते ही उसकी पापमय वासना बढ़ गई। उसने राजा को लोभ मे डाल अपना मिहमान बनाने की इच्छा प्रकट कर उसको अपने साथ लिया। प्रत्येक दरवाजे पर पारितोपिक आदि देकर राजा का मन बढाता गया और क़िले के अंतिम दरवाजे मे बाहर जाते ही उसने राजा को पकड़वा लिया।

जायसी लिखता है कि कुंभलनेर के राजा ने पद्मिनी को लुभाकर ले आने के लिये एक वृद्धा दूती को चित्तौड़ मे भेजा। वह तरुणी-भेष धारण कर पद्मिनी के पास पहुंची और युवा अवस्था में पति का वियोग हो जाने से कुंभलनेर के राजा के पास चलने और भोग-विलास मे दिन बिताने की बात कही। यह सुनकर पद्मिनी ने उसे अपने यहाॅ से निकलवा दिया। पति को कैद मे छुड़ाने का

संकल्प कर अपने वीर सामंत गोरा बादल से सम्मति माँगी, उस पर उन्होंने जिस भाँति सुलतान ने छल किया, उसी प्रकार उससे छल कर राजा को क़ैद से छुड़ाने की सलाह दी। फिर उन्होंने सोलह सौ डोलियों में पद्मिनी की सहेलियों के नाम से वीर राजपूतों को बिठलाया। अब वे पद्मिनी के स्थान पर लोहार को बैठाकर चित्तौड़ से दिल्ली को चले। वहाँ उन्होंने पद्मिनी के दिल्ली आने की खबर देकर सुलतान को कहलाया कि एक घड़ी के लिये उसको अपने पति से मिलकर गढ़ की कुंजियाँ सौंपने की आज्ञा दी जाय; फिर वह आपकी सेवा में उपस्थित हो जाय। सुलतान के यह स्वीकार करने पर वे राजा रत्नसेन के पास पहुंचे और अपने साथ के लोहार से उसकी बेड़ी कटवाने के बाद उसे घोड़े पर सवार करा ससैन्य नगर से बाहर निकल गए। इस पर सुलतान की सेना ने पीछा किया और गोरा लड़ता हुआ मारा गया। परन्तु बादल ने राजा सहित चित्तौड़ में प्रवेश किया। यहाँ जटमल का कहना है कि सुलतान राजा को नित्य पिटवाता और कहता कि पद्मिनी को देने पर ही तुम्हारा निस्तार होगा। चित्तौड़ के निवासियों को दिखलाने के लिये वह राजा को दुर्ग के सामने ले जाकर लटकवाता; इससे वहाँ के निवासी अधीर हो गए। अन्त में मार खाते-खाते राजा ने भी दुखी होकर पद्मिनी को दे देना स्वीकार किया। निदान रानी को लेने के लिये खवास को भेजा, जिस पर पद्मिनी ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार किया; किन्तु मंत्रियों ने राजा को बंदीगृह से मुक्त करने की इच्छा से पद्मिनी को सुलतान को सौंपने का विचार कर लिया। तब वह अपने सतीत्व की रक्षार्थ बीड़ा लेकर बादल के पास गई, जिसने उसको गोरा के पास जाकर उसे भी उद्यत करने को कहा, यद्यपि बादल छोटी अवस्था का था, तो भी वह पद्मिनी के सतीत्व की-रक्षार्थ तथा अपने राजा को छुड़ाने के लिये तैयार हो गया। उसकी माता और स्त्री ने बहुत कुछ कहा, किंतु वह अपने संकल्प पर दृढ़ रहा। गोरा और बादल ने पाँच सौ डोलियों में दो-दो सशस्त्र राजपूत बिठलाकर प्रत्येक डोली को चार-चार राजपूतों से उठवाया और सुलतान के शिविर में ले जाकर अलाउद्दीन से कहलाया कि पद्मिनी को ले आए हैं। बादशाह की तरफ से क़ैदखाने में जाकर पद्मिनी को रत्नसिंह से मिल लेने की आज्ञा हो जाने पर सब डोलियाँ वहाँ पहुंचाई गईं, जहाँ रत्नसेन क़ैद था। फिर राजा की बेड़ी काटी जाकर उसे घोड़े पर सवार करा चित्तौड़ को रवाना किया। अनंतर संकेतानुसार राजपूत डोलियों से निकल पड़े। सुलतान को यह भेद मालूम होने

पर वह भी अपनी सेना को ले खड़ा हुआ और युद्ध होने लगा, जिसमें गोरा मारा गया। अंत में बादल विजयी होकर लौटा और गोरा की स्त्री बादल के मुँह से युद्ध के समय के गोरा के वीरोचित कार्यों की कथा सुनकर सती हो गई। यही पर जटमल अपना ग्रंथ समाप्त करता है।

ऊपर की दोनो कथाओं में इतना तो अवश्य ही ऐतिहासिक तत्त्व है कि रत्नसिंह (रत्नसेन) चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी उसकी रानी, गोरा बादल उसके सरदार और अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का सुलतान था, जिसने पद्मिनी के लिये चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी।

जटमल अपने विषय मे लिखता है कि पठान सरदारो के मुखिए नासिरखाँ के बेटे अलीखाँन न्याजी के समय नाहर जाति के धर्मसी के पुत्र जटमल कवि ने सबला नामक गाँव मे रहते हुए संवत् १६८० (ई० स० १६२४) फाल्गुनसुदि १५ को ग्रंथ समाप्तकिया। उसके काव्य की भाषा सरस है और उसमे राजस्थानी डिंगल भाषा के भी बहुत से शब्दो का प्रयोग हुआ है।

ओसवाल महाजनो की जाति मे नाहर एक गोत्र है, अतएव संभव है, कि जटमल जाति का ओसवाल महाजन हो[१]। संबला गाँव कहाँ है, इसका पता

---

१ कलकत्ते के सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू पूर्णचंद्रजी नाहर एम० ए०, बी० एल० I से ज्ञात हुआ कि उनके संग्रह में जटमल का रचा हुआ एक और भी काव्य-ग्रन्थ है, जिसमें जटमल का कुछ विशेष परिचय मिलता है। यह लेख लिखते समय वह ग्रन्थ हमारे पास नही पहुँचा, जिससे जटमल का पूर्ण परिचय नहीं दिया जा सका। नाहरजी के यहाँ से उक्त पुस्तक के आने पर ग्रन्थकर्ता के विषय में कुछ अधिक ज्ञात हो सका तो फिर कभी वह पृथक् रूप से प्रकाशित किया जायगा।

I इसही संबध मे श्री पूर्णचद्रजी नाहर (स्वर्गवासी) ने 'कुऐ मे भांग' शीर्षक एक छोटासा लेख प्रकाशित किया था, जिसका आशय यही है कि श्री ओझाजी को जटमल तथा उसके ग्रन्थ के विषय निर्णय करने में कुछ भ्रम हुआ है। परंतु ग्रन्थ की मूल कथा वही है, जो श्री ओझाजी ने बतलाई है और उससे इस ग्रन्थ की अधिक प्राचीनता और प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। अलाउद्दीन-खिलजी के मुकाबिले मे चित्तौड पर युद्ध करने वाला गुहिलवंशी राजा (रत्नसिंह) था, न कि चौहानवंशी।

अभी तक नही चला, पर इतना तो निश्चित है कि वह (जटमल) मेवाड़ का निवासी नही था। यदि ऐसा होता तो चित्तौड के राजा रत्नसेन को, जो गुहिल-वशी था, कदापि वह चौहानवंशी नही लिखता। वह बारह वर्ष (जायसी ८ वर्ष) तक बादशाह का निरर्थक ही चित्तौड को घेरे रहना बतलाता है, जो निर्मूल है। इस समय तक मंसबदारी की प्रथा भी जारी नही हुई थी। छः महीने तक चित्तौड़ का घेरा रहने के बाद सुलतान अलाउद्दीन ने वह क़िला फतह कर लिया, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और पद्मिनी ने जौहर की अग्नि मे प्राणाहुति दी।

जायसी ने पद्मिनी के पिता को सिंहल (लंका) का राजा चौहान वंशी गन्धर्वसेन (गंध्रवसेन) बतलाया है, किंतु जटमल ने पद्मिनी के पिता के नाम और वंश का परिचय नहीं दिया है। पद्मिनी कहाँ के राजा की पुत्री थी, इसका निश्चय करने पूर्व रत्नसिंह (रत्नसेन) के राजत्वकाल पर भी दृष्टि देना आवश्यक है। इस कथा का चरित्र-नायक रत्नसिंह (रतनसी, रत्नसेन) चित्तौड़ के गुहिलवंशी राजा समरसिंह का पुत्र था। समरसिंह के समय के अब तक आठ शिलालेख मिले है, जिनमे सबसे पहला वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) कार्तिक सुदी १-का है और अंतिम वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघसुदी १० का है, जिससे यह तो स्पष्ट है कि वि० सं० १३५८ के माघसुदि १० तक मेवाड का राजा समरसिह ही था। उसके पुत्र रत्नसिंह का केवल एक ही शिलालेख दरीबा नामक गाँव के देवी के मंदिर मे मिला है, जो विक्रमी सं० १३५६ (ई० स० १३०३) माघसुदी ५ बुधवार का है। इन लेखो से प्रकट है कि वि० सं० १३५८ के माघ-सुदी ११ और वि० स० १३५६ माघसुदी ५ के बीच किसी समय रत्नसिंह मेवाड का स्वामी हुआ। फारसी इतिहास लेखक मलिकखुसरो, जो चित्तौड की चढ़ाई मे शरीक था, लिखता है कि सोमवार ता० ८ जमादिउस्सानी हि० स० ७०२ वि० स० १३५६ माघसुदी ६ ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को चित्तौड पर चढ़ाई करने के लिये दिल्ली से सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने प्रस्थान किया और सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदी १४ ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को चित्तौड़ का क़िला फतह हुआ। इस हिसाब

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'जायसी-ग्रंथावली' (पद्मावत और अखरावट) के विद्वान् संपादक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका मे सिंहलद्वीप के विषय मे लिखा है कि 'पद्मिनी सिंहल की नहीं हो सकती। यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात मे कोई स्थान हो' यह कथन निर्मूल नहीं है। चित्तौड़ से अनुमान २५ कोस पूर्व सिंगोली नाम का प्राचीन स्थान है, जहाँ प्राचीन खँडहर और क़िले आदि के चिह्न अब तक विद्यमान है। सिंगोली और उसका समीपवर्ती मेवाड़ का पूर्वी प्रांत रत्नसिह के समय चौहानो के अधिकार मे था। जायसी पद्मिनी के पिता को चौहानवंशीय गंध्रवसेन लिखता है, यदि यह ठीक हो तो वह मेवाड़ के पूर्वी भाग सिगोली का स्वामी हो सकता है। सिंगोली और सिंहल के नामों में विशेष अंतर न होने से संभव है कि जायसी और जटमल ने सिंगोली को सिहलद्वीप (लंका) मान लिया हो। सिंहल अर्थात् लंका पर कभी चौहानों का राज्य नही हुआ, इसके अतिरिक्त रत्नसिंह के समय वहाँ का राजा गंध्रवसेन भी नहीं था। उस समय लंका मे राजा कीर्तिनिश्शंक देव (चौथा) या भुवनैकबाहु (तीसरा) होना चाहिए।

नागरी-प्रचारिणी सभा की हिंदी पुस्तको की खोज संबंधी सन् १६०१ ईस्वी की रिपोर्ट के पृ० ४५ मे सख्या ४८ पर बंगाल एशियाटिक सोसाइटी मे जो जटमल रचित 'गोरा बादल की कथा' है उसके विषय मे लिखा है कि यह गद्य और पद्य मे है; किन्तु स्वामी नरोत्तमदासजी द्वारा जो प्रति अवलोकन मे आई वह पद्यमय है। इन दोनों प्रतियो का आशय एक होने पर भी रचना भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई है। रचना-काल भी दोनों पुस्तको का एक है और कर्ता भी दोनो का एक ही है। संभव है, जटमल ने कथा को रोचक बनाने के लिये ही बंगाल एशियाटिक सोसाइटीवाली प्रति में गद्य का प्रयोग किया हो।

ना० प्र० प०, (त्रै०, न० सं०) काशी भाग १३

दूसरा प्रकरण

इतिहास और पुरातत्त्व

भाटों की ख्यातें और महाराणियों के नाम[1]

राजपूताना आदि मे राजाओं, सरदारो तथा अनेक दूसरी जातियो का वंश विवरण लिखने वाले लोग भाट, बड़वे, जागे आदि नामो से प्रसिद्ध है। वे लोग अपने यजमानो के यहाँ समय-समय पर आते जाते, उनके नवजात पुत्र, पुत्रियो तथा नवविवाहितो के नाम आदि अपनी पुस्तको मे दर्ज करते रहते है। ये लोग पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं और जब ये जाते हैं, तब उनकी पुस्तके सुन कर इनको भेंट दी जाती है। रईस लोग घोड़े सिरोपाव नकद आदि देते हैं और अन्य लोग

---

[1]इस लेख से भाटों की ख्यातों और शिलालेखो मे दिये हुए राणियों के नामों की जाँच करने में केवल उदयपुर राज्य के शिलालेखो में मिलने वाले नामो की जाँच कीगई है, जिसका कारण यही है राजपूताना, गुजरात, मालवा, काठियावाड़ आदि प्रदेशो में वर्तमान हिन्दु राज्यों मे सबसे प्राचीन उदयपुर (मेवाड) का राज्य है। इस राज्य में भी प्राचीन शोध का कार्य जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं हुआ, तो भी जो हुआ है, उसमे विक्रम सवत् ७०३ से लगाकर विक्रम की बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ के इतने शिलालेख मिल गये हैं कि यदि वे प्रकाशित किये जाय तो इनसे कई जिल्दे भर जाय। अन्य वर्तमान राज्यो मे किसीके भी ऐसे पुराने शिलालेख नहीं मिले, जिनमे वहाँ की राणियो के नाम मिलते है, जिनके आधार पर वहाँ के भाटो की ख्यातो में दिये हुए नामो की जाँच की जा सके। प्राचीन राजवशो मे गुप्तों, वैसवशियों, कन्नौज के रघुवशी सम्राट् प्रतिहारों आदि कई राजवंशो के शिलालेखो तथा दानपत्रों मे उन वशों की कई राणियों के नाम मिलते है, परंतु भाटो की ख्यातों मे उन वंशों का नाम तक नही है, इसीसे उदयपुर के लेखों का ही सहारा लेना पड़ा।

भी अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार इनको विदाई के समय भेंट देते हैं। इन लोगो की पुस्तकें 'ख्यात' कहलाती है और राजपूताने मे प्राचीन शोध के काम के पहले इन्ही की पुस्तके इतिहास की मुख्य साधन समझी जाती थीं और अब भी साधारण लोगों मे बहुधा आदर है। राजपूताना के इतिहास की सामग्री एकत्र करते हुए मैने ऐसी कई ख्याते एकत्र की। उसमे हमे एक ही वंश के सम्बन्ध की एक से अधिक ख्याते मिली। अतएव उस वंश के मूल पुरुष से लगा कर विक्रम संवत् की १३ वी शताब्दी तक के राजाओ के नामो का जब परस्परमें मिलान किया, तब हमे अधिक तर नाम परस्पर नही मिले। फलतः उन (ख्यातो) मे कुछ प्रसिद्ध पुरुषो के नाम तो ठीक है, बाकी विशेषतर कल्पित हैं। दसवीं शताब्दी के पूर्व के नामो मे शुद्ध नाम बहुत ही कम संख्या मे मिलते है। संवत् का तो उनमे बहुत ही कम उपयोग हुआ है। विक्रम की १४ वीं शताब्दी के पूर्व के जो सवत् उनमे मिलते है, वे बहुधा कल्पित ही है, उस समय के पीछे के सवत् विशेष कर शुद्ध मिलते है। उनमे राजाओ की राणिया, कुवरो और कुंवरियो के नाम भी मिलते है। राणियो के पिता का नाम और उनके वंश का परिचय भी दिया हुआ होता है और कही-कही कुवरियो का विवाह जिन-जिन के साथ हुआ था, उनके नाम तथा उनके वशो का उल्लेख भी मिलता है। उनमे एक ही राजा की कई राणियो के नाम मिलते हैं। शिलालेखादि मे राणियो के नामो का उल्लेख कम मिलता है, जिससे उनके नामो की पूरी जॉच नही हो सकती। कभी-कभी राणियो के बनवाये हुए मन्दिर, वापी (बावड़ी) आदि के शिलालेख भी मिल जाते है, जिनमे ऐसे स्थान बनाने वाली राणी के पति के वश-वर्णन के अतिरिक्त उसके पिता का नाम तथा उसके वंश का उल्लेख भी मिलता है। कभी-कभी संस्कृत पुस्तको मे भी राजा की माता या किसी राणी का नाम मिल जाता है। इस प्रकार भाटों की ख्यातो मे दिये हुए राणियो के नामो की जांच के थोड़े से साधन मिल जाते है। इस लेख मे मै प्राचीन शिलालेखादि से कुछ राणियो के नाम उद्धत कर भाटों की ख्यातो मे वे नाम मिलते हैं या नही, यह बतलाने का यत्न करता हूं—

(अ) उदयपुर राज्य मे एकलिंगजी के प्रसिद्ध मन्दिर से लगभग छः मील दूर शृङ्गीऋषि (ऋष्यशृङ्ग) नाम का एक तीर्थ स्थान है, जहाँ एक कुण्ड भी बना हुआ है। वहां एक प्रशस्ति वि०सं०१४८५ श्रावणसुदि ५ रविवार की लगी

हुई है। उसमें ३१ पंक्तियां हैं, जिनमें २६ श्लोक और अन्त में थोड़ा सा गद्य है। उसका कुछ अंश नष्ट हो गया है, तो भी विशेषतया सुरक्षित है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के महाराणा मोकल के समय की है और उसमें महाराणा हम्मीर से लगाकर मोकल तक के राजाओं का वर्णन है और यह भी लिखा है कि राणा मोकल ने बाघेला वंश की अपनी प्रिय राणी गौराम्बिका (गौरादेवी; गोरादे); के स्वर्ग लोक प्राप्ति के निमित्त विभाण्ड ऋषि के पुत्र (ऋष्यश्रृङ्ग) के स्थान पर यह वापी (बावड़ी) बनवाई।[1] इससे निश्चित है कि महाराणा मोकल की एक राणी का नाम गौराम्बिका था। वह बघेल वंश की थी और मोकल वि०सं० १४८५ तक जीवित था।

उदयपुर राज्य के बड़ये की ख्यात मे राणा मोकल की पांच राणियो के नाम नीचे लिखे अनुसार दिये हुए है—

१ माया कँवर, सांखला (परमार) राजा जैतमल की पुत्री।

२ केसरकवर, सोलकी राव सेढा की पुत्री।

३ अतरूपकंवर, चौहान चद्रसेन की पुत्री।

४ हमेरकंवर, कछवाहा महरा की पुत्री।

५ मदालसा, खैराड़ा मालवे (मालदेव) की पुत्री।

इनमे बघेल वश की राणी गौराम्बिका का नाम नही है; परन्तु उसका होना उक्त पशस्ति से निर्विवाद है। उक्त ख्यात मे महाराणा मोकल का सवत् १४५४ से १४७५ तक राज्य करना लिखा है। वह भी विश्वास के योग्य नही; क्योकि उक्त प्रशस्ति से वि० स० १४८५ के श्रावण तक तो मोकल का विद्यमान होना निर्विवाद है।

---

१ बाघेलान्वयदीपिकाविचरण प्रख्यात हस्ता
भूमिगालतनया पुष्पायुध प्रेयसी। ‥ ॥ २२ ॥
गौराम्बिकाया निजवल्लभाया:
सल्लोकसंप्राप्तिफलैक हेतो.।
एषा पुरस्ता ‥ ‥विभाण्ड सूनो
र्व्वापी निबद्धा किल मोकलेन ॥ २४ ॥
(श्रृङ्गी ऋषि के स्थान की अप्रकाशित प्रशस्ति से)

(आ) महाराणा मोकल के पीछे उनके पुत्र महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) मेवाड़ के स्वामी हुए। ये महाराणा बड़े प्रतापी, विजयी, वीर, संस्कृत के विद्वान्, सङ्गीत मे पारंगत और शिल्प के बड़े अनुरागी थे। इन्होने 'गीतगोविन्द' पर रसिकप्रिया नाम की विस्तृत टीका लिखी, जिसके प्रारम्भ तथा अंत मे अपने वंश का तथा अपना परिचय दिया है, जिसमे अपनी माता का नाम सौभाग्य-देवी[1] दिया है, परन्तु उसका नाम भी मेवाड़ के बड़वे की ख्यात मे नहीं है। महाराणा मोकल की इन दो राणियो के निश्चित नामो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैसे ख्यात में दिया हुआ महाराणा मोकल का समय विश्वास योग्य नही है, वैसे ही उनमे दिये हुए राणियों के नाम भी विश्वसनीय नही हैं। राणियो के नामो के अंत मे कँवर शब्द उस समय तक सामान्य रूप से प्रयोग मे नहीं आता था। या तो उनके नाम प्राचीन शैली के होते थे, या उनके अन्त मे 'देवी' शब्द का प्रयोग होता था, जैसे कि मेवाड़ के राजा भर्तृभट (द्वितीय) की राणी का नाम महालक्ष्मी, अल्लट की राणी का हरियादेवी, विजयसिंह की राणी का नाम श्यामलदेवी और तेजसिंह की राणी का नाम जयतल्लदेवी शिलालेखों में उत्कीर्ण मिलता है।

(इ) महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) ने गीतगोविन्द की टीका के अन्त मे अपने को महाराज्ञी (महाराणी) अपूर्वदेवी का हृदयाधिनाथ कहा है, जिससे निश्चित है कि कुम्भा की राणियो मे अपूर्वदेवी उनकी सबसे पिय राणी थी[2]। ख्यात मे महाराणा कुम्भा की चार राणियो के नाम दिये है, उनमे अपूर्वदेवी का नाम नही है।

---

१ सूर्यत्रितयवेदितराजचक्रचूडामणिना महाराज्ञीहृदयसौभाग्यदेवीहृदयनन्दनेन · · ··-
· महाराजाधिराजमहाराज(राणा)श्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिताया रसिकप्रियानाम्न्या श्रीगीत गोविन्दटीकायां द्वादश· सर्गः समाप्त ॥

बम्बई के निर्णयसागर प्रेस में छपा हुआ सटीक गीतगोविन्द काव्य, पृ० १७४।

२ महाराज्ञीश्रीअपूर्वदेवीहृदयाधिनाथेन · ·

वही पृ० १७४।

(ई) महाराणा कुम्भा को मार कर उनका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा (उदयसिंह) मेवाड़ का स्वामी हुआ। इस पितृघाती को निकालकर उसका छोटा भाई रायमल चित्तोड़ के राज्य का स्वामी बना। उसकी राणी शृङ्गारदेवी ने चित्तोड़ से ७ मील उत्तर मे घोसुंडी ग्राम मे वि० सं० १५६१ मे एक वापी (बावड़ी) बनवाई, जिसकी प्रशस्ति आज तक वहाँ विद्यमान है। उसमे शृङ्गारदेवी मारवाड़ के राठोड़ राजा रणमल के पुत्र राजा योध (राव जोधा) की पुत्री लिखी गई है।[3] उदयपुर की ख्यात मे रायमल की सात राणियो के नाम है, जिनमे शृङ्गारदेवी का नाम नही है और न मारवाड़ (जोधपुर) की ख्यात मे ही कहीं उसके नाम का उल्लेख मिलता है।

ख्यातो मे वि० संवत् की तेरहवीं शताब्दी तक के राजाओ की राणियो के नाम तो मिलते ही नही। यदि कुछ नाम मिलते है तो शिलालेखो मे ही। ऊपर उद्धृत किये हुए थोड़े से उदाहरणो से पाया जाता है कि वि० सं० १५०० और उसके कुछ पीछे तक राणियो के जो नाम ख्यातो मे दिये हुए है, वे बहुधा विश्वास योग्य नही है। वि० सं० १६०० के पीछे के नाम विश्वास योग्य है। इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि या तो भाटो की पुरानी पुस्तकें न होने के कारण उन्होने जो कुछ इधर-उधर मिल सका, वही वृत्तान्त अपनी नई पुस्तको मे वि० स० १६०० के आस-पास उद्धृत किया, या उक्त संवत् के आस-पास उन्होने अपनी

---

३ राष्ट्रवर्यवरनाथमंडली मौलिय रान मणिर्मरुस्थली (ली)।
उद्धृता लिख विपक्षकेटका माशसास रणमल्लभूपति (ति)॥ ४ ॥
एतस्मिन्न मरस दस्यताम वादो तत्सूनु (र्धं) रणि भरं बभार सघ ।
श्री योध क्षितिपति रुग्र (उग्र.) खड्गधारा निघत्ति प्रहत पठाण पारशीक ॥ ५ ॥
आजलराशि महीतल महीपति वाकलय्य निरटंकि ।
तैरनुरूपगुण श्रीरे तस्या राजमल्ल नरनाथ ॥ १० ॥
तदनु मरुधराधिनाथै युवतीरत्न मिमामु या नयद्भिः ।
सहजगतुरगा दिवस्तु जातै (जातै·) सुतरा तोषमलंभि राजमल ॥ १७ ॥
शृङ्गारदेवीत्यभिधा मनोहरं प्रेम्णोपनीता मनुताम भाषतः ।
तयासमंपुष्पशरोमवेकृति कलाकलापैः कलयत्यनेहस ॥ १८ ॥

पुस्तकों का लिखना आरम्भ कर उनको पुरानी बतलाने के लिए बहुत से कृत्रिम और कल्पित संवत् भी उनमे धर दिये हों।

[सरस्वती, प्रयाग; जनवरी १९२६, विशेषांक
विविध स्तम्भ पृ० ९३-९५]

श्रीशृङ्गारदेव्यासहराजमल्लः सन्नीरपूर्णपिचवापिकेयं ।
यावद्धरासागर सूर्यं चन्द्रं राजन्तुसानन्दमनंतरायाः ॥ २३ ॥

[बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, जि० ५६, भाग १, पृ० ८०-८१]

२ डॉ० फ्लीट और भीमदेव का दानपत्र

बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह में बहुत से शिलालेख, दानपत्र सिक्के और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें हैं। उक्त संग्रह का एक दानपत्र डॉ०फ्लीट ने ई०स०१८८६ मे प्राचीन खोज की इन्डियन एंटिक्वेरी नामक अंगरेजी मासिक पत्रिका मे प्रकाशित किया था (पृ० १०६-११०), जिसका आवश्यक अंग नीचे दिया जाता है—

"ओ राजावली पूर्ववत् ॥ संवत ९३ चैत्रशुदि ११ रवौ अद्येह श्रीमदणहिलपाटके समस्तराजावलीविराजितमहाराजधिराजश्रीभीमदेवःश्व(स्व)भुज्यमानकच्छमंडलातः पातिसमस्तराजपुरुषान् ब्रा(ब्रा)ह्मणोत्तरान् तन्निवाशि(सि) जनापदांश्च वो(बो)धयत्यस्तु वः संविदितं यथा ॥ अद्यसंक्रातिपर्व्वाणि चराचरगुरुं भगवतभवानीपतिमभ्यर्च्य संसारस्यासारतांविचित्य प्रसन्नपुरस्थानविनिर्गताय: (य) वच्छ(त्स)सगोत्राय दामोदरसुतगोविंदाय सहसचाणाग्रामे त्रापीपुटके भूमिहलवाहा १ एका शुल्केन सहा (ह) शासनेप्रदत्ता (॥) लिखितमिद्कायस्थकांचनसुतवटेश्वरेण ॥ दूतकोत्र न (म) हासांधिविग्रहिक श्रीचडशर्म्मणः (र्म्मा) ॥ श्री भीमदेवस्य" ।

हिंदी-आशय-"मवत ९३ चैत्रसुदि ११ रविवार को समस्त राजपरंपरासे भूषित महाराजाधिराज श्री भीमदेव अणहिलपाटक[1] (मे रहते समय) अपने

---

१ अणहिलपाटक प्राचीन काल में गुजरात के चावडे और सोलंकी राजाओं की राजधानी थी, जिसको णहिलवाड़ा भी कहते थे। मुसलमान लेखकों का नहरवाला भी उसी का सूचक है। अब इसको कहते हैं और यह बड़ौदा राज्य के अंतर्गत है।

अधीन के कच्छ-मंडल (देश) के सब राजपुरुषों, ब्राह्मणों तथा वहां की प्रजा को यह सूचित करता है कि आज संक्रांति (मेष-संक्रांति) के पर्व पर चराचर के गुरु भगवान शंकर का पूजन और संसार की असारता का विचार कर प्रसन्नपुर स्थान से निकले हुए वच्छ (वत्स)गोत्र वाले दामोदर के पुत्र गोविंद को सहचाणा गांव मे बावड़ी के पिछोर की एक हलवाहा[1] भूमि शासन के साथ दान की।.........
इस (दान पत्र) को कायस्थ कांचन के पुत्र वटेश्वर ने लिखा। इसका दूतक[2] महासांधिविग्रहिक [3] श्री चंडशर्मा है। (हस्ताक्षर) श्री भीमदेव के"

इस लेख से, निश्चित रूप से, इतना ही पाया जाता है कि भीमदेव-नामक किसी राजा ने, जो अणहिलपाटक मे रहता था (अर्थात् जिसकी राजधानी वह नगर था) और जिसके अधीन कच्छ-देश था, संवत् ९३ में भूमि-दान किया।

अणहिलपाटक को चावड़ा (चापोत्कट, चाप)-वंशी राजा वनराज ने वि० सं० ८२१ वैशाख शुक्ला २ को[4] को बसाया था। अतएव विक्रम-संवत् ९३ मे तो उक्त नगर का विद्यमान होना सर्वथा असंभव है। उक्त दानपत्र की लिपि वि० सं० की ११ वीं शताब्दी के आसपास की है। ऐसी दशा मे या तो उसका संवत ९३ विक्रम-संवत नहीं, किंतु और कोई संवत् हो, या वि० सं० की शताब्दियों के अंक छोड कर उससे ऊपर के ही अंक लिखे गये हो। ये ही कल्पनाएँ उसके संवत् के विषय मे हो सकती है। अणहिलपाटक

---

१ राजपूताने और गुजरात के पुराने दानपत्रों में कभी-कभी भूमि की नाप हलवाहों मे दी हुई मिलती है। एक हलवाहे मे कितनी भूमि गिनी जाती थी, इसका यथार्थ निर्णय तो नहीं हुआ, परन्तु ऐसा माना जाता है कि एक हल से एक दिन में जितनी भूमि जोती जाय, उसको एक हलवाहा कहते थे। एक हलवाहे मे आधुनिक १० बीघे जमीन मानी जाती है।

२ दूतक उस पुरुष को कहते थे, जिसके द्वारा भूमि-दान की सनद (दानपत्र, ताम्रपत्र), तैयार करने की राजाज्ञा पहुँचती थी। दूतक के लिये देखो 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला, दूसरा संस्करण पृष्ठ १५२, और टिप्पण १०।

३ महासांधिविग्रहिक उस राजमंत्री को कहते थे, जिसको संधि (सुलह) और विग्रह (युद्ध) का अधिकार होता था।

४ बंबई गजेटियर, जि० १, पृ० १५१।

(वि० सं० ८२१ से १०१७ तक[1] चावड़ो का राज्य रहा, और उसके पीछे लंकियों (चोलुक्यों) का, जिसकी समाप्ति वि०सं० १३५६, या उसके कुछ ही छे हुई। सोलंकी-वंश मे भीमदेव नामके दो राजा वहाँ हुए, जिनमे से पहला मदेव सुलतान महमूद गजनवी की सोमनाथ की चढ़ाई के समय अणहिलपाटक ा स्वामी था, और उसने वि०सं०१०७८ से ११२० तक राज्य किया। दूसरा ीमदेव, जिसको भोलाभीम भी कहते थे, वि०सं० १२३५ से १२९८ तक नाम ात्र को गुजरात का राजा रहा[2]। भीमदेव नाम वाले उक्त दो राजाओ मे से वह ानपत्र किसका है, यही निर्णय करने की आवश्यकता है।

डॉ० फ्लीट ने उक्त दान-पत्र का सम्पादन किया है। उसमें उन्होने उसके राजा भीमदेव को उक्त नाम का दूसरा सोलंकी राजा माना है, और उसके सं० ९३ को सिंह सं. मानकर उक्त दान-पत्र को अमांत (दक्षिणी) वि.सं. १२६४ वर्तमान (१२६३ गत) का ठहराया है। परन्तु उक्त विद्वान् का यह अनुमान ठीक नही है। कारण, ई०स०१८७७ मे डा० बूलर ने अणहिलपाटक (अणहिलवाडे) में राज्य करने वाले चौलुक्य (सोलंकी) राजो के ११ दान-पत्र इन्डियन एन्टिक्वेरी की छठी जिल्द (पृ०१९१-२१२) मे प्रकाशित किए, जिन मे एक भीमदेव पहले का भी है, जो वि० सं० १०८६ कार्तिकसुदी १५ का है। उसका लेखक कायस्थ कांचन का पुत्र वटेश्वर और दूतक महासांधिविग्रहिक चंडशर्मा है[3]। डॉ० फ्लीट वाले दान-पत्र के लेखक और दूतक भी वे ही दोनो पुरुष है। ऐसी दशा मे वे दोनो दान-पत्र एक ही राजा, अर्थात् भीमदेव पहले, के हो सकते है। डॉ० फ्लीट वाले दान-पत्र का संवत् ९३ सिंह सं० नही, किंतु वि०स० १०९३ है, जिसमे शताब्दियो के सूचक अंक छोड़ दिए गए है। कितने ही और शिलालेखो में भी इसी तरह शताब्दियो के अंक छोड कर केवल बाकी के ही अंक लिखे मिलते है[4]। इस समय भी कभी-कभी शताब्दियो के अंकों

---

१ खड्गविलास प्रेस (बॉकीपुर) का छपा हुआ टॉड-राजस्थान, प्रथम खंड, पृ० ४५४-५६।

२ वही; पृ० ४३१–४०।

३ इंडियन् एंटिक्वेरी, जि० ६, पृ० १९४।

४ भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १८२ और टिप्पण ६।

को छोड़ कर बाकी के ही अंक लिखे जाते है; जैसे कि ईस्वी सन् १६२२ को केवल २२, और वि०सं० १६७६ को ७६ लिखते है।

जिन शिला-लेखादि मे इस तरह शताब्दियो के अंक छोड़ कर बाकी के ही अंक दिए गए है, उनके समय की संगति मिलाने के लिए कोई-कोई प्राचीन खोज करने वाले विद्वान् उनके संक्षेप से लिखे हुए संवतों को सिंह-संवत् मान लेते है, परन्तु उसमे वे बहुधा धोखा ही खाते हैं। ऐसे संवतों का निर्णय करने में यह ध्यान रखना परम आवश्यक है कि सिंह-संवत् का प्रचार काठियावाड़ से बाहर कभी नहीं हुआ।[1]

माधुरी, लखनऊ [मा०पत्रिका]
(वर्ष १, खण्ड १, संख्या १, वि०सं० १६७६, ई०स०१६२२)

---

१ वही; पृ० १८२ (सिंह-संवत् के विशेष वृत्तात के लिये देखो भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १८२–८४)।

३ भीमदेव के दान-पत्र का समय

'माधुरी' की प्रथम संख्या मे[१] मैंने 'डाक्टर फ्लीट और भीमदेव का दान-पत्र' शीर्षक लेख प्रकाशित किया था; जिसमे यह बतलाने का यत्न किया गया है कि "बबई की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह के संवत् ९३, चैत्र-सुदि ११, रविवार, के दान-पत्र संपादन करते समय प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता डॉ० फ्लीट ने उसके सवत् को 'सिंह-संवत्' मान कर उसका ठीक समय वि० सं० १२६४ वर्तमान (१२६३ गत) माना और उसे भीमदेव (दूसरे) का ठहराया है। परंतु उस दान-पत्र के प्रकाशित होने से १२ वर्ष पूर्व डॉ० बूलर ने, गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) वशी राजो के, जो ११ दान-पत्र प्रकाशित किए थे, उनमे एक भीमदेव (प्रथम) का वि० सं० १०८६, कार्त्तिकसुदि १५, का भी था। डॉ० बूलर के प्रकाशित किए हुए राजा भीमदेव (प्रथम) के दान-पत्र को कायस्थ कांचन के पुत्र वटेश्वर ने लिखा था और उसका दूतक महासांधिविग्रहिक चंड शर्मा था। डॉ० फ्लीट के प्रकाशित किये हुए दान-पत्र का लेखक भी वही कायस्थ कांचन का पुत्र वटेश्वर और दूतक भी वही महासांधिविग्रहिक चड शर्मा होने से वह दान-पत्र भी भीमदेव (प्रथम) का ही होना चाहिए और उसका संवत् ९३ 'सिंह-संवत्' नही, किंतु वि० सं० १०९३ होना चाहिए; जिसमे शताब्दियो के अंको को छोड़ कर बाक़ी के ही अंक लिखे गए है। ऐसे उदाहरण कभी-कभी प्राचीन शिलालेखो तथा दान-पत्रों मे मिल जाते हैं।"

जोधपुर-निवासी प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता मुंशी देवीप्रसादजी ने गुजरात मे चौलुक्यो का राज्य स्थिर करने वाले मूलराज (प्रथम) के एक दान-पत्र के आधार

---

१ पृ० ९-११।

पर मेरे कथन के ठीक होने[1] की सूचना माधुरी के विद्वान् संपादकों को दी।

फिर श्रीयुत महावीरप्रसाद श्री वास्तवजी बी० एस० सी० ने माधुरी की चौथी संख्या मे, 'भीमदेव के दान-पत्र का समय'-शीर्षक लेख मे, दीवान बहादुर स्वामी कन्नु पिल्ले की 'इंडियन् क्रॉनॉलॉजी' नाम अँगरेजी सारणी की सहायता से उक्त दान-पत्र के संवत् का निर्णय करने का यत्न करते हुए मेरे कथनानुसार उसका भीमदेव (दूसरे) का होना तो स्वीकार किया, परंतु उसके संवत् ९३ को वि० सं० १०९३ न मान कर उसका ठीक समय वि० स० ११११ होना बतलाया[2]। हिंदी-साहित्य मे प्राचीन-शोध-सम्बन्धी विषय अभी प्रारंभिक दशा मे ही है और उसमे अनुराग रखने वाले हिंदी प्रेमियो की संख्या भी बहुत अल्प है। ऐसी दशा मे श्री वास्तवजी का यह लेख पढ़ कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। यदि सामयिक पत्रो मे ऐसी चर्चा होती रहे, तो हमारे साहित्य मे प्राचीन शोध की श्री वृद्धि अवश्य होगी। किंतु ऐसे विषयो पर लेख लिखने वालो के लिये यह बहुत ही आवश्यक है कि जो कुछ लिखा जाय, वह स-प्रमाण हो। श्री वास्तवजी के उक्त लेख में कुछ ऐसी बातें लिखी गई है, जिनसे प्राचीन शोध मे रुचि रखने वाले विद्यार्थियों को लाभ की अपेक्षा हानि होने की विशेष संभावना है। अतएव उक्त दान-पत्र के संवत् ९३ के विषय मे विचार करने से पूर्व मै उन बातों पर संक्षेप से लिखना आवश्यक समझता हूँ-

(अ) श्री वास्तवजी ने लिखा है "सूर्य-सिद्धांत के अनुसार दिन का प्रारंभ १२ बजे रात से ही होजाता है।" मुसलमानो की तारीख का प्रारंभ सदा सूर्यास्त से और ईसाइयो की तारीख का मध्य-रात्रि से होता है; परंतु हिंदुओ के दिन, अर्थात् तिथि, का प्रारंभ किसी नियत समय से होता ही नहीं। कारण, हमारे यहाँ तिथि की गणना इस प्रकार से है कि जब सूर्य और चंद्रमा का ठीक समागम होता है, अर्थात् दोनों बिंबो का केन्द्र ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार-एक सीध मे आता है, तब उसको 'दर्श' या 'अमावास्या' कहते है। फिर चंद्रमा अपनी स्पष्ट गति से आगे बढ़ता है और जितने काल मे सूर्य और

१ माधुरी वर्ष १, संख्या ३, पृ० ३१३।

२ माधुरी, वर्ष १, खंड १, संख्या ४, पृ० ३९४-९६।

चंद्र के बीच का अंतर १२ अंश अर्थात् ७२० कला, का हो जाता है, उतने ही समय को एक तिथि कहते है। यह अंतर बढ़ते-बढ़ते १८० अंश का हो जाता है, अर्थात् सूर्य और चंद्रमा ठीक आमने-सामने आजाते है, तब पूर्णिमा होती है। सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट गति, उनकी कक्षा पर के उनके स्थान के अनुसार, घटती-बढ़ती रहती है। इससे हमारी तिथि का प्रारंभ सदा निश्चित समय पर नहीं होता। तिथियो की लंबाई घटती-बढ़ती रहती है और उनमे क्षय और वृद्धि भी होती रहती है। यदि हमारी तिथियों का प्रारंभ मध्य-रात्रि से माना जाता, तो हमें जटिल पंचागो की आवश्यकता ही न रहती, ईसाइयों की जंत्री-जैसे छोटे-से पंचाग से ही हमारा काम चल जाता और श्राद्ध-व्रत आदि धार्मिक कार्य उसी दिन होगे, या तिथि की सूर्योदय के बाद की घड़ियो के अनुसार उससे एक दिन पहले होगे,यह जानने का झंझट ही न रहता। हिंदुओ के दिन अर्थात् तिथि-का प्रारंभ मध्य-रात्रि से नही होता।

श्री वास्तवजी ने यह लिखने की कृपा भी न की कि कौन से सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार हमारे दिन, अर्थात् तिथि का प्रारंभ १२ बजे रात से ही हो जाता है। सूर्य-सिद्धान्त दो है; एक तो वह, जिसका विवरण वराहमिहिर ने अपनी 'पंच-सिद्धांतिका' मे किया है– जो प्राचीन था, परन्तु अब मिलता नही और दूसरा नवीन, जो अब उपलब्ध है।

ऊपर का विषय ज्योतिष का है, जिसमे मेरी कुछ भी गति नहीं है। यदि कोई ज्योतिष-शास्त्र के विद्वान् इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने की कृपा करे, तो हिंदी के प्रेमियो को उससे विशेष लाभ होगा।

(आ) श्री वास्तवजी ने भीमदेव के उक्त दान-पत्र को वि०सं० ११११ का ठहराने की खीच-तान मे यह लिखा है कि "इस दान-पत्र की प्रति-लिपि में 'संसारम्यासारतांविचिंत्य'–शब्दावली बड़े महत्व की है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि राजा काफी बूढ़े हो चुके थे और उन्हें संसार से वैराग्य हो चुका था। इस विचार से भी दान-पत्र का समय ११११ वि० सं० उचित प्रतीत होता है; क्योंकि इसके एक वर्ष बाद ही, ११२० वि०में, राजा का राज्य-काल अथवा राजा स्वयं समाप्त हो जाता है।"

श्री वास्तवजी का यह कथन न तो ठीक है और न भीमदेव का काफी बूढ़ा होना सूचित करता है। दान का देने वाला संसार को असार या अनित्य और दान की कीर्ति को नित्य या चिरस्थायी मानकर भूमि-दान करता है। पुराने दान-पत्रों में बहुधा ऐसे वाक्य मिल जाते है; परन्तु उनका दान करने वाले की युवा या वृद्धावस्था से कोई संबंध नही रहता। उदाहरण के लिए हम कुछ दान-पत्रो से ऐसे अवतरण नीचे उद्धृत करते हैं; जिनसे यह बात स्पष्ट हो जायगी—

(१) मालवे के प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोजदेव के वि० सं० १०७६, माघसुदि ५, के दान-पत्र मे—

"यथाऽस्माभिः कोकणविजयपर्वणि स्ना (स्ना) त्वा चराचरगुरुं भगवंतं भवानीपतिं समभ्यर्च्य संसारस्यासारतांदृष्ट्वा[1] × × ×"

भोज का देहांत वि० सं० ११११० के आस-पासहुआ था, इसलिए वि०सं० १०७६ मे वह काफी बूढा नही हुआ। बल्कि उसे राज्य सिंहासन पर बैठे भी अधिक समय व्यतीत नही हुआ था।

(२) श्रीमद्धारायामवस्थितैरस्माभिःस्नात्वा चराचरगुरुं भगवंतं भवानी-पतिं समभ्यर्च्य संसारस्यासारतांदृष्ट्वा[2] × × ×"

(३) उसी राजा भोज के पिता सिंधुराज के बड़े भाई वाक्पतिराज देव (मुंज, अमोघवर्ष) के वि०सं० १०३१, भाद्रपद्सुदि १४, के दानपत्र में—

"श्रीमदुज्जयिनीसमावासितैःशिवतडागाम्भसि स्नात्वा चराचरगुरुं भगवंतं भवानीपतिं मभ्यर्च्य संसारस्याभारतांदृष्ट्वा[3] × × ×"

(४) उसी राजा भोज के वंशधर अर्जुनदेव के वि०सं०१२७२, भाद्रपदसुदि १५, के दान-पत्र मे—

---

१ एपिग्राफिया इंडिका, जि० ११, पृ० १८२-१८३।

२ महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी और काशीनाथ पाडुरंग पर्व-संपादित प्राचीन लेख माला, भाग १, पृ० ५।

३ वही, पृ० ३।

"रेवाकपिलयाः संगमे स्नात्वा भगवंतं भवानीपतिं मोंकारं लक्ष्मिपतिं चक्रस्वामिनं चाभ्यर्च्य संसारस्यासारतांदृष्ट्वा[1] × × ×"

इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते है; परन्तु उनसे लेख को बढ़ाने की आवश्यकता नही।

(इ) श्री वास्तवजी ने उक्त दान-पत्र के संवत ९३ को न तो सिंह-संवत् ९३ और न वि०सं० १०९३ ही माना; किंतु उसके संवत् को ११११ ठहराने की खींच-तान में एक नए ही संवत् की शृष्टि खडी करके लिखा कि "रही दान-पत्र में लिखे ९३ संवत् की बात। इसके विषय मे तो यही जान पड़ता है कि यह संवत् वही का स्थानीय संवत् है। इसका आरंभ शायद, इसी वंश की राजगद्दी पूर्ण रूपसे स्थापित होने पर, १०२६ वि० (११११-९३) मे, किया गया हो; क्योंकि अणहिलपाटक मे १०१७ वि० तक तो चावडों का ही राज्य रहा। उसके पीछे ८-९ वर्ष सोलंकी-घराने के प्रथम राजा को अपना राज्य दृढ़ करने मे लगे होंगे और राज्य के दृढ़ होने तथा छोटे-छोटे राजों के पूर्णतया अधीन होने के पश्चात् यह संवत् चलाया गया होगा।"

यह कथन भी प्रमाण-शून्य कल्पना-मात्र है। जिन-जिन बडे राजो ने नया संवत् चलाया, उन्होने उसको बड़े महत्व को घटना समझ कर, उसके साथ अपना या अपने वश का नाम जोड़ने मे अपना गौरव समझा; जैसे–हर्ष-सवत, लक्ष्मणसेन-संवत्, चालुक्य-विक्रम-सवत्, गुप्त-सम्वत्, गागेय-सम्वत्, कलचुरि-संवत् आदि। यदि गुजरात मे चौलुक्यो का राज्य स्थिर करने वाले मूलराज (प्रथम) ने कोई स्थानीय या नया संवत् चलाया होता तो मूलराज और उसके वशजो के शिलालेखो तथा दान-पत्रो मे वही सवत मिलना चाहिए था; परंतु वैसा कही पाया नही जाता। स्वयं मूलराज (प्रथम) के तीन दान-पत्र मिल चुके है, जिनमे से एक वि० सं० १०३०, भाद्रपदसुदि ५, का[2] है; दूसरा वि० स० १०४३, माघवदि १५ (अमावस्या), का[3] है, तीसरा वि० सं० १०५१, माघ-

---

१ म. म. प० दुर्गाप्रसादजी और काशीनाथ पाडुरग पर्वणि सपादित,प्राचीन लेखमाला, भाग १, पृ० ८।

२ वियेना ओरिएटल जर्नल्, जि० ५, पृ० ३००।

३ इंडियन ऐंटिक्वेरी, जि० ६, पृ०१९१।

सुदि १५ का[3] है। यदि मूलराज ने अपनी राजगद्दी पूर्ण-रूप से स्थापित होने पर, श्री वास्तवजी के कथनानुसार, वि० सं० १०२६ मे अपना नया संवत् चलाया होता तो वह अपने दान-पत्रो मे जो तीनो, वि० सं० १०२६ के पीछे के है, अपने चलाये हुए नए संवत् का ही अवश्य प्रयोग करता। परंतु ऐसा न करके उसका वि० सं० को ही अपने दान-पत्रो मे लिखना यही बतलाता है कि उसने कोई नया संवत् नही चलाया और न किसी अन्य स्थानीय संवत् का ही प्रयोग किया। मूलराज (प्रथम) के स्थापित किए हुए गुजरात के चौलुक्यो (सोलंकियो) के राज्य की समाप्ति अलाउद्दीनखिलजी के समय, वि० सं० १३५६ मे हुई। उस समय तक के मूलराज के वंशज चौलुक्य-राजों के कई दान-पत्र और बहुत से शिला-लेख मिल चुके है; जिनमे वि० सं० का ही प्रयोग होने से मूलराज के चलाए हुए नए या स्थानीय संवत् की कल्पना सर्वथा असंभव है। यदि ऐसा हुआ होता, तो कहीं-न-कहीं तो उसका नाम या प्रयोग अवश्य मिलता।

श्री वास्तवजी ने उक्त दान-पत्र के संवत् ९३ पर मुझ से फिर विचार करने का आग्रह किया है, अतएव उस विषय मे फिर कुछ कहना आवश्यक है। जब कि यह निश्चित है कि वह दान-पत्र भीमदेव (प्रथम) का ही है और जिसे श्री वास्तवजी भी स्वीकार करते है, तब उसका संवत् ९३ सिंह-संवत् तो नही है। यह भी ऊपर बतलाया जा चुका है कि मूलराज (प्रथम ने कोई नया या स्थानीय संवत् भी नही चलाया। ऐसी दशा मे यह तो कहा ही नही जा सकता कि संवत् ९३ किसी संवत् का सूचक नही है। जब भीमदेव (प्रथम) का एक दान-पत्र वि० सं० १०८६ का मिल चुका और उसी लेखक का लिखा हुआ सं० ९३ वाला दान-पत्र है और दोनो का दूतक भी एक ही पुरुष है, तो उक्त दान-पत्र को वि० सं० १०९३ का मानने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती। अब रही बात तिथि, वार और संक्रांति के मिलने की। इस विषय मे श्री वास्तवजी का कथन है कि "ओझाजी का यह तर्क कि दोनो दान-पत्र भीमदेव पहले के है, ज्योतिष से भी सिद्ध होता है; परंतु संवत् का मेल नही मिलता। वि० सं० १०९३ मे सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मेष की संक्रांति वैशाख वदि ८, मंगलवार, को होती है। परंतु दान-पत्र

---

१ एपिग्राफिया इंडिका, जि० १०, पृ० ७८।

मे यह स्पष्ट लिखा है कि दान चैत्रसुदि ११, रविवार को, संक्रांति -पर्व के समय किया गया। इसलिये इसका संवत् १०६३ वि० नही हो सकता। × × × अब देखना यह है कि पहले भीमदेव के राज्य-काल मे ऐसा संयोग कब पड़ा था। ओझा-जी के कथनानुसार इसका राज्य काल १०७८ वि० से ११२० तक है। इस अवधि मे मेष की संक्रांति संवत् १११६ वि० की चैत्रसुदि ११ शनिवार, की रात को, १२ बजे के पीछे, ४५ मिनट के लगभग पर, लगी थी। इसलिये संक्रांति का पुण्य-काल दूसरे दिन, रविवार को प्रातः काल था। सूर्य-सिद्धांत के अनुसार दिन का प्रारंभ १२ बजे रात ही से हो जाता है; इसलिये यह मेप संक्रांति असल में इतवार को ही पड़ी। चैत्र-सुदि ११ शनिवार की रात को, ५५ घड़ी ३० पल, अर्थात् सवा चार बजे प्रातः काल तक थी, जब कि रविवार का ब्राह्म मुहूर्त था। इसलिये अब इसमे तनिक भी संदेह नही रह जाता कि रविवार का ब्राह्म मुहूर्त, संक्रांति और एकादशी के संयोग से, दान के लिये बड़ा शुभ समझा गया होगा और इसी समय भूमि-दान का संकल्प किया गया होगा।"

श्री वास्तवजी का यह कथन भी संदेह रहित नहीं है। शिला-लेखो और दान-पत्रो मे विक्रम संवत् के साथ के मास, पक्ष, तिथि, वार आदि की जांच करने मे कई बातो का विचार करना पड़ता है; क्योकि कभी वि० सं० के वर्ष वर्त-मान लिखे मिलते हैं, तो कभी गत। कहीं मास अमांत होते है, तो कही पूर्णिमांत; कही वर्ष का प्रारंभ चैत्र-शु० १ से, कहीं आषाढ़-शु० १ से और कार्तिक-शु० १ से होता है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर प्रत्येक प्रकार मे जाँच करना परम आवश्यक है। श्री वास्तवजी ने यह कही नहीं लिखा कि उन्होने उक्त दान-पत्र के संवत् आदि को कौन सी शैली का मानकर, सारिणी से उक्त दान-पत्र को वि०सं० १११६ का ठहराया। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि राजा लोग दान का संकल्प तो समय पर ही करते हैं, परन्तु दान-पत्र खुदवाने का कोई निश्चित समय नही होता। ऐसी दशा में यदि दान-पत्र के खुदवाए जाने के समय पक्ष, तिथि, वार आदि मे कही कुछ भी अशुद्धि रह गई, तो उनका गणित से ठीक मिलना असंभव हो जाता है। दान-पत्र क स्याही से लिखने वाले भी कई अशुद्धियाँ कर जाते है, जो खोदते समय ज्यो की त्यो रह जाती है। यदि लेखक ने पक्ष, तिथि, वार आदि लिखने मे कुछ भी अशुद्धि की, तो उनका जाँच की कसौटी पर मेल खाना भी

सम्भव नहीं। दान-पत्र सैकड़ो बरसो के पुराने होने से कभी-कभी ज़ंग से भरे हुए मिलते है और कही-कही तो अक्षर भी अस्पष्ट हो जाते है। ऐसी अवस्था मे यदि सुदी, बदी या तिथि के अंक सन्देह-युक्त हो और उनके पढ़ने मे कुछ भी फर्क रह गया, तो भी वैसा ही होता है। श्री वास्तवजी के कथनानुसार वि० सं० ११११ मे चैत्रसुदि ११ को, १२ बजे के पीछे ४५ मिनिट के लगभग पर मेष-सक्रांति लगी थी। उस दिन भी रविवार नही, किंतु शनिवार था; जो ताम्रपत्र के वार से नही मिलता। यदि संक्रान्ति का प्रवेश रात्रि मे होने के कारण सक्रांति का पुण्यकाल दूसरे दिन, अर्थात रविवार को माना गया, तो उस दिन एकादशी नहीं, किन्तु द्वादशी थी। अतएव श्री वास्तवजी का कथन ठीक नही कहा जा सकता। पंचांगो मे जिस उदयान् तिथि को सक्रांति का प्रवेश होता है, उसी तिथि और वार के साथ उसका उल्लेख करने की परिपाटी अब तक चली आती है, चाहे सक्रांति के प्रवेश के पूर्व ही वह तिथि समाप्त क्यो न हो चुकी हो। प० श्रीधर शिवलाल के वि०सं०१९७६ के चडांशु चंडू-पंचांग मे माघशु० ११ शनिवार, को ८ घड़ी, ४२ पल होना लिखा है। उसी रात को ४९ घड़ी ५५ पल पर मकर-सक्रांति का प्रवेश है, तो भी नीचे संक्रांति के वर्णन मे लिखा है कि "माघ-कृष्णा ११ शनौ मकरेऽर्कः प्रवे०।"

उत्तरी (पूर्णिमांत) वि०सं० १०९३ वर्तमान (१०९२ गत) चैत्रसुदि १२ को रविवार था और उसी रात्रिको मेष-सक्रांति भी लगी थी। सम्भव है ताम्रपत्र के खुदने या पढ़ने में १२ के स्थान पर ११ हो गया हो। इसी अशुद्धि के कारण ११ के साथ गणित से योग नही मिलता; किंतु ताम्र-पत्र का सम्वत् १०९३ ही होना चाहिए।

माधुरी, लखनऊ [मासिक पत्रिका],
वर्ष १, खंड २, संख्या १, वि.सं. १९७९, ई.स.१९२२

———

४ चित्तौड़ के क़िले पर गुजरात के सोलंकी राजाओं का अधिकार

चित्तौड़ के इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग से गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमे से एक विक्रम संवत् ११०७ क है। उसमें सपादलक्ष (अजमेर राज्य) के राजा अनाक (आना; अर्णोराज) को जीत कर चित्तौड़ की शोभा को देखने के लिये कुमारपाल के वहां जाने और वहां के शिव-मन्दिर को एक गांव भेट करने का उल्लेख है[१]। यह लेख छोटा है और २८ पंक्तियों में लिखा गया है। दूसरा बड़ा शिलालेख, जो मुझे वहां मिला, वह इस समय उदयपुर के विक्टोरियाहाल नामक संग्रहालय में सुरक्षित है। उसके मध्य का कुछ अंश घिस गया है, तो भी उसका अधिकांश बचा हुआ है। उस लेख में संवत् नहीं है, तो भी उससे जान पड़ता है कि अपुत्र होने के कारण सिद्धराज (जयसिंह) ने सोमनाथ जाकर पुत्र प्राप्ति के लिये शिव से प्रार्थना की, जिस पर सोमनाथ ने उससे कहा कि तेरे पुत्र न होगा और तेरे बाद कुमारपाल गुजरात का स्वामी बनेगा। कुमारपाल की तरफ से चित्तौड़ मे जो शासक रहता था, उसका भी उसमें उल्लेख है[२]। इस लेख से यह निश्चय होता है कि चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध दुर्ग पर कुमारपाल का अधिकार था और वहां उसका एक अधिकारी भी नियत था।

मेरुतुंग-रचित 'प्रबंधचिंतामणि' मे लिखा मिलता है कि कृतज्ञ चक्रवर्ती

---

१ एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द २ पृ० ४२२-२४।

२ यह लेख अब तक प्रकाशित नहीं हुआ।

राजा कुमारपाल ने अपनी रक्षा करने वाले आलिंग कुम्हार को सात सौ[1] गांव-वाला चित्रकूट (चित्तौड़) का पट्टा दिया। उसके वंशज कुम्हार होने से शरमाते थे[2]। यह कथन भी कुमारपाल के उक्त दुर्ग पर अधिकार होने की पुष्टि करता है।

अब यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड़ के क़िले पर कुमारपाल का अधिकार किस तरह हुआ। 'कुमारपालचरित', 'कुमारपालप्रबंध', गुजरात के सोलंकी राजाओ के इतिहास-सम्बन्धी अन्य संस्कृत ग्रंथों तथा शिलालेखो में कहीं भी इस बातका उल्लेख नही मिलता कि चित्तौड़ का क़िला, किस सोलंकी राजा ने किस से और कब लिया था। इस जटिल समस्या को हल करना कठिन है, तो भी मेवाड़ (उदयपुर राज्य), मारवाड़ (जोधपुर राज्य) तथा आबू के शिलालेखो और जिनप्रभसूरि-रचित 'तीर्थकल्प' से इस सम्बन्ध मे सहायता मिल सकती है।

उदयपुर राज्य के चीरवा गांव के विष्णु-मन्दिर मे मेवाड़ के गुहिल वंशी राजा समरसिंह के राज्य-समय का विक्रम संवत् १३३० कार्तिकसुदि १ का शिलालेख है। उसमें मेवाड़ की प्राचीन राजधानी नागदा (नागद्रह) और चित्तौड़ के तलारक्षों (फौजदारों) के वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन है। चित्तौड़ के फौजदार मदन के सम्बन्ध में उसमे लिखा है कि निष्पापी मदन, रत्न का छोटा भाई था, उसने राजा समरसिंह की कृपा से चित्तौड़ की वंश परम्परागत तलारता (फौजदारी) प्राप्त की और श्री भोजराज[3] के बनवाये हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक शिव-मंदिर में अपने कल्याण के लिये वह सदाशिव-पूजन किया करता था[4]।

---

१ संभव है इस संख्या में अतिशयोक्ति हो।

२ प्रबंधचिन्तामणि, पृष्ठ १९९, (बबई का संस्करण)।

३ यह भोजराज मालवे का परमारवंशी राजा था।

४ रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदन.प्रसन्नवदनः सतत कृतदुष्टजनकदनः ॥ २७ ॥ '' ''''॥
श्रीचित्रकूटदुर्गे तलारता यः पितृक्रमायता।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादत प्राप नि. पाप. ॥ ३० ॥

इस लेख पर से अनुमान होता है कि मालवे के परमारवंशी राजा भोज ने चित्तौड़ के क़िले मे त्रिभुवननारायण नामक शिव-मन्दिर बनवाया था। त्रिभुवन-नारायण उस राजा का उपनाम[१] (विरुद) था, जिससे सम्भव है कि उक्त विरुद से उस मन्दिर का नाम भी 'त्रिभुवननारायण' रक्खा गया हो।

चित्तौड़ के क़िले के रामपोल दरवाज़े के बाहर नीम के वृक्ष वाले चबूतरे पर पड़ा हुआ मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का विक्रम सवत् १३०८ माघ-सुदि[1] १० का एक शिलालेख संवत् १९५८ मे मुझे मिला। उसकी दाहिनी ओर का कुछ अश नष्ट होजाने से प्रत्येक पक्ति के अन्त मे कही एक और कही दो अक्षर जाते रहे और बीच के कुछ अक्षर भी कही-कही बिगड गये है, तिस पर भी उसका सवत् बच गया है और उससे पाया जाता है कि 'महाराजाधिराज श्री समरसिंह देव के राज्य-समय प्रतिहार (पडिहार) वशी महारावत राजश्री······राज० पाता के पुत्र राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री भोजस्वामी देव जगती ('भोज-स्वामी' नामके अथवा राजा भोज के बनवाये हुए देव मंदिर) मे प्रशस्ति पट्टिका सहित बनवाया[२]।

अब यह निश्चय करना आवश्यक है कि मालवे के राजा भोज ने चित्तौड़ मे मंदिर बनवाया, जिसका कारण क्या है? इस प्रश्न का समाधान जोधपुर राज्य के हस्तिकुंडी (हथुंडी) गांव से प्राप्त राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ माघसुदा १३ के शिलालेख से हो सकता है। उसमे लिखा है–'जब राजा मुंजने[३] मेदपाट (मेवाड़ के मदरूपी

श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्य देवगृहे।
यो विरचयतिस्म सदाशिवपरिचर्या स्वशिवलिप्सु· ॥ ३१ ॥

(चीरवा का शिलालेख)

१ भोजके उपनाम 'त्रिभुवननारायण' के लिये देखो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (संवत् १९७६)2 पृ० १–१८ मे प्रकाशित 'परमार राजा भोज और उसका उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक मेरा लेख।

२ यह शिलालेख आजकल उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

३ मुंज मालवे के परमार राजा भोज के पिता सिंधुराज (सिंधुल) का बडा भाई था और उसका उपनाम 'वाक्पतिराज' था।

आघाट (आहाड़ मेवाड की प्राचीन राजधानी) नगर को नष्ट किया, तब धवल ने मेवाड़ के सैन्य की रक्षा की थी[१]।

इस कथन से अनुमान हो सकता है कि जब मालवे के राजा मुंज ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर आहाड़ नगर को नष्ट किया, उस समय उसने चित्तौड़ का दुर्ग और उसके आसपास का मालवे से जुड़ा हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया होगा, जिससे राजा भोज किसी-किसी समय चित्तौड़ मे रहता हो और इसी कारण उसने वहां शिवालय बनवाया हो।

आबू पर विमलशाह के जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार की वि० सं० १३७८ ज्येष्ठसुदि ६ की प्रशस्ति तथा जिनप्रभसूरि के 'तीर्थकल्प' से इस अनुमान की पुष्टि होती है।

इस प्रशस्ति में लिखा है कि 'चन्द्रावती नगरी का राजा धधु (धंधुक) वीरो मे अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की, तब भीमदेव उस पर अप्रसन्न हुआ। इसलिये वह मनस्वी (धंधुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। इसीसे राजा भीम ने प्राग्वाट (पोरवाल) वंशी मत्री विमल को अर्बुद (आबू) का दंडपति (सेनापति) नियुक्त किया। उसने वि० सं० १०८८ मे आबू शिखर पर आदिनाथका मन्दिर बनवाया[२]।

---

१ भक्त्वाघाट घटामि प्रकटमिव मठ मेदपाटे [३] भटाना।
जन्ये राजन्य जन्ये जनयति जननाज (?) रणं मुंजराजे।
श्री · · मारो प्रणष्टे हरिण इव भिया गुर्ज्जरेशे विनष्टे
तत्सैन्याना स (श) रण्यो हरिरिव शरणे य. सुराणा व (ब) भूव ॥ १० ॥
एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १०, पृष्ठ १२-२१।

२ तत्कुलकमलमराल काल प्रत्यर्थिमडलीकानां।
चन्द्रावतीपुरीश. समजनि वीराग्रणीर्धुंधु ॥ ५ ॥
श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्य (?) मान. किल धंधुराज।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ॥ ६ ॥
प्राग्वाटवंशाभरणं बभूव रत्नप्रधानं विमलाभिधान · ॥ ७ ॥

इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए जिनप्रभसूरि ने अपने तीर्थकल्प मे लिखा है-"जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधूक (राजा धंधुक) पर क्रुद्ध हुआ, तब विमल ने उसे भक्ति-पूर्वक प्रसन्न किया और धंधुक को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर उसकी आज्ञा से वि० सं० १०८८ में बड़े खर्च से विमलवसही नामक (आदिनाथ का) मन्दिर बनवाया [१]"।

उल्लिखित दोनो प्रमाणों पर विचार करते हुए ऐसा कह सकते हैं कि गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (प्रथम) के साथ विरोध होने से आबू का परमार राजा धधुक मालवे के परमार वंशी राजा भोज के पास, जो उस समय चित्तौड मे रहता था, चलागया। उसे समझा कर उस समय विमल चित्तौड से वापस लाया और भीमदेव को सेवा स्वीकार कराने के बाद उसकी आज्ञा ले उसने आदिनाथ का मन्दिर बनाया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय चित्तौड़ का क़िला राजा भोज के आधीन था।

अब यह जानना जरूरी है कि मालवे के परमारो से चित्तौड़ का क़िला सोलंकियो के अधिकार मे किस प्रकार आया।

गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थो तथा गुजरात के और मालवे से मिले हुए शिलालेखो से जान पड़ता है कि जब सिद्धराज (जयसिह) सोमेश्वर (सोम-

---

ततश्च भीमेन नराधिपेन प्रतापवह्निर्विमलो महामति।
कृतोर्बुदे दण्डपति सता प्रियो प्रियवदो नन्दतु जैनशासने ॥ ८ ॥
श्री विक्रमादित्य नृपाद्यतीते ऽष्टाशीतियाते शरदा सहस्रे।
श्री आदिदेव शिखरेर्बुदस्य निवेसी(शि)त श्रीविमलेन वदे ॥ ११ ॥

आबू का शिलालेख (अप्रकाशित)

१ राजानकश्रीधांधुके क्रुद्ध श्रीगुर्जरेश्वर।
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्रकूटादानिय तद्गिरा ॥ ३९ ॥
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्देभूरि रैव्ययात्।
सत्प्रासादं सविमलवसत्याह्वं व्याधापयत् ॥ ४० ॥

तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प।

नाथ) की यात्रा को गया था, उस समय मालव देश के राजा नरवर्म्मा[1] ने गुजरात पर चढ़ाई की। जयसिंह के मंत्री सांतूने उससे पूछा कि आप किस प्रकार लौट सकते हैं। उत्तर मे राजा ने कहा कि यदि तुम अपने स्वामी की सोमेश्वर की यात्रा का पुण्य मुझे अर्पण कर दो, तो मैं लौट जाऊँ। यह वचन सुन कर मन्त्री ने उस राजा के पैर धोये और जल लेकर अपने स्वामी की सोमेश्वर की यात्रा का पुण्य उसके हाथ मे अर्पण किया और मालवे के राजा को गुजरात से वापस लौटाया। जब राजा को इस बात की सूचना मिली, तब वह अपने मन्त्री पर क्रुद्ध हुआ, तो मन्त्री ने कहा कि-"हे राजन् मेरा अर्पण किया हुआ आपका पुण्य यदि दूसरे को मिल जाता हो, तो मै उस राजा का तथा अन्य पुण्यवान पुरुषो का पुण्य आपको अर्पण करता हूं। अपने देश पर आते हुए शत्रु सैन्य को रोककर किसी भी प्रकार से देश की रक्षा करनी चाहिये।" इस उत्तर से राजा संतुष्ट हुआ, किन्तु मालवपति पर क्रुद्ध होकर सहस्रलिंग धर्मस्थान के चलते हुए कार्य को शीघ्र पूर्ण कराकर उसने मालवे पर चढ़ाई करदी[2]।

---

१ प्रबन्धचिन्तामणि में गुजरात पर आक्रमण करने वाले मालवे के राजा का नाम यशोवर्मा दिया है (पृ० १४२-४३) किन्तु वह विश्वसनीय नही है। क्योंकि जिन मडनगणिके 'कुमारपाल-प्रबन्ध'। 'जयसिंहसूरि-रचित 'कुमारपाल-चरित्र'। चारित्रसुन्दरगणि-कृत 'कुमारपाल-चरित्र' तथा मेरुतुङ्ग की 'प्रबन्धचिन्तामणि' एवं राजशेखर के 'चतुर्विंशति-प्रबन्ध' से स्पष्ट है कि मालवे के राजाकी उल्लिखित चढाई का बदला लेने के लिये सिद्धराज ने मालवे पर चढाई कर १२ वर्ष तक लडने के अनन्तर उस देश को जीत लिया। यशोवर्मा, नरवर्मा का पुत्र था और नरवर्मा का देहान्त वि० स० ११६० कातिकसुदि ८ के दिन हुआ, जब यशोवर्मा मालवे का राजा बना। सिद्धराज (जयसिंह) का देहावसान वि० स० ११६६ मे हुआ, जिससे निश्चित है कि यशोवर्मा का राज्याभिषेक होने के बाद सिद्धराज १२ वर्ष तक तो जीवित भी न रहा था। उज्जैन से मिले हुए सिद्धराज के वि० सं० ११६५ ज्येष्ठसुदि १४ के शिलालेख से स्पष्ट जान पड़ता है कि जयसिंह ने मालवे के राजा यशोवर्मा से मालव देश जीता था। उस शिलालेख से यह भी निश्चय होता है कि जयसिंह ने वि० स० ११६५ से पूर्व मालवे के राजाके साथके युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध के अन्त मे यशोवर्मा कैद हुआ था, इसलिये इसका आरम्भ नरवर्मा के समय में होना चाहिये। युद्ध के समय नरवर्मा का अवसान हुआ और उसके बाद यशोवर्मा भी लडता रहा।

२ प्रबंधचिन्तामणि; पृ० १४२।

मालवे के राजा (नरवर्मा और यशोवर्मा) के साथ ही यह लड़ाई १२ वर्ष तक चलती रही, किन्तु जब वह धारा नगरी को जीत न सका, तब एक दिन राजा ने प्रण किया कि आज धारा नगरी का ध्वंस करने पर ही मैं भोजन करूंगा। राजा की यह प्रतिज्ञा पूर्ण करने मे परमार वंश के ५०० राजपूतो, कई बुद्धिमान मन्त्रियों तथा बहुत सी सेना का नाश हुआ; तो भी संध्या समय तक राजा का प्रण पूर्ण न हो सका, इसलिये मन्त्रियो ने कृत्रिम धारा नगरी बनवाई और उसका ध्वंस करवा कर राजा को शान्त किया। फिर धारा नगरी का दुर्ग किस प्रकार जीता जाय, इस विषय की चर्चा मुंजालमन्त्री ने अपने गुप्तचरो द्वारा सब जगह फैलाई। इतने मे वहां के एक पुरुप ने कहा कि यदि त्रिपोलिया दरवाजे से हमला किया जाय तो क़िला टूट सकता है। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जब मन्त्री ने राजा को इस बात की सूचना दी, तब उसने उस-तरफ सेना भेजी और स्वयं यशः पटह नामक हाथीपर सवार होकर सामल-नामक महावत को हाथी द्वारा दरवाजा-तुडवाने की आज्ञादी। इस पर सामने त्रिपोलिया दरवाजे के दो कीवाडो की लोहे का अर्गल हाथी से तुड़वा डाला। इस प्रकार अधिक जोर लगाने से वह हाथी तो मर गया, किन्तु द्वार टूट जाने से धारा नगरी के दुर्ग पर जयसिंह का अधिकार होगया। जयसिह ने यशोवर्मा को क़ैद कर लिया[1] और उसे साथ लेकर १२ वर्ष के अनन्तर वह वापस पाटण (अणहिलवाड़ा, गुजरात की राजधानी) आया[2]।

यशोवर्मा को क़ैद करके सिद्धराज ने सारा मालव देश अपने राज्य मे मिला लिया, उसी के साथ मालवे के परमार राजाओ के अधिकार मे रहा हुआ चित्तौड का किला भी सिद्धराज के हाथ मे चला गया। सिद्धराज के पीछे कुमारपाल

---

१ सोमेश्वर (कीर्तिकौमुदी का कर्त्ता) जिनमण्डनगणि तथा जयसिंहसूरि ने मालवे के राजा नरवर्मा को कैद करने का उल्लेख किया है, वह मानने योग्य नहीं है। उसके विरुद्ध आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'द्वयाश्रय महाकाव्य' मे, अरिसिंह ने 'सुकृतसंकीर्तन' मे और मेरुतुङ्गाचार्य ने 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में यशोवर्मा का कैद होना लिखा है, यही मानने योग्य है। हेमचन्द्रसूरि, सिद्धराज जयसिंह के समय में जीवित और उसके दरबार का प्रतिष्ठित विद्वान् था।

२ प्रबन्ध-चिन्तामणि; पृष्ठ १४२-४४।

गुजरात का राजा हुआ और उसके अधिकार मे वह किला भी रहा, जहां उसने अपना हाकिम भी नियत किया था। कुमारपाल के उपर्युक्त दो शिलालेख चित्तौड़ से मिलने का कारण वहां उसका अधिकार होना ही है।

गुजरात के सोलंकी राजाओं के पास से चित्तौड का दुर्ग कब और किस राजा के समय मे मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं के अधिकार मे पीछा आया, इस विषय मे गुजरात के ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिलालेख तथा गैजेटियर मे प्रकाशित गुजरात का प्राचीन इतिहास जरा भी सहायक नही है, तो भी मन्त्री तेजपाल के बनवाये हुए आबू पर के लूणवसही (नेमिनाथ) नामक जैनमन्दिर की प्रशस्ति, जिसकी रचना नागर जाति के गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर ने की थी और उसी विद्वान् के रचे हुए 'सुरथोत्सवकाव्य' मे कुछ सहायता अवश्य मिल सकती है। उपर्युक्त प्रशस्ति मे लिखा है कि आबू के परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन की तलवार ने गुजरात के राजा की, जब कि सामन्तसिंह ने रणक्षेत्र मे उसका बल तोड डाला था[1], रक्षा की।

इस लेख से इतना तो पाया जाता है कि सामन्तसिंह मेवाड़ का गुहिलवंशी राजा था। सामन्तसिंह ने गुजरात के किसी राजा का पराभव किया था, किन्तु उसमे उसका नाम नहीं बताया।

गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर 'सुरथोत्सव काव्य' मे अपने पूर्वज कुमार के विषय मे लिखता है कि उसने कटुकेश्वर नाम के (अर्द्धनारीश्वर) की आराधना-कर अजयपाल राजा के रणांगण मे लगे हुए घाव की दारुण पीड़ा शान्त की

---

१ शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्त्रिंशधारो
धारावर्षःसमजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः। ·····३६ ॥
सामन्तसिंहसमितिक्षितिविश्वतौजः—
श्रीगूर्ज्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासिः।
प्रह्लादनस्तदनुजोदनुजोत्तमारि —
चारित्रमत्र पुनरुज्ज्वलयांचकार ॥ ३८ ॥

एपिग्राफिया इंडिका, जि० ८, पृ० २११।

थी।[1] गुजरात के किसी भी इतिहास मे अजयपाल के युद्ध मे घायल होने का वर्णन नही मिलता, तो भी सोमेश्वर के उस कथन से उसका घायल होना निश्चित है।

ऊपर के दोनो कथनो का सारांश यही है कि सामन्तसिंह के साथ वाले युद्ध मे गुजरात का सोलंकी राजा अजयपाल घायल हुआ था। ये दोनो राजा समकालीन थे। सामन्तसिंह के दो शिलालेख मिले है, जो वि० सं० १२२८ और १२३६ के है और अजयपाल ने वि० सं० १२३० से १२३३ तक राज्य किया था। इसलिये यह मानने में कोई बाधा नही है कि मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह ने गुजरात के राजा अजयपाल को घायल कर उससे चित्तौड़ का क़िला लेकर उसे पीछे अपने राज्य मे मिला लिया होगा। सामन्तसिंह के पीछे के मेवाड के गुहिलवंशी राजाओं के शिलालेख चित्तौड से मिले है, वे भी इस कथन को पुष्ट करते है।

सारांश यही है कि सिद्धराज (जयसिंह) और कुमारपाल के समय मे चित्तौड का क़िला गुजरात के सोलंकियो के अधिकार मे रहा, किन्तु निर्बल अजयपाल के समय मे गुजरात के राजाओ से छूटकर वह क़िला पीछे मेवाड के राजाओ के अधिकार मे आ गया[2]।

विशालभारत (मासिक पत्र), कलकत्ता,
वर्ष १, खण्ड २, सख्या ५,
अगहन, वि० सं० १९८५, नवंबर १९२८
पृ० ६०५-६

---

(१) य शौर्यसंयमपट्ट कुटकेश्वराख्य —
माराध्य भूधरसुताघटितार्धदेहम्।
तां दारूणामपि रणाङ्गणजातघात —
व्यातव्यथामजयपालनृपादपास्थान् ॥ ३२ ॥
काव्यमाला मे प्रकाशित 'सुरथोत्सव'; सर्ग १५।

उसी पुस्तक मे ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक की टिप्पणी मे लिखा है —

"सामतसिंहे युद्धेहि श्री अजयपालदेव प्रहार पीड्या मृत्युकोटिमायात.कुमार नाम्नापुरोहितेन श्री कुटकेश्वरमाराध्य पुन सजीवित.।"

और देखो परमार प्रह्लादनदेव-रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' की चिमनलाल डी० दलाल-लिखित अंग्रेजी भूमिका, पृ० ४ (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज मे प्रकाशित)।

२ यह लेख गत अक्टूबर मास के अन्त मे नवी गुर्जर साहित्य-परिषद (नडियाद) मे पढे गये मेरे गुजराती निबंध का हिन्दी अनुवाद है।

सम्पादकीय टिप्पण

1 यह शिलालेख वि० सं० १३५८ माघसुदि १० का है (देखो 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शोर्षक निबन्ध, पृ० ६३ टिप्पण ।) संभव है विशाल-भारत मे निबंध छपते समय लेखक या प्रूफरीडिग की असावधानी से यह भूल रह गई हो ।

2 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक निबंध, काशी ना० प्र० पत्रिका (न० सस्करण) भाग ३, वि० सं० १६७६=ई० स० १६२२-२३ में प्रकाशित हुआ है । मूल लेख मे सं० १६७६, छापे के दोष से छपना संभव है ।

3 हस्तिकुंडी (हथुंडी) के वि० सं० १०५३ माघसुदि १३ शिलालेख के मूल श्लोक के अवतरण मे 'मेदमाटेभटाना' पाठ छपा है, वह अशुद्ध है, 'मेदपाटे-भटानां' पाठ होना चाहिये । सभव है विशाल भारत के अंक मे लेखक दोष या प्रूफरीडिंग की असावधानी से यह भूल रह गई हो ।

4 मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामंतसिंह का चित्तौड़ पर अधिक समय तक अधिकार रहा हो, ऐसा पाया नही जाता । मेवाड़ तथा बागड (डूंगरपुर-बांसवाड़ा) से गुजरात के सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय, भोला भीम) के समय के दानपत्र और शिलालेख मिले है, जिनसे स्पष्ट है वि०सं० १२६३ मे मेवाड़ को प्रसिद्ध और प्राचीन राजधानी आहाड़ पर गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव का आधिपत्य था, एवं बागड़ पर भी । कुंभलगढ़ की मामादेव की वि० सं० १५१७ की प्रशस्ति से प्रकट है की सामंतसिंह के पीछे मेवाड़ की गद्दी पर बैठने वाले कुमारसिह ने, जो सामतसिंह का भाई था, अपना राज्य गुजरात के राजा की कृपा से प्राप्त किया, जिसको नाडोल की चौहान शाखा के कीर्तिपाल (कीतू) ने छीन लिया था । इन बातो को देखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि सामंतसिह के मेवाड़ का राज्य त्याग करने के पीछे थोड़े ही समय बाद कुमारसिंह पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ, जिसमे मेवाड़ का राज्य उससे छीन लिया गया । फिर उसने गुजरात के सोलंकियो की सहायता से अपने राज्य का उद्धार किया, उस समय आहड़ आदि का शासन उसको गुजरात के सोलकियो को सौप देना पड़ा हो ।

सामंतसिंह और कुमारसिंह के पीछे मेवाड़ की गद्दी पर मथनसिंह, पद्मसिह और जैत्रसिंह क्रमशः बैठे । मथनसिह और पद्मसिंह का राज्य भी थोड़े ही वर्षो तक

रहा। जैत्रसिंह के प्राप्त शिलालेखो मे सब मे पहला शिलालेख वि० स० १२७० का है, अतएव वह इस संवत् के आस-पास मेवाड़ का राजा होना स्पष्ट है। कुंभलगढ की उपरोक्त प्रशस्ति बतलाती है कि सामन्तसिंह और कुमारसिंह, मथनसिंह तथा पद्मसिंह के भाई क्षेमसिंह के पुत्र थे, एव जैत्रसिंह, पद्मसिंह का पुत्र। मेवाड़के तेरहवीं शताब्दी मे होने वाले गुहिलवंशी राजाओ मे जैत्रसिंह बड़ा पराक्रमी राजा हुआ जिसने कुमारसिंह, मथनसिंह और पद्मसिंह के कंधो का गुजरात के सोलंकियो की अधीनता का जुड़ा उतार कर फैंक दिया और अपने उपर्युक्त चचाजाद भाई सामंतसिंह तथा कुमारसिंह की सोलंकियो तथा नाडोल के चौहानो द्वारा होने वाली पराजयो का उक्त दोनों राज्यो से बदला लेकर मेवाड़ को स्वतंत्र कर दिया, एवं वागड़ पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया और इसही समय चित्तौड़ पर भी जैत्रसिंह ने अपना अधिकार कर लिया और जैत्रसिंह ने चित्तौड़ पर अपना अधिकार किस वर्ष मे स्थापित किया, यह अनिश्चित् है; परंतु चीरवा गांव की वि० स० १३३० कार्तिकसुदि १ की महारावल समरसिंह (जैत्रसिंह का पौत्र) के समय की प्रशस्ति मे उल्लेख है कि उसने वहाँ का तलारक्ष (कोतवाल) मदन को नियत किया, जो टांटरड़ जाति के उद्धरण का प्रपौत्र था, एवं ये लोग मथनसिंह और पद्मसिंह के समय से ही नागदा के तलारक्ष होते आये थे, तथा उन्होने कई लड़ाइयो मे भाग लिया था।

———

५ चौलुक्य राजा भीमदेव (द्वितीय) के
गुहिलवंशी सामंत महाराजाधिराज अमृतपालदेव का
वि० सं० १२४२ का दानपत्र

उदयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध विशाल जलाशय जयसमुद्र (ढेबर) के सुदृढ़ बाँध के नीचे अनुमान आध मील पर वीरपुर नाम का गाँव है। वहाँ के ब्राह्मण किशनाके पास एक दानपत्र होनेकी सूचना मिलने पर मै वहाँ गया और उसकी छापे ले आया। अनंतर मैने उसका आशय अपनी राजपूताना म्यूजियम, अजमेर की ई० स० १९२९-३० की वार्षिक रिपोर्ट मे प्रकाशित किया[१]।

यह दानपत्र तांबेके दो पत्रो के एक ही तरफ खुदा हुआ है। प्रत्येक पत्र की लम्बाई १० इन्च और चौडाई १०½ इन्च है। पत्रोके किनारे कुछ मुड़े हुए है, जो सम्भवत: लेख को सुरक्षित रखनेके लिए ऐसे बनाये गये हो। दोनो पत्रे दो कडियोसे जुड़े हुए थे, जिन्हे अलग कर मैने उनकी छापे ली थी। प्रथम पत्रेमे बीस तथा दूसरेमे बाईस पंक्तियाँ है। अक्षर गहरे खुदे हुए है और उनका आकार औसत ⅜ इन्च का है। पत्रे साधारणतया अच्छी दशामे है, परन्तु दूसरे पत्रेकी पहली और दूसरी पंक्ति के कई अक्षर अस्पष्ट है।

लेख की भाषा संस्कृत और अक्षर नागरी हैं। लेख का अधिकांश भाग गद्यमे है। अंतिम भागमे तेरह श्लोक (पंक्ति २८ से ४०) तक है, जिनमे दान

---

१ पृष्ठ २-३ ।

देने और पालने वालेकी प्रशंसा एवं दान में दी हुई भूमिको छीनने अथवा ऐसा करने की अनुमति देने वालेकी निंदा है।

यह दानपत्र अशुद्धियोंसे परिपूर्ण है। कुछ अशुद्धियां खोदने वाले की अज्ञानता के कारण हुई है, जिनके शुद्ध रूप ताम्रपत्रोके अक्षरान्तरके नीचे टिप्पणो में दिये गये हैं।

लेखन शैलीके सम्बन्धमे निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य है–

सम्पूर्ण लेखमें 'ब'के स्थानमे 'व'का प्रयोग हुआ है। 'रेफ'के नीचेका व्यंजन बहुधा द्वित्व किया गया है, यथा-कार्त्तिक (पंक्ति २), मार्त्तंड (पं. ४), प्रवर्त्तमाने (पं. ६), पर्व्वणि (पं. १७), शासनपूर्व्वक: (पं. २४), पूर्व्वस्यां (पं. २४), स्वर्गे (पं. २६), पुण्यकर्म्माणौ (पं. ३२), म्स्वर्ग० (प. ३२), सुवर्ण्ण (पं. ३३), कृष्णसर्प्पा (पं. ३६), भूमिहर्त्ता (पं. ३७), निवर्त्तंते (पं० ३७), गर्त्ता (प० ३६) आदि। संधिके नियमोंका कही-कही पालन नही हुआ है, यथा अधिकेषु अंकतोपि (पं० १) श्रीउमा पति (पं० ३) मार्त्तंड अभिनव (पं. ४) आदि। अवग्रहका प्रयोग केवल दो स्थलो पर हुआ है, यथा–स्वहस्तोऽयं (पं. ४१ तथा ४२)।

पृष्ठमात्राका जगह जगह उपयोग किया गया है, यथा–शतेषु (पं. १), अधिके (पं० १), अंकतोपि (पं. १), वर्षे (पं. २), अद्येह (प २), परमेश्वर पं. २) आदि। 'इ' का प्राचीन रूप (॰ु॰) भी दो जगह पाया जाता है, यथा वइजा (पं १४) तथा इहहि (पं. ३७)।

दानपत्रका आशय नीचे लिखे अनुसार है–

ॐ स्वस्ति। विक्रम संवत् १२४२ कार्त्तिकसुदी १५ रविवारको, अणहिल-पाटकमें रहते हुए, परमेश्वर परमभट्टारक शकर के वरसे राज्य और लक्ष्मी पाये हुए, चौलुक्य कुलरूपी उद्यान के लिए सूर्यके समान, अभिनव सिद्धराज, श्रीमहाराजाधिराज श्रीभीमदेवके कल्याणकारी विजयराज्य मे, जब कि महामात्य श्री देवधर, श्रीकरण[1] आदि समस्त मुद्रा (=मोहरे) करता था; इस बड़े राजा (भीमदेव-

---

१ राज्य की अनेक मुद्राओंमें से एकमें 'श्री' खुदा रहता था, जिसके लगाने को 'श्रीकरण' कहते थे। यह मुद्रा मुख्य मानी जाती थी। उदयपुर राज्यमे प्राचीन प्रथाके अनुसार अन्य मुद्राओंके अतिरिक्त एक मुद्रामे 'श्री' भी रहता है, जो सनदोके सम्बन्धके कागजो पर लगाई जाती है।

द्वितीय) की कृपापर निर्भर रहनेवाले (=सामंत) महाराजाधिराज श्रीअमृतपालदेव का वागड़के वटपद्रकमंडल पर राज्य था। उस समय उसके नियत किये हुए महंत्तम केल्हण आदि पंचकुल[1] की अनुमतिसे, [यह] दानपत्र लिखा जाता है। श्री गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशमें भर्तृपट्टाभिधान (उपनाम[2]) वाले महाराजधिराज विजयपालके पुत्र महाराजधिराज श्री अमृतपालदेव पुरोहित पाल्हा, ज्योतिषी यशदेव, पंचकुल (पंचोली) महिदिग, ज्योतिषी आमदेव, प्रतिहार मदन,

---

१ 'पंचकुल' एक महकमा था, जिसमें पाच पुरुष नियत रहते थे और उनका मुख्य काम राजकीय कर आदि उगाहना था। उनका मुखिया राज्यका मत्री अथवा उसके समान उच्च अधिकार वाला व्यक्ति होता था। उसका प्रत्येक सभ्य 'पचकुल' कहलाता था। इससे ही 'पंचोली' शब्द बना है। राजपूतानेमे ब्राह्मण, महाजन, कायस्थ और गूजर, पंचोली पाये जाते है। उदयपुर और जोधपुर राज्योंमे कायस्थोंके लिए पचोली शब्दका प्रयोग होता है, जिसका कारण यह है कि कायस्थ लोग अधिकतर पचकुल आदि राजकीय पदो पर नियुक्त होते थे ।

२ यह उपनाम ऐसा ही है, जैसा कि आजकल पाये जानेवाले शक्तावत, चूँडावत, सारंगदेवोत आदि है, जिनका आशय शक्तिसिंहका वशज, चूँडाका वशज और सारगदेवका वशज है। भर्तृपट्टाभिधानका अर्थ भर्तृपट्ट (भर्तृभट) का वशज है। यह महाराजाधिराज विजयपालका दूसरा नाम नही है, इंगणोदा (देवास छोटा) से मिले हुए वि० स० ११६० के शिलालेख मे महाराजाधिराज पृथ्वीपाल को भर्तृपट्टाभिधान कहा है (इडियन एन्टीक्वेरी, जिल्द ६, पृष्ठ ५५)। इसी प्रकार ठाकरडा (वागड, डूंगरपुरराज्य) मे मिले हुए वि० म० १२१२ के शिलालेख में भी उसे भर्तृपट्टाभिधान कहा है (इडियन एटिक्वेरी, जि० ५६७1 पृ० २२६)। इन दोनो लेखोंमे भर्तृपट्टाभिधान वाले राजा का वंश परिचय नही दिया है, किन्तु वीरपुरके इस दानपत्रमें उसे स्पष्ट रूप से गुहिलदत्त (गहलोत) वशी लिखा है। ठाकरडा और इगणोदा उस समय गुहिलवशियोके अधिकार मे थे। भर्तृपट्ट मेवाडके गुहिलवशी राजा खुंमाण (तीसरे) का पुत्र और अल्लटका पिता था। उसके समयके दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० स० ६६६ तथा १००० के हैं (मेरा उदयपुर राज्यका इतिहास, जि० १, पृ० १२१)। नामोंमें समानता होनेके कारण पहले मैंने भर्तृपट्टाभिधान वाले राजाओ को ग्वालियरके कछवाहे राजाओंका और पीछेसे कन्नौजके प्रतिहार राजाओंका वंशज मान लिया था; परन्तु प्रस्तुत दानपत्रके मिल जानेसे अब यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि वे मेवाडके गुहिलवंशी भर्तृपट्टके वंशधर थे।

मंगडेश्वरी मंदिरके भट्टारक मुनिभद्र, जल्हण, वटपद्रकके रहनेवाले सेठ सुपट, सेठ साढा सेठ धांधलके पुत्र सेठ सावंत, सेठ केसरीके पुत्र केल्हा, नायक[1] लाखूके पुत्र सहदेव, नायक[2] जोहड़,नायक वागड़सीह,नायक लखमणके पुत्र नरपति,भामद्रंती[3] ग्राम-निवासी द्रांगिक[2] सहजाके पुत्र द्रांगिक[4] साढा, मच्छिद्र ग्राम-निवासी द्रांगिक रणसीहके पुत्र द्रांगिक जयदेव, मुगहड ग्राम-निवासी पोपाके पुत्र वैजा झाडूली ग्रामीय द्रांगिक पाल्हा, गातउड ग्रामीय वोसाके पुत्र विसहरा, ठाकुर वासुदेवके पुत्र ठाकुर भालण, सेठ सलखण[3] तथावृद्ध अमात्यादिको बुलाकर सूचित करते है कि-हमने सूर्यग्रहणके पर्व पर पुण्यतीर्थमे स्नान कर; दो धुले हुए वस्त्र पहन; ग्रह, देवर्षि, मनुष्य और पितरो को तृप्त कर; चराचरके गुरु श्रीमहादेव और श्रीविष्णुकी आराधना और नमस्कार कर, इस जीवनको कमलके पत्ते पर स्थित जलकी बूंदके समान क्षणिक और ससारको असार समझ कर; माता, पिता एवं अपने कल्याण के हेतु तीन प्रवरवाले भारद्वाज गोत्रके रायकवाल जातिके ब्राह्मण यज्ञकर्त्ता ठाकुर शोभाके पुत्र मदनको,षट्पंचाशत मंडल[5]के गातोड़ ग्रामका ल्हसाडिया नामका एक अरहट, बाहरकी दो हलवाह भूमि तथा धान (चांवल) का खेत, दानपत्रके साथ संकल्प कर दिया है[4]। इसकी सीमा यह है-पूवमे ऊंबरुआ नामका रहट, दक्षिणमे गांव (गातोड), पश्चिममे ढीकोल नामका रहट और उत्तरमे गोमती नदी[5]। यह रहट तथा भूमि उपर्युक्त सीमा सहित, वृक्ष, घास, लकडी, तथा जल सयुक्त हमने

---

१ राजकीय पद । २ राजकीय पद ।

३ ताम्रपत्रमे आये हुए ये नाम साक्षीरूप हैं। वागड (डुंगरपुर) मे ऐसी प्रथा पहलेमे चली आती है और अब तक भी किसी कदर जारी है कि दानपत्रोमे कुछ प्रसिद्ध नागरिकों आदिके नाम साक्षी रूपमे अवश्य रहते हैं।

४ वि० स० १२४२ ज्येष्ठवदि ३० (ई स. ११८५ ता. १ मई) बुधवारको सूर्यग्रहण था। उस समय किये हुए भूमिदानका यह दानपत्र है। प्राचीन कालमे ऐसी भी प्रथा थी कि दान का संकल्प तो ग्रहण अथवा किसी पर्व आदिके समय पर कर दिया जाता था, परन्तु दानपत्र पीछेसे सुविधानुसार लिखा जाता था।

५ गोमती नदी पहले गातोडके पास होकर बहती थी। जयसमुद्र (ढेबर) का बाध बध जाने पर यह उसी विशाल जलाशयमें लुप्त हो गई।

[दानमे] दी है, सो हमारे वशवालो तथा दूसरो को पालना चाहिये। भगवान् व्यासने कहा है कि-सगर आदि अनेक राजाओं ने पृथ्वीको भोगा है। जब-जब जिसकी पृथ्वी रही है, तब-तब उसको इस (भूमिदान) का फल मिलता है (१)। पृथ्वीदेने का फल यह है कि स्वर्ग, कुबेरकासा कोष, राजसिंहासन, छत्र, गज, अश्व, रथ आदि वाहन, देनेवालेको प्राप्त होते है। (२)सूर्य, वरुण, वासुदेव, अग्नि और भगवान् महादेव भूमिदान देनेवालेका अभिनंदन करते है (३)। भूमिदान करनेवाला व्यक्ति राजा दिलीप और नहुप आदि दूसरे राजाओके साथ रहेगा (४)। भूमि आदि देनेवाला और उसका पालन करनेवाला-दोनो पुण्यकर्मी पुरुष निश्चय स्वर्गमे जाते है (५)। सब दानोका फल एक जन्म तक रहता है, किन्तु सुवर्ण, पृथ्वी और कन्यादान का फल सात जन्म तक रहता है (६)। जिसने भूमि दान की उसने मानो सुवर्ण, रजत,वस्त्र, रत्न और संपत्ति ये सब दिये (७) ।भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष तक स्वर्गमे वास करता है और उसका हरण करने वाला अथवा ऐसा करने की अनुमति देने वाला उतने समय तक नर्क मे रहता है (८)। अपनी दी हुइ अथवा दूसरोकी दी हुई भूमिको छीननेवाला सौ बार ख6ानकी योनि भोग कर चाडालोमे जन्म लेता है (९)। भूमिदानकोलोपनेवाला, जलविहीन विंध्याटवीके सूखे वृक्षके कोटरमे रहनेवाला काला सर्प होता है (१०)। पृथ्वी छीननेवाले, कृतघ्न, पाकभेदी और भूमिदानको हरण करनेवालेकी नर्कसे कभी मुक्ति नही होती (११)। यह जीवन बादल की लीलाके समान चंचल और इस ससारके सब सुख तिनकेके समान सारहीन होनेसे, यहा बुरी इच्छावाला नर्कके गहरे खड्डे मे पडनेको तत्पर दुष्ट पुरुष ही ब्राह्मणोको दानमे दी हुई भूमिका हरण करता है (१२)। अपने तथा अन्य वशवालो से मै प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे इस दानको न लोपे (१३)। हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्री अमृतपाल देव के। हस्ताक्षर महाकुमार श्रीसोमेश्वरदेव के। हस्ताक्षर पुरोहित पाल्हा पालापक के।

❀

प्रस्तुत दानपत्र मे जिन जिन स्थानो का उल्लेख आया है, उनका परिचय नीचे लिखे अनुसार है—

अणहिलपाटक—यह वर्तमान अणहिलवाड़ा (पाटण) है, जो बड़ोदा राज्यके अन्तर्गत है और सोलंकियोके समय उनकी राजधानी थी।

वागड़—डूँगरपूर और बाँसवाड़ा दोनो राज्योका सम्मिलित नाम वागड़ है। पहले यह एक राज्य था, परन्तु राजा उदयसिंहने अपने राज्यके पिछले दिनोमे उसके दो विभाग कर, माही नदीसे पूर्वका भाग अपने छोटे पुत्र जगमालको दिया और पश्चिमका भाग ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराजके लिए रक्खा; तब से वागड़ के दो राज्य हो गये।

वटपद्रक—यह वर्तमान बड़ोदा है, जो वागड़की प्राचीन राजधानी थी। बड़ोदा नामके एकसे अधिक नगर होनेके कारण वागड़का बड़ोदा बतलानेके लिए उसके साथ वागड शब्द जोड़ देते थे, ताकि भ्रम न रहे।

भामद्दंति[7] और **मच्छिद्र** गामोका ठीक पता नही लगता।

मुगहड—यह डूंगरपुर राज्यका मूंगेडा गाँव है।

झाडूली—यह वर्त्तमान झाडोल गाँव है, जो उदयपुर राज्यके अन्तर्गत जयसमुद्र के पास सलूम्बर ठिकानेमे है।

गातउड़—यह गाँव अब ऊजड़ हो गया है। यह वीरपुर गाँवमे, जहाँसे यह ताम्रपत्र मिला है, मिला हुआ था। वीरपुर गातोडके ऊजड होनेके बाद बसा है। यहाँके गातोड़जीका मन्दिर वीरपुर गाँव के पास विद्यमान है। इस मन्दिरमे नागराज (सर्प) की विशाल मूर्ति है, जिसको गातोडजी कहते है।

षट्पंचाशत् मंडल—इसको अब छप्पन कहते है। उदयपुर राज्यका जयसमुद्र के आसपास का प्रदेश अब भी छप्पन का परगना कहलाता है।

दानपत्रमे कई स्थलो पर सांकेतिक शब्दोका उपयोग हुआ है, जिनका आशय इस प्रकार है—

पुरो०=पुरोहित, पंच०=पचकुल; ज्योति०=ज्योतिषी; प्रती०=प्रतीहार; श्रेष्ठ०=श्रेष्ठि; उ०=उत. पुत्र; नाय०=नायक; डंगी०=द्रांगिक; ठक्कु०=ठाकुर।



प्रस्तुत दानपत्रसे पाया जाता है कि वि० सं० १२४२ में गुहिलोत वंशके महाराजाधिराज श्री अमतपालदेवका वागड पर राज्य था और वह गुजरातके

चौलुक्य राजा भीमदेव (द्वितीय) का सामंत था। उस (भीमदेव) का वहाँ कैसे राज्य हुआ और अमृतपालदेव कौन था, इस पर कुछ प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

४

मेवाड़के स्वामी क्षेत्रसिंहके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह वहांका स्वामी हुआ। आबू परके देलवाडा गाँवके तेजपाल (वस्तुपालके भाई) के बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथके जैनमन्दिर के शिलालेखके रचयिता गूर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वरने लिखा है–'आबूके परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन की तीक्ष्ण तलवार ने गुजरात के राजा की उस समय सहायता की, जब उसका बल सामंतसिंहने रणक्षेत्र मे तोड़ा था[1]'। इससे स्पष्ट है कि सामंतसिंह ने गुजरात पर चढाई कर वहांके राजाको परास्त किया था। यह राजा कौन था, यह उक्त प्रशस्तिमे नहीं लिखा है। वही सोमेश्वर अपने 'सु र थो त्स व' काव्यमे अपने पूर्वज कुमार के प्रसंग मे लिखता है कि उसने कटुकेश्वर नामक शिव (अर्द्ध-नारीश्वर) की आराधना कर रणक्षेत्रमे लगे हुए अजयपाल राजाके अनेक घावों की पीड़ाको शांत किया[2]'। इससे अनुमान होता है कि सामंतसिह की लड़ाई इसी अजयपालसे हुई होगी, जो उसका समकालीन भी था। इस लड़ाई मे सामंतसिंह की शक्ति क्षीण हो गई और जब बदला लेनेके लिए गुजरातवालो ने उसपर चढ़ाई

---

१ शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्द्रिनिस्तृं (स्त्रिं) शधारो
धारावर्ष समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्य. । . .॥ ३६ [॥
सामंतसिंहसमितिक्षितिविक्षतौज श्रीगूर्ज्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासि ।
प्रह्लादनस्तदनुजो दनुजोत्तमारि चारित्रमत्र पुनरुज्ज्वलया चकार ॥ ३८ ॥
आबूकी वि० स० १२८७ की प्रशस्ति, एपिग्राफिया इन्डिका, जिल्द ८ पृष्ठ २११।

२ य शौचसंयमपट्ट कट्टकेश्वराख्यमाराध्य भूधरसुताघटितार्धदेवम् ।
ता दारुणामपि रणाङ्गणजातघातव्रातव्यथामजयपालनृपादपास्थत् ॥ ३२ ॥
काव्यमालामे छपा हुआ 'सुरथोत्सव' काव्य, सर्ग १५।

"सामंतसिंहयुद्धे हि श्री अजयपालदेव प्रहारपीडया मृत्युकोटिमायात. कुमारनाम्ना पुरोहितेन श्रीकट्टकेश्वरमाराध्य पुन स जीवित. ।" वही, टिप्पण ५।

परमार प्रह्लादन रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' की चिमनलाल डी. दलाल लिखित अंग्रेजी भूमिका, पृ० ४ ('गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज' में प्रकाशित)।

की, तो उसे मेवाड़ को छोड़ना पड़ा। तब मेवाड़पर गुजरात वालोंका अधिकार हो गया[१] और नाडोलके चौहान राजा आल्हणदेवका तीसरा पुत्र कीतू (कीर्तिपाल) वहांका शासक नियत हुआ। कुछ समय पश्चात् सामतसिंह के छोटे भाई कुमारसिंह ने गुजरात के राजाको प्रसन्न कर मेवाड़का राज्य पीछा प्राप्त किया। कुम्भलगढके मामादेवकी वि० सं० १५१७ की महाराणा कुम्भकर्ण की प्रशस्तिमे लिखा है कि कुमारसिंह ने गुजरात के राजाकी कृपा प्राप्त कर कीतूको निकाला और आहाड़ (मेवाड़) का राज्य प्राप्त किया[२]। कीतू की मृत्यु वि० सं० १२३६ के पूर्व होनी चाहिये[३] अतएव इसके पूर्व ही किसी समय कुमारसिंहने मेवाड का राज्य प्राप्त किया होगा।

मेवाड़ का राज्य खो कर सामंतसिंह ने वागड मे नया राज्य कायम किया। गुजरातके राजा (भीमदेव द्वितीय) ने वहाँ भी उसका पीछा कर उसे वहांसे निकाल दिया और उसके कुटुम्बी महाराजाधिराज विजयपाल अथवा उसके पुत्र अमृतपालदेवको वागड़का राज्य दिया, जैसा कि प्रस्तुत दानपत्रसे स्पष्ट है। सामंतसिंहके

---

१२ मेवाड पर गुजरात वालोका अधिकार होगया था, यह आबूके शिलालेखसे स्पष्ट है–

सामंतसिंह नामा। . . . ॥ ३६ ॥

षो (खों) माणसततिवियोगविलचलक्ष्मीमेनामदृष्टविरहा गुहिलान्वयस्य।

राजन्वतीं वसुमतीमकरोत्कुमारसिंहस्ततो रिपुगतामपहृत्य भूय ॥ ३७ ॥

इंडियन एन्टिक्वेरी, जिल्द १६, पृष्ठ ३४६।

१३ सामतसिंहनामा भूपतिर्भूतले जात ॥ १४६ ॥

भ्राता कुमारसिंहोभूत् स्वराज्यग्राहिण पर।

देशान्निष्कासयामास कीतूसंज्ञ नृपं तु य ॥ १५० ॥

स्वीकृतमाघाटपुरं गूर्ज्जरनृपति प्रसाद्य ।

(कुमलगढका लेख, अप्रकाशित)

१४ जालोरसे मिले हुए वि० सं० १२२६[१] के शिलालेखसे पाया जाता है कि उस संवत्में कीर्तिपाल (कीतू) का पुत्र समरसिंह वहांका राजा था (एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११, पृ० ... पूर्व मर जाना निश्चित है।

राज्य समयके वि० स० १२२८[1] और १२३६[2] के दो शिलालेख मिले हैं। अमृतपालदेवको इस दानपत्रमे श्री गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशी भर्तृपट्टाभिधान महाराजाधिराज विजयपालका पुत्र लिखा है, अर्थात् वह मेवाड़के स्वामी भर्तृपट्ट (भर्तृभट) – जिसका परिचय ऊपर टिप्पणमे दिया है – का वंशधर था। स्पष्ट है कि वह मेवाड़ की छोटी शाखामे रहा होगा। उसका सामंतसिंहके साथ क्या सम्बन्ध था, इसका पता नहीं चलता। ठाकरड़ाके वि० सं० १२१२ के महाराज सुरपालदेवके शिलालेखमे उसे भर्तृपट्टाभिधान पृथ्वीपालदेवके पौत्र विजयपालदेवका पुत्र लिखा है [3]। संभवतः प्रस्तुत दानपत्रके अमृतपालदेवका पिता विजयपाल और सुरपालदेवका पिता विजयपालदेव एक ही व्यक्ति हों। ऐसी दशामे अमृतपालदेवको सुरपालदेवका भाई मानना पड़ेगा [4]।

---

१५ 'सवत् १३२८[10] वरिखे (वर्षे) फ (फा) ल्गुनसुदी ७ गुरौ श्री अंबिकादेवि (व्यै) महाराज श्री सामतसिंघ (ह) देवेन सुवर्न (र्ण) मयकलसं प्रदत्त [म्]।' (मेवाडके छप्पन जिलेके जगतगावके देवीके मंदिरके लेखकी छापसे)।

१६ संवत् १२३६ श्रीसावं (मं) तसिंह राज्ये। (डुंगरपुर राज्य के बोरेश्वर महादेव-सोलज गावसे डेढ मील दूर–के लेख की छाप मे।)

१७ 'ओं॥ सवत् १२१२ वर्षे॥ भाद्रपदसुदि १ रवि दिने समस्तराजावलीविराजितभर्तृपट्टाभिधान श्रीपृथ्वीपालदेव [व·] तत्सूनुमहाराजश्रीत्रिभुवनपालदेव [व] तस्य पुत्रो महाराजश्रीविजयपालदेव [व·] तस्य पुत्रो [त्र] महाराजश्रीसुरपालदेव।'

(इंडियन एन्टिक्वेरी; जिल्द ५६, पृष्ठ २२६)

१८ इंगणोदा तथा ठाकरड़ाके लेखों एवं वीरपुरके दानपत्रमें मिलनेवाली वंशावलिया–

इंगणोदा (स० ११९०)	ठाकरडा (सं० १२१२)	वीरपुर (स० १२४२)
पृथ्वीपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)	पृथ्वीपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)	
तिहुणपालदेव	त्रिभुवनपालदेव	
विजयपालदेव	विजयपाल	विजयपालदेव (भर्तृपट्टाभिधान)
	सुरपालदेव	अमृतपालदेव
	महाराजपुत्र अनंगपालदेव	महाकुमार सोमेश्वरदेव

अमृतपालदेवका वि. सं. १२५१ का एक लेख, बड़ोदा गांवके बाहरकी एक हनुमानकी प्राचीन मूर्तिके आसन पर खुदा हुआ मिला है[1]। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक तो उसका वहां राज्य था। डूंगरपुरके बड़ा दीवड़ा गांवके शिव-मन्दिरकी मूर्तिके आसन पर, वि. सं. १२५३ (ई. स. ११९६) का महाराजा भीमदेव (द्वितीय) का लेख है,[2] जिससे ज्ञात होता है कि उक्त संवत् तक तो वागड़ पर भीमदेवका अधिकार था। डूंगरपुरके बड़वेकी ख्यातमे सामंतसिंहके बाद सीहड़देवका नाम मिलता है, जिसका सबसे पहला लेख वि. सं. १२७७ (ई. स. १२२०) का मिला है[3]। उक्त लेख में उसके पिताका नाम नही है, परन्तु जगत गांवके माताके मंदिरके एक स्तम्भ परके वि० सं० १३०६ (ई० स० १२५०) के लेखमे उसके पिताका नाम जयसिंह[11] लिखा है[4]। इसकी पुष्टि डूंगरपुरके बनेश्वर के पासके विष्णु मदिरकी आषाढ़ादि वि. सं. १६१७ (चैत्रादि १६१८) की महारावल आसकर्णकी प्रशस्ति[5] तथा वहांके गोवर्द्धननाथके मदिरकी आषाढ़ादि

---

१ 'संवत (त्) १२५१ वर्षे माहा (माघ) वदि १ सोमे राज अमृतपालदेव वज्य (विजय) राज्ये' [मूल शिलालेखकी छाप से]।

२ 'सं० १२५३ वर्षेऽद्येह महाराजश्रीभीमदेवविजयराज्ये ···· उव्वणके श्रीनित्यप्रमोदित (तं) ··· महं [०] एल्हासुतवइजाक [·] प्रणमति नित्यं। प्रतिमा कारपिता।'

[मूल लेखकी छापसे]।

३ 'सवत् १२७७ वरिषे (वर्षे) चैत्रसुदि १४ सोमदिने विशाष (खा) नक्षत्रे श्रीअंबिकादेवी (व्यै) महाराऊ (रावल) श्रीसीहडदेवराज्ये महासां० (=साधिविग्रहिक) वेल्हणक राण (गणकेन) रउणीजाग्रामं। [मूल लेखकी छापसे]।

४ 'ॐ॥ सवत् १३०६ वर्षे फागुण (फाल्गुन) सुदि ३ रविदिने रेवति (ती) नक्षत्रे मीन स्थिते चंद्रे देवी अंबिका [यै] सुवंन (सुवर्ण) डं (दं) ड (डं) प्रतिठि (ष्ठि) त (तं)। गुहिलवंसे (शे) रा० (=रावल) जयतसी (सिं) ह पुत्रसीहड पौत्र जयस्यंघ (सिंह) देवेन काराপित।'

[मूल लेखकी छापसे]।

५ 'सामतसी (सिंह) रा० (=रावल) ३१ जीतसी (जयतसिंह) रा० ३२ सीहडदे (देव) रा०।'

[मूल प्रशस्तिकी छापसे]।

वि. सं. १६७६ (चैत्रादि १६८०) की महारावल पुंजराजकी बृहत् प्रशस्ति[१] से भी होती है। जयसिंह कब तक जीवित रहा और उसने वागड़का राज्य वापस लिया या नही, इसके विषयमे निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु इतना तो निश्चित है कि वि० सं० १२५३ के पश्चात् और वि० सं० १२७७ के पूर्व किसी समय सामंतसिंह के पुत्र जयसिंह अथवा पौत्र सीहड़देव ने वागड़ का राज्य पीछा लिया होगा।

ताम्रपत्र पर का मूल लेख

प्रथम पत्र

१ ॐ।। श्वस्ति[२] श्री नृपविक्रमकालातीतसंवत्सरद्वादशशतेषु द्विचत्वारिंशदधिकेषु अंकातोपि[३] ।।

२ संव [त्] १२४२ वर्षे कार्तिक सुदि १५ रवावद्येह श्रीमदणहिलपाटका [धिष्ठि] तपरमेश्वरपरमभट्टा-

३ रकश्रीउमापतिवरलब्धप्रसादराज्यराजलक्ष्मीस्वयवरप्रौढप्रतापश्रीचौलुक्यकुलोद्या-

४ नि[४] मार्त्तंड अभिनवसिद्धराज श्रीमहाराजाधिराज[५]श्रीमद्भीमदेवीयकल्याण-विजयरा-

५ ज्ये तत्पादपद्मोपजीविनमहामात्यश्रीदेवधरि[६]श्रीश्रीकरणादि[७]समस्त[८]मुद्राव्या पारान्[९]

६ परिपथयतीत्येवं कालु[१०]प्रपर्त्तमान[११] अस्य च परमप्रभो प्रसादपत्तलायां भुज्य-मान वा[१२]

७ वागडवटपद्रकमडले महाराजाधिराजश्रीअमृतपालदेवीयराज्ये तन्नियुक्तमहं ।।

---

१ '‥ ‥‥ सामतसिंहोस्य विभुर्विजग्ये (ज्ञे) ॥ ५३ ॥
सजि (जी) तसिंह तनय प्रपेदे य एव लोक सकलं वियग्ये (ज्ञे) ॥
तस्य सिंहलदेवोभूत् ‥ ‥‥ ‥ ॥ ५४ ॥
[मूल प्रशस्तिकी छापसे]

२ स्वस्ति. ३ अंकतोपि. ४ °कुलोद्यान°. ५ °धिराज°. ६ देवधरे. ७ श्रीकरणादि. ८ समस्त. ९ °व्यापारान्. १० काले. ११ प्रवर्त्तमाने.

८ केल्हणप्रभृतिपंचकुलप्रतिपत्तौ शासनपत्रमभिलिख्यते यथा ॥ श्रीगुहिलदत्तवंशे

९ श्रीमद्भर्तृपट्टाभिधान[1]महाराजाधिराजश्रीविजयपालसुतमहाराजाधिराजश्रीअमृतपा–

१० लदव[2] पुरो० पाल्हा ज्योति० यशदेव पंच० महिदिग ज्योति आमदेव स्थमि० रतन प्रती

११ मदना श्री [मं] गडेश्वरीयभट्टारक [मु] निभद्र० जल्हण तथा वटपद्रकवास्तव्य श्रे० सूपट श्रे०

१२ साढा श्रे० धांधल ठ० श्रे० सावंत श्रे० केशरि[4]सुत०[5] श्रे० केला नाय० लाखु सुत सह–

१३ देव नायक जोहड नायक वागडसीह नायक लखमणठ० नायक नरपतिभा भट्टं [ति] ग्रा–

१४ मीय डगी[6] सहजा ठ० द्रगि साढा मच्छिद्रहग्रामी० द्रं [गि०] रणसीह सुत०[7] द्रगि०[8] जगदेव

१५ मुगहडग्रामीय[9] पोपा ठ० वइजा झाडउलि ग्रामीय द्रगि०[10] पाल्हा । गातउडग्रीमीय[11] वो–

१६ सा सुत०[12] विसहरा ठकुर[13] वासुदेव सु० ठक्कु० भालण श्रे० सलषण[14] वृद्धामात्यदीश्च समा–

१७ हूय सवोधयत्यस्तु[15] वः संविदित यथा । यदस्माभिः सूर्यपर्व्वणि पुन्य[16]तीर्थोदकैः सुचि[17]स्ना–

१८ त्वा धौतवाससी परिधाय ग्रहमंत्रदेव[18]र्सि[19]पमनुष्यपिद्रन्[20] संतर्प्य चराचर [गु] रुं श्रीभवानीपतिं श्री–

१९ पतिं च समभ्यर्थ[21] नमस्कारं च विधाय नलिनीदलगेत[22]जललवतरलतरं जीवि–

---

१ °पट्टाभिधान. २ °पालदेवः. ३ केसरि. ४ बिन्दु निरर्थक है. ५ द्रंगि. ६ बिन्दु निरर्थक है. ७ द्रंगि. ८ ग्रामीय. ९ द्रंगि. १० ग्रामीय. ११ बिंन्दु निरर्थक है. १२ ठक्कुर. १३ सलखण. १४ संबोधयत्यस्तु. १५ पुण्य°. १६ शुची°. १७ देवर्षि. १८ निरर्थक अक्षर है. १९ °पितृन्. २० समभ्यर्च्य २१ °गतजल°.

२० तव्यमाकलय्य संसारासारतां विनि [ज्ञा] त्वा मात्र[1] पित्रोरात्मनश्च श्रेयसे

द्वितीय पत्र

२१ ································· ·· ········· ····· तृ प्रवराय भरद्वाजगो [त्रा]-

२२ य राय [क] वाला[2] [ज्ञा] तीय ब्रा [ह्मण[3]] ठकु०[4] सोभासुत ठकु०[5] मदना जाजकायाः[6] षट्पंचाशन्मंडले

२३ गातउडग्रामे ल्हिसाडियाभिधान अरघट्टमेकं[7] तथा वाह्यभूमीहलद्व [यसम] न्विता[8] चतुराघाट-

२४ सीमासमन्विता[9] सकेदाराः[10] शासनपूर्वकाः[11] उदकेन प्रदत्ता[12]। अस्याः घाटाः। पूर्वस्यां सीमा ऊंवरऊआ

२५ अरघट्ट[13]। दक्षिणायां[14]ग्रामेण सीमा। पश्चिमायां ढीकोलरघट्टसीमा। उतराया[15] गोमती नदी सीमा

२६ एतदरघट्ट[16] तथा भूमि च सतिष्टमान[17] चतुसीमापर्यंत[18] सवृक्षमाला-कुलं[19] सोद्र[20] सपरिकरं[21] सकाष्टतृ-

२७ णोदकोपेतं[22] नवनिधानसहितं[23] अस्मद्वसजै[24] रन्यैरपि[25] च पालनीयं[26]। यतः उक्तवान् भगवान् व्यासः

२८ वहुभि[27]र्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमी[28] तस्य तस्य तदा फल[29] ॥ भूमिद [15] त्रा[30] च

२९ चिह्नानि फल स्वर्गे वसेन्नर। शंखं भद्राशनं[31] छत्र गजाश्वरथवाहना[32]। २ आदित्यो वरुणो ये [16] [33]वा-

३० सुदेवो हुताशनः। शूलपाणिस्तु भगवान् अभिनदंति भूमिद ॥ ३ राजेन्द्रौ[34] दिलीपस्य नृगस्य नहु-

---

१ मातृपित्रो°. २ रायकवाल ३ ब्राह्मण. ४ ठक्कुर. ५ ठक्कुर. ६ याजकाय. ७ अरघट्ट एक.. ८ समन्वितः. ९ समन्वितः. १० सकेदारः ११ शासनपूर्व्वकः. १२ प्रदत्त. १३ अरघट्टः. १४ दक्षिणस्यां. १५ उत्तरस्या. १६ एत्र अरघट्ट. १७ चतुस्सीमा. १८ पर्यन्तः. १९ °मालाकुलः. २० सोद्रगः. २१ सपरिकर २२ °तृणोदकोपेत २३ °सहित. २४ वंशजै. २५ °रन्यैरपि. २६ पालनीय. २७ बहुभि°. २८ भूमि.. २९ फलम् ३० भूमिदानस्य ३१ भद्रासन. ३२ रथवाहनं ३३ वायु. ३४ राजेन्द्रस्य.

३१ षस्य च। अन्येषां च नरेंद्राणां भूमिदः संगमिस्यति[१] । ४ दाता पालयता
चैव [भूम्या] दीना च यो[२] नरौ [तौ]
३२ वुभौ[३] पुण्यकर्म्माणौ नियतौ[४] स्वर्ग्गगामिनौ । ५ सर्वेषामेव दानानामेक-
जन्मानुगं फलं। हाटकक्षि-
३३ तिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलं । ६ सुवर्ण्णं रजतं प्रस्त्र[५] मणिरत्नं वसूनि च।
सर्वमेतद्भवेद्दत्तं वसुधां
३४ यः प्रयच्छति ॥ ७ षष्टिवर्षसहस्त्राणि[६] स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः।आच्छत्ता[७]
वात्रुमंता[८] च तान्येव नरकं[९]
३५ व्रजेत्[१०] ॥ ८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुंधरां। [११]स्वानयोनिशतं
गत्वा चंडालेष्वपि[१२] जायते
३६ ९ विंध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः । कृष्णसर्प्पा प्रजायंते भूमिदानाप-
हारका॰ ॥ १०
३७ भूमिहर्त्ता कृतघ्नश्च पाकभेदी च यो नरः । नरकान्न निवर्त्तते भूमिदानापहा-
रकाः । ११ । इ-
३८ ह हि जलदलीलाचचले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये । अपरति[१३]
दु-
३९ राशः शासनं ब्राह्मणानां[१४] नरकगहनगर्त्तावर्त्तपातोत्सुको यः ॥ १२ अस्मद्वंशे
तु ये जाता
४० ये जाता चान्यवंशजा[१५] । तेषामहं करे लग्नो मम दत्तं न लोप्यतां ॥ १३
४१ स्वहस्तोऽयं महाराजाधिसुज[१६]श्रीअमृतपालदेवस्य ॥ स्वहस्तोऽय महाकुमार-
श्रीसोमेश्वरदेवस्य
४२ स्वहस्तोयं पुरो॰ पाल्हा पालापकस्य ॥ शुभंवतु[१७] ॥ मंगलं महा श्री ॥

भारतीय विद्या; बंबई, वर्ष२, अंक २।

[१ संगमिष्यति. २ यौ. ३ तावुभौ. ४ नियत. ५ वस्त्र. ६ सहस्त्राणि. ७ आच्छेत्ता. ८ चानुमंता च. ९ नरके. १० वसेत्. ११ श्वान. १२ चाण्डालेष्वपि. १३ अपहरति. १४ ब्राह्मणानां. १५ वंशजाः. १६ महाराजाधिराज १७ शुभ भवतु.

सम्पादकीय टिप्पण

1 इंडियन एंटिक्वेरी, जि० ५६७, पृ० २२६ मे, ५६७ अशुद्ध है। यहां केवल ५६ अर्थात् जि० ५६ होना चाहिये। क्योंकि इंडियन एंटिक्वेरी की जि० ५६ मे ही ठाकुरडा का लेख छपा है। संभव है ५६ के आगे ७ का अंक लिपि कर्त्ता अथवा मुद्रणकला दोष से छप गया हो।

2 नायक-यह शब्द पद विशेष का सूचक है। कालान्तर मे वह जाति वाचक भी बन गया है और सम्मान वाची भी, जिसका अर्थ मुखिया होगा।

3 भामद्रंती पाठ अशुद्ध है। मूल मे 'भाभद्रंती ग्राम' दिया है, संभव है 'भा'के आगे 'भ'के स्थान मे 'म'मूल लेखक के दोष अथवा छापे की भूलसे छपा हो।

4 द्रांगिक-यह शब्द भी किसी पद विशेष का ही सूचक है। वर्त्तमान'डांगी-जाति' (कृषक) और ओसवाल वणिक वर्ग मे 'डागी गौत्र' द्रांगिक शब्द का ही लौकिक रूप है।

5 षट्पंचाशत मंडल, मेवाड के छप्पन प्रदेश का सूचक है, जिसमे सलूंबर, चांवड आदि स्थानों का समावेश होता है। यही नही, मेवाड के मेवल प्रदेश से उसकी सीमा मिलती थी। तेरहवी शताब्दी विक्रमी मे उक्त प्रदेश वागड के राजाओ के अधिकार मे होकर उसको वागड वटपद्रक का भाग मानते थे।

6 सौ बार खान की योनि भोग कर चाडालो मे जन्म लेता है। यहा 'खान' शब्द अशुद्ध है। 'श्वान' शब्द होना चाहिये। सभव है मूल लेख के लिपिकर्त्ता अथवा छापे का ही यह दोष हो।

7 भामद्रंति शब्द अशुद्ध है,'भाभद्रंति'होना चाहिये, जैसा कि मूल मे है।

8 मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा क्षेत्रसिह का पुत्र सामंतसिंह नहीं, किंतु क्षेम-सिह का पुत्र सामन्तसिंह था। मूल लेख के लिपिकर्त्ता अथवा छापे के दोष से क्षेत्रसिंह नाम छपना पाया जाता है।

9 चौहानवंशी समरसिह का जालौर से प्राप्त लेख वि० सं० १२२६ का न होकर वि० सं० १२३६ का है। मूल लेख के टिप्पण मे १२२६ मूल लिपिकर्त्ता अथवा छापे की भूल से छपा है।

10 सामंतसिंह और अमृतपाल एक वंश के होने पर भी भिन्न २ शाखा के थे। उनमे कोई समीप का संबंध नहीं था।

11 जयसिंह के जगत गांव के वि० सं० १३०६ फा० सुदि १३ रविवार के लेख में सीहड़देव के पिता का नाम 'जयतसी' दिया है। अतएव यहां 'जयतसी' होना चाहिए।

12 यहां भी 'जयतसिंह' होना चाहिये, जैसा कि शिलालेखों के अवतरण मे है।

13 श्री ओझाजी ने यहाँ डूँगरपुर के महारावल पुंजराज के समय की वि० सं० १६७६ (चैत्रादि १६८०) की गोवर्द्धननाथ के मंदिर की वृहत् प्रशस्ति (श्लोक ५३) के आधार पर सामंतसिंह का पुत्र जयसिंह और पौत्र सीहड़देव होने का उल्लेख किया है, पर मूल प्रशस्ति के पाठ मे जितसिंह नाम है, जयसिंह नहीं। जितसिंह, जयतसिंह का ही सूचक है, जिसको जगत गाव के वि० सं० १३०६ के शिलालेख में सीहड़देव का पिता और जयसिंह का पितामह बतलाया है। संभव है इस निबंध को प्रेस में भेजते समय लिपिकर्ता की भूल से जयतसिंह के स्थान पर स्थान-स्थान पर जयसिंह लिखा गया हो अथवा छापे की भूलें हों।

डूँगरपुर के ऊपर गांव के जैन मंदिर की वि० सं० १४६१ वैशाखसुदि ५ शुक्रवार की महारावल प्रतापसिंह (पातारावल) के समय की प्रशस्ति (राजपूताना म्युजिअम अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट, ई० स० १६१५-१६, अंग्रेजी) मे लिखा है कि "गुहिल वंश मे बापा का पुत्र खुंमाण हुआ। उसके वंश मे वैरड, वैरिसिंह और पद्मसिंह राजा हुए जैत्रसिंह ने पृथ्वी (वागड) को विजय किया और सीहड के द्वारा वह राजन्वती हुई।"

बापा, खुम्माण, वैरड, वैरिसिंह, पद्मसिंह और जैत्रसिंह मेवाड के राजा हुए है, जैसा कि वहां से प्राप्त शिलालेखों से प्रकट है। मेवाड के उपरोक्त राजाओ के नाम उपर्युक्त प्रशस्ति में होने से यह स्पष्ट है कि डूंगरपुर का राजवंश मेवाड की शाखा है और पद्मसिंह के पीछे होने वाले मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह ने वागड को विजय कर सीहड़देव को वहा का राजा बनाया। मेवाड़ से मिले हुए वंशावली के शिलालेखो मे जैत्रसिंह को पद्मसिंह का पुत्र बतलाया है और उक्त प्रशस्ति में

भी पद्मसिंह का नाम होकर उसके बाद जैत्रसिंह का नाम दिया है, अतएव जैत्रसिंह को सामंतसिंह का पुत्र होने का कथन ठीक नहीं है और न सीहड़देव, सामंतसिंह का पौत्र हो सकता है।

वागड़ से प्राप्त शिलालेखों के आधार पर श्री ओझाजी ने डूंगरपुर, राज्य का संस्थापक मेवाड़ के राजा सामंतसिंह को माना है, जिसने गुहिलवंश की अहाड़ा शाखा का वहां पर राज्य स्थापित किया, किन्तु वहां के राजा सामंतसिंह के वंशधर नहीं है, यह उपरोक्त वि० स० १४६१ की प्रशस्ति से सिद्ध है।

यह माना जा सकता है कि सामंतसिंह ने वागड़ पर गुहिलवंश की अहाड़ा शाखा का राज्य स्थापित किया, जैसा कि वि० सं० १२२८ और १२३६ के शिलालेखो से प्रकट है। पर, सामंतसिंह उक्त राज्य का अधिक वर्षो तक उपभोग नही कर सका और गुजरात के सोलंकियो से उलझ गया, जिसमे वागड़ का राज्य उसके हाथ से छूट गया। कुंभलगढ़ की मामादेव की प्रशस्ति की तीसरी शिला मे उल्लिखित उसके चचेरे भाई जैत्रसिंह (पद्मसिंह का पुत्र) ने वागड़ का उद्धार कर अपने पुत्र सीहड़देव को वहा का स्वामी बनाया और सीहडदेव के वंशधर डूंगरपुर-बांसवाडा के राजा है।

ऊपरगाव की प्रशस्ति मे सामंतसिंह का नाम ही नहीं दिया, जिसका कारण यही जान पडता है कि उसका वश ही नहीं चला और लोग उसकी कथा को भूल गये। फिर पद्मसिंह के पुत्र जैत्रसिंह ने वागड का उद्धार कर अपने पुत्र सीहड़देव को वहां का राजा बनाया, जिसका वश क्रम पूर्वक चलता रहा, जिनका नाम प्रशस्ति मे देकर उन्होने वंशावली का क्रम पूरा किया। प्रशस्ति लेखको को आवश्यक्ता ही क्या रही, वह सामंतसिंह का वंश न चलने पर भी उसका नामोल्लेख करें। सतरहवी शताब्दी मे डूंगरपुर मे इतिहास की तरफ रुचि रखने वाले कुछ राजा हुए, जिन्होने इधर-उधर से भी वशावलियां मिली, उनका संग्रह करा प्रशस्तियां खुदवाई, तब उनको सामंतसिंह का नाम भी राज्य संस्थापक रूप मे मिल गया। वे उसके वंशधर नहीं होने पर भी उसकी स्मृति को नही भूले और उसका नाम भी अपने पूर्व पुरुषाओ के साथ जोड़कर जैत्रसिंह को सामंतसिंह का क्रमानुयायी बना उससे अपना संबंध बना रखा। उनके इस क्रम से इतिहास मे अधिक दोष तो नही आता, किंतु घटना क्रम बदल जाता है, जिससे आगे जाकर इतिहास

में अशुद्धि रह जाती है। यहाँ श्री ओझाजी को इस बात का श्रेय दिये बिना नहीं रहा जायगा कि सर्व प्रथम डूंगरपुर के राजवंश की वंशावली को शुद्ध रूप से प्रस्तुत करने वाले वे ही व्यक्ति हैं, जिन्होंने माहप-राहप की भाटों की कपोल-कल्पित कथा को निस्सार प्रमाणित की और अपने शोध से डूंगरपुर के राजाओं की शुद्ध वंशावली का रूप निरूपण किया।

14 ताम्रपत्र के मूल लेख के पाठ की ५ वीं पंक्ति मे 'श्री श्री करणादि' पाठ छपा है, और मूल फोटो में 'श्री श्री करणादि' ही पाठ है, जिसकी पाद टिप्पण में शुद्धि की गई है। संभव है एक 'श्री' श्रीकरणादि' पर मूल ताम्रपत्र के लेखक और खोदनेवाले के दोष से बढाई गई हो।

15 दानपत्र की पंक्ति २८ के पाठ मे 'भूमिदत्रा' छपा है। 'भूमिदात्रा' पाठ होना चाहिये।

16 दानपत्र की पंक्ति २६ के पाठ मे 'आदित्यो बरुणो ये' छपा है। 'आदित्यो वरुणोयेन' होना चाहिये।

17 दानपत्र के मूल पाठ की पंक्ति ४२ मे 'मंगल' के स्थान पर 'मंगलं' होना चाहिये।

६ राज्याभिषेक के समय पृथ्वीराज चौहान की अवस्था

'राजस्थानी' भाग ३, अंक २ (पृष्ठ १६–२०) में श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा ने अपने-'पृथ्वीराज-रासो और उसकी हस्त-लिखित प्रतियाँ'-शीर्षक लेख मे लिखा है—

"रासो की सबसे अधिक ऐतिहासिक आलोचना एवं परीक्षा श्रद्धेय ओझाजी महोदय ने की है, वह बहुत ही विद्वत्ता-पूर्ण है। पर हमारे खयाल से उनका यह लिखना कि 'सोमेश्वर के देहांत के समय (वि० सं० १२३६ में पृथ्वीराज बालक था, ठीक नही है, क्योंकि जिनपतिसूरिजी के शिष्य जिनपालोपाध्याय-रचित 'खरतरगच्छगुर्वावली' मे पृथ्वीराज की सभा में सं० १२३६ में श्रीजिनपति-सूरिजी एवं पद्मप्रभ का बड़ा शास्त्रार्थ हुआ, उसका विस्तार से वर्णन है। उससे प्रगट है कि उस समय के पूर्व तो उक्त महाराजा ने भद्दाणक-देश[1] को विजय किया था, और शास्त्रार्थ के समय मे भी उन्होंने जो कुछ संभाषण किया, वह युवावस्था का ही सूचक है, अतः स० १२३६ में उनको बालक कहना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। अतएव हमारी सम्मति में पृथ्वीराज का जन्म-संवत् १२२० माना जाता है, वह ठीक नही है। जन्म सं० १२१५ के लगभग होना चाहिए।"

राज्य प्राप्ति के समय सम्राट् पृथ्वीराज की आयु क्या थी, इसका निश्चय करना आवश्यक प्रतीत होता है।

---

1 'भद्दाणक' किसी प्रान्त का सूचक है। संभवतः 'भादरा' या 'भाद्राजूण' होना चाहिये। 'भादरा' बीकानेर में और 'भाद्राजूण' जोधपुर के अन्तर्गत है। पर उसकी स्थिति मरुभूमि में निश्चित है। स०टि०

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय के शिला-लेख वि० स० १२२६ फाल्गुनवदि ३, [१] वि० सं० १२२८ ज्येष्ठसुदि १०,[२] वि० स० १२२९ श्रावणसुदि १३ [३] और वि० सं० १२३४ भाद्रपदसुदि ४ [४] के मिले हैं। पृथ्वीराज के राजत्व-काल के शिला-लेख[1] वि० सं० १२३६ आषाढ़वदि १२ [५] वि० सं० १२३६ (चैत्रादि १२३७) प्रथम आषाढ़सुदि १० बुधवार [६] वि० सं० १२३९ [७], वि० सं० १२४४ श्रावण[८], वि० सं० १२४५[९] और वि० सं० १२४५ फाल्गुन सुदि १२ [१०] के के मिले है, जिनसे निश्चित है कि वि० सं० १२३४ भाद्रपद सुदि ४ और वि० सं०

---

१ बीजोल्यां (मेवाड़) का। जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल; जि० ५५, भाग १, पृष्ठ ४० और आगे।

२ धौड़-गाँव (मेवाड़) का। एन्युअल रिपोर्ट ऑफ दि राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, ई०स० १९२२-२३, पृष्ठ २, लेख-संख्या ३।

३ धौड-गाँव (मेवाड़) का। एन्युअल रिपोर्ट ऑफ दि राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, ई०स० १९२२-२३, पृष्ठ २, लेख-सख्या ४।

४ आमलदा-गाँव (मेवाड) का। वही, ई०स०१९२२-२३, पृष्ठ २, लेख-सख्या ५।

५ लोहारी-गाँव (मेवाड़) का। वही; ई०स०१९२२-२३, पृष्ठ २-३, लेख-संख्या ६।

६ पोकरण फलोदी का। मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खड, पृष्ठ ४३।

७ मदनपुर (मध्य-प्रान्त) का। कनिंगहाम; रिपोर्ट ऑफ् दि आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ् इंडिया, जि० १०, पृष्ठ ९८, प्लेट ३२।

८ बीसलपुर (जयपुर-राज्य) का। वही: जि० ६, पृष्ठ १५६, प्लेट २१।

९ बाजटा (ठिकाना सावर, जिला अजमेर) का। एन्युअल् रिपार्ट ऑफ् दि राजपूताना म्यूजि-यम, अजमेर; ई० स० १९१२-१३; पृष्ठ २, लेख-सख्या १।

१० आमलदा-गाँव (मेवाड) का। अप्रकाशित।

---

1 महाराजा पृथ्वीराज के प्राप्त शिलालेखो मे सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १२३४ चैत्रसुदि ... का है, जो अजमेर के निकट वर्ती बरला गांव की एक बावड़ी मे लगा हुआ था। यह शिलालेख राजपूताना म्युजिअम् अजमेर मे सुर-क्षित है, एवं उसमे दिया हुआ संवत् चैत्रादि वि० सं० १२३५ होना सभव है।

स० टि०

१२३६ भाद्रपदवदि १२ के बीच किसी समय सोमेश्वर का स्वर्गवास और पृथ्वीराज का राज्याभिषेक हुआ होगा[1]। शंकर पांडुरंग पंडित के 'प्रबंध-कोष' की एक प्राचीन प्रति के अंत की पुष्टिका मे चौहानों की हम्मीर तक वंशावली दी है। उसमे पृथ्वीराज के राज्याभिषेक का संवत् १२३६[1] दिया है, जो शिला-लेखों से भी मिल जाता है।

वि०सं० १२३६ मे पृथ्वीराज की अवस्था क्या थी ?

पृथ्वीराज के आग्रह से[2] ही वि०स० १२४८ के आस-पास काश्मीर के

---

१ शंकर पाडुरंग पंडित- संपादित 'गउडवहो' की अँगरेजी-भूमिका ; पृष्ठ १३६ ।

२ गतस्पृहोऽप्यादिकवि-प्रबन्ध
बबन्ध रामस्य भविष्यतोऽपि ;
सम्मान्यमानस्तु नरेश्वरेण
मादृक्कथं काव्यविधावुदास्ताम् ।

(पृथ्वीराज–विजय–महाकाव्यम , प्रथम सर्ग, पृष्ठ १३, श्लोक ३१ (हमारे यहाँ मे प्रकाशित सस्करण) ।

बाल्येऽपि लीलाजिततारकाणि
गीर्वाणवाहिन्युपकारकाणि ;
जयन्तिसोमेश्वरनन्दनस्य
षरण्मा गिरा शक्तिमतो यशांसि ।
(वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १४, श्लोक ३५)

---

१ महाराजा सोमेश्वर का अंतिम शिलालेख वि० सं० १२३४ भाद्रपदसुदि ४ और महाराजा पृथ्वीराज का सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १२३४ (चैत्रादि १२३५) चैत्रसुदि का मिला है, जिनसे स्पष्ट है कि वि० सं० १२३४ के भाद्रपद मास के पीछे और वि० स० १२३५ चैत्र सुदि के पूर्व, छः या सात मास के भीतर-भीतर सोमेश्वर का देहावसान होकर पृथ्वीराज का राज्याभिषेक हुआ हो। स०टि०

महाकवि जयानक ने 'पृथ्वीराज-विजय'[1]-महाकाव्य की रचना की, जो चौहानों के इतिहास के लिये परमोपयोगी है। उसमें दी हुई चौहानो की वंशावली आदि शिलालेखो से भी मिल जाती है। उसके आठवें सर्ग मे सोमेश्वर द्वारा बनवाए हुए मंदिरो आदि का उल्लेख करने के अनंतर उसकी मृत्यु के विषय मे लिखा है कि (देवालय आदि बनाकर) ऋण (देव-ऋण) मे मुक्त होकर परलोक को जीतनेवाला वह (सोमेश्वर) मेरा पिता अकेला स्वर्ग मे कैसे रहे, इस विचार से शीघ्र ही पिता का दर्शन करने को गया (मर गया), साथ मे उसको यह भी विचार रहा कि बालक पृथ्वीराज की मै उपेक्षा कैसे करूँ? इस वास्ते उस (पृथ्वीराज) को राज्य देकर उसकी रक्षा के लिये अपनी पतिव्रता रानी को नियत कर पितृ भक्ति के कारण वह स्वर्ग को सिधारा[2]।

---

१ ई० स० १८७५-७६ (वि० सं० १९३२) में प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता डॉक्टर बूलर को काश्मीर में हस्त-लिखित संस्कृत-ग्रन्थों की खोज करते समय जोनराज की टीका-सहित पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य की भोजपत्र पर शारदा-लिपी में लिखी हुई एक प्राचीन अपूर्ण प्रति मिली। उसके प्रारंभ के दो पत्रे (३ पृष्ठ) जाते रहे हैं, और बीच में कही-कही अधिक और कही-कही कम भोजपत्र के अंश नष्ट हो गए हैं। उसमें केवल १२ सर्ग तक का ही अंश किसी प्रकार बचने पाया है। उसमे कुल सर्ग कितने थे, यह दूसरी कोई प्रति उपलब्ध न होने से ज्ञात न हो सका। इस काव्य का जो कुछ अश बचने पाया है, वह भी चौहानों के इतिहास की अपूर्व सामग्री है और हमने जोनराज की टीका-सहित उसका सपादन किया है। मूल-पुस्तक इस समय पूना के भांडारकर ओरियंटल इ स्टिट्यूट में सुरक्षित है। इस अपूर्ण ग्रथ को भी बहुत उपयोगी समझकर दीवान बहादुर हरबिलास सारडा ने जर्नल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन (ई० स० १९१३, पृष्ठ २५९-२८१ तक) मे इसका अँगरेजी-साराश और प० शिवदत्त शर्मा ने 'नागरी--प्रचारिणी-पत्रिका' (नवीन सस्करण, भाग ५ संवत् १९८१, पृष्ठ १३३-१८३) मे इसका हिंदी-सारांश प्रकाशित किया है।

२ ऋणशुद्धिं विनिर्माय निर्माणैगीशै: पितु ;
तत्वरे दर्शनं कर्तुं परलोकजयी नृप ॥ ७१ ॥
ए[काकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदेवे कथम्,
बालश्च पृथिवीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ ७२ ॥
[इतीवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं व्रतचारिणीम् ;

सर्ग नौ के पहले श्लोक मे लिखा है कि राजा (सोमेश्वर) की रानी ने अपने पुत्र की राज्यलक्ष्मी को धारण किया[1]। उसी सर्ग में आगे यह भी लिखा मिलता है कि उसका निपुण मंत्री कादंबवास (कैमास) था, जो राज्य-कार्य चलाता था[2]। तदनंतर उस छोटे बालक के कमल-रूपी मुख का यौवन-श्री ने चुंबन किया, अर्थात् वह युवावस्था को प्राप्त हुआ[3]। इससे यह निश्चित है कि सोमेश्वर के देहांत के समय पृथ्वीराज बालक था, और गद्दी पर बैठने के बाद वह युवा हुआ।

स्थापयित्वा निजा देवीं पितृ (?)] भक्त्या दिवं ययौ ॥ ७३ ॥

(सर्ग ८)

ऊपर ब्रैकेट मे आए हुए अश द्वितीय 'राजतरगिणी' के कर्ता जोनराज की 'पृथ्वीराज-विजय' की टीका के आधार पर लिखे गए हैं।

१ इति हृद्गतेन द[यितेन रु] द्रतामुपजग्मुषा मुषितमोहदोहदा,
अपवर्गपद्धतिमिवात्तुपप्लवा तनयश्रियं नृपवधूरशिश्रियत् ॥ १ ॥

(सर्ग ९)

२ स कदम्बवास इति वामवादिमि
स्पृहणीयधीर्व्यसनमध्यपातिभ· ,
अवगाहते सहचरस्सुमन्त्रितां
परिरचितु क्षितिधरस्य सद्गुणान ॥ ३७ ॥

(सर्ग ९)

इसके आगे ४४वे श्लोक तक मंत्री कदबवास का ही वर्णन है।

३ सचिवेन तेन सकलासु युक्तिषु
प्रवणेन तत्किमपि कर्म निममे ,
मखपुष्कर शिशुमस्य यत् प्रभौ·
परिचुम्ब्यते स्म नवयौवनश्रिया ॥४४॥

(सर्ग ९)

इसमे पृथ्वीराज के लिए "शिशुनमस्य" व्यवहार किया गया है, जिसमे स्पष्ट है कि उसकी अवस्था बहुत छोटी रही होगी।

"श्रीयुत नाहटाजी लिखते हैं—'खरतरगच्छगुर्वावली' मे, महाराजा पृथ्वीराज की सभा मे, सं०१२३९ में, श्रीजिनपतिसूरि एव पद्मप्रभ के बीच बड़ा शास्त्रार्थ होने का विस्तृत वर्णन है, जिससे प्रकट है कि उस समय के पूर्व महाराजा पृथ्वीराज ने बड़ी भारी सेना के साथ भद्दाणक-देश विजय किया था। उनके अनुसार शास्त्रार्थ के समय पृथ्वीराज ने जो कुछ संभाषण किया, वह उसकी युवावस्था का ही सूचक है।" गुर्वावली जैन आचार्यों के गुण-गान का ग्रंथ है और उसमे दी हुई घटनाएँ धर्म-भावना-प्रधान होने से एवं वह ग्रंथ पृथ्वीराज के समकालीन लेखक का लिखा हुआ न होने से इतिहास के लिये सर्वतोभाव से ठीक ही है, ऐसा नही कहा जा सकता। राजा चाहे बालक हो, तो भी उसके मंत्री आदि कर्मचारी उसी के नाम से राज्य-कार्य चलाते, युद्ध करते और देश विजय करते रहे हैं, जो उसी राजा के नाम से ही अंकित किए जाते है। ऐसे कई उदाहरण प्राचीन इतिहास से मिल जाते है। गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल का देहांत वि० सं० १२३० मे हुआ। उसके पीछे उसका भतीजा अजयपाल गद्दी पर बैठा, जिसका देहांत वि० सं० १२३३ मे हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र मूलराज (दूसरा) हुआ, जो बाल्यावस्था[1] मे ही गद्दी पर बैठने के कारण 'बाल मूलराज' कहलाता है। उसका स्वर्गवास वि०सं० १२३५ मे होने पर उसका छोटा भाई भीमदेव गुजरात का राजा हुआ, जिसने वि.सं १२९८ तक राज्य किया। भीमदेव बालक[2] ही गद्दी पर बैठा था[3]। उपर्युक्त अजयपाल मेवाड़ के गुहिल-

---

१ धृतपार्थिवनेपथ्ये निष्क्रान्तेऽत्र शतक्रतौ ;
जयताभिनय चक्रे मूलराजस्तदग्रज ।
चापलादिव बालेन खिता समरागणे ,
तुरुष्काधिपतेर्येन विप्रकीर्णा वरूथिनी ।
(सोमेश्वर, कीर्ति-कौमुदी ; सर्ग २, श्लोक ५६-७)

२ मन्त्रीभिर्मण्डलीकैश्च बलवद्भि· शनै शनैः ,
बालस्य भूमिपालस्य तस्य राज्यं व्यभज्यत ।
(वही; सर्ग २, श्लोक ६१)

३ मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १ (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २४९ और २५६ में दिया हुआ गुजरात के सोलंकियो का वंश वृत्त ।

वंशी राजा सामंतसिंह के साथ की लडाई मे बुरी तरह घायल हुआ था। उसका बदला लेने के लिये गुजरात वालों ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर सामतसिंह से मेवाड़ छीन लिया, जिससे उसने बागड़ मे जाकर नवीन राज्य की स्थापना की, जो इस समय डूंगरपुर-राज्य कहलाता है। वहां भी गुजरात वालों ने उसे टिकने न दिया[१] और उसके कुटुम्बी विजयपाल के पुत्र अमृतपाल को वागड़ का राजा बनाया, ऐसा उक्त भीमदेव के वि० सं० १२४२ कार्तिकसुदि १५ रविवार के अप्रकाशित दानपत्र1 से (जो हमे मिला) निश्चित है[२]। सामंतसिंह को वागड़ से निकाला, उस वक्त भीमदेव बालक था, पर इसका श्रेय उसे ही दिया गया है। ऐसे उदाहरण, जैसा हम ऊपर लिख आए हैं, इतिहास में अनेक मिलते हैं, पर विस्तार-भय से यहाँ केवल एक ही दिया गया है। यही पृथ्वीराज की भद्दाणक की चढ़ाई के बारे मे भी कहा जा सकता है, क्योंकि अब तक कोई संवत् उपलब्ध नहीं हुआ। जिनपतिसूरि और पद्मप्रभ के बीच जो शास्त्रार्थ हुआ, उसमे पृथ्वीराज का सभाषण किसी अवस्था-विशेष का सूचक नही माना जा सकता।

ऐसी दशा मे हम पृथ्वीराज विजय-महाकाव्य का कथन ही ठीक मानते है, क्योकि वह समकालीन लेखक की रचना है। अतएव यह निश्चय-पूवक कहा जासकता है कि गद्दीनशीनी के समय पृथ्वीराज की बाल्यावस्था ही थी।

सुधा, लखनऊ (मा० प०) वर्ष १४, खंड १ स० ४।

---

१ वही, जिल्द ३, भाग १ (डूंगरपुर-राज्य का इतिहास; पृष्ठ ३४-३८ और ४४-५१)

२ इसके अधिकाश के लिये देखो मेरा डूंगरपुर-राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५० का टिप्पण १।

---

1 यह दानपत्र उदयपुर के जयसमुद्र (ढेबर) नामक विशाल सरोवर के निकटवर्ती वीरपुर नामक गांव से मिला है, जो गुहिलवंश की भटेवराशाखा के महाराज अमृतपालदेव का है। अमृतपाल, गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय, भोला भीम) का आश्रित था, एवं उस की कृपा से ही उसको गुजरात का राज्य मिला था, ऐसा उक्त दानपत्र से प्रकट होता है। यह दानपत्र गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय, भोला-भीम) का नहीं है। एवं अमृतपालदेव ने उस (भीमदेव) आदि के नाम कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए ही खुदवाये है। उक्त ताम्रपत्र 'भारतीय विद्या', बंबई (त्रैमासिक) भाग २, संख्या २, मे प्रकाशित होचुका है, जिसको इस निबंधसंग्रह मे संख्या ५ पर छापा है। स०टि०

७ राठौड़ और गहरवार

राठौड़ो और गहरवारों (गाहड़वालों) के सम्बन्ध मे एक भ्रांतिमूलक धारणा फैली हुई है, जिसका निराकरण करना आवश्यक है। कुछ लोगो का ऐसा मानना है कि, ये दोनो एक ही वंश के विभिन्न नाम हैं और एक ही जाति के सूचक हैं। इस धारणा की उत्पत्ति का मूल चन्द बरदाई-कृत 'पृथ्वीराज रासा' है, जिसमें उसने कन्नौज के राजा विजयचन्द्र को, जो गाहड़वाल थे, कमधज्ज तथा राठौड लिखा है।[1] उसके आधार पर कर्नल टॉड ने भी उक्त राजाओ को राठौड ही मान लिया[2] और वास्तविक इतिहास के अज्ञान मे भाटो आदि ने भी अपनी वंशावलियों आदि में उन्हे राठौड लिख दिया। परिणाम यह हुआ कि राजपूताने के वर्तमान राठौड़, भाटों आदि के कथन को प्रामाणिक मानकर अपने आप को गाहड़वाल जयचन्द्र का वंशज मानते हैं।

कुछ समय पूर्व तक मै भी टॉड के कथनानुसार राठौडो को गाहडवालो का ही वशज मानता था, पर क्रमश: इतिहास-क्षेत्र मे शोध की वृद्धि होने के फल-स्वरूप इस सम्बन्ध मे नई बाते प्रकाश मे आई, जिससे मुझे अपना पूर्व मत बदलने पर बाध्य होना पडा। टॉड कृत 'राजस्थान' के प्रकाश मे आने के बाद भारतीय विद्वानो मे भी इतिहास प्रेम की जागृति हुई और यहा के निवासियों में वास्तविक

---

१ कमधज्ज के लिए देखो—'पृथ्वीराज रासा' (नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित); समय ४५, पृष्ठ १२५५ और राठौड़ के लिए समय १, पृ० ५४ तथा समय ५५ पृष्ठ १४१७। ये दोनों शब्द 'पृथ्वीराज रासा' मे कई जगह आये हैं।

२ टॉड राजस्थान (ऑक्सफर्ड संस्करण), जिल्द १, पृष्ठ १०५।

इतिहास जानने की रुचि बढ़ी। शनैःशनैः शोध का कार्य आगे बढ़ा और कितने ही नये महत्व पूर्ण लेखों, ताम्र-पत्रों आदि का पता चला।

कन्नौज के राजाओ के पहिले के प्रकाशित ताम्र-पत्रो मे उनका वंश-परिचय नहीं दिया था, जिससे बहुत समय तक टॉड के कथनानुसार सब विद्वान उन्हें राठौड़वंश का ही मानते रहे, पर पीछे से राजा गोविन्दचन्द्र के कितने ही ऐसे ताम्र-पत्र मिले, जिनमें उसे गाहडवाल वंश का बतलाया है[1]। इसी प्रकार गोविन्दचन्द्र की राणी कुमारदेवी के शिला-लेख मे भी उन्हें गाहड़वाल ही लिखा है।[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल वंश के थे। इस ओर सर्व प्रथम विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय डाक्टर हॉर्नली को है, जिसने गाहडवालो को राठौडो से भिन्न बतलाने का प्रयत्न किया है।[3]

भाटो आदि का यह कथन है कि–जयचन्द्र आदि राठोड थे, प्रामाणिक नही माना जा सकता। इस बात के लिए 'पृथ्वीराज रासा' के अतिरिक्त उनके पास और कोई आधार नही है। यही कारण है कि उनकी वंशावलियो में दो नामों को छोड़ कर शेष सभी नाम और सम्वत् कल्पित दिये हुए है। जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का मछली शहर से वि० सम्वत १२५३ (ई० सन् ११९६) का दान-पत्र मिला है,[4] परन्तु भाटो की वशावलियों मे उसका नाम भी नहीं मिलता, जिसका कारण यही है कि उनकी वंशावलियाँ 'पृथ्वीराज रासा' के आधार पर ही बनी है, जिसमे उसका नाम नही है। वर्तमान रूप मे मिलने वाले विक्रम सं० की सोलहवीं सदी के आस-पास के बने हुए 'पृथ्वीराज रासा' के विषय मे यहाँ इतना कह देना अप्रासगिक न होगा कि, वह केवल कवि कल्पना है। उसमे दी हुई कुछ

---

१ बसही का विक्रम सवत् ११६१ ताम्र-पत्र (इण्डियन एटिक्वेरी जि० १४, पृष्ठ १०३), कमोली का वि० सं० ११६२ का ताम्र-पत्र (एपिग्राफिया इण्डिका जि० २, पृष्ठ ३५९), राहन का वि० सं० ११६६ का दानपत्र (इण्डियन एण्टिक्वेरी जि० १८, पृष्ठ १५) आदि।

२ एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ९, पृष्ठ ३२३।

३ इण्डियन एटिक्वेरी जि० १४ पृष्ठ ८९।

४ एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १०, पृष्ठ ९५।

घटनाएँ भले ही ऐतिहासिक हो, पर अधिकांश कल्पित ही हैं। फलतः प्रगतिशील इतिहास के लिए यह ग्रन्थ सर्वथा उपयोगी नही कहा जा सकता।

भाटों को वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण उनके प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी वर्णन अधिकांश अशुद्ध और काल्पनिक हैं। उन्होने गाहडवाल वंशियो को ही राठौड़ वशी लिखने मे गलती खाई, इतना ही नही, बल्कि उन्होने कई दूसरे वंशो का वर्णन भी ऐसा ही निराधार लिख दिया है। काठियावाड के गोहिल वस्तुतः मेवाड़ के सूर्यवंशी गुहिल राजा शालिवाहन के वंशज है और मारवाड़ के खेड इलाके से ही उधर गये हैं[१]। गिरनार (काठियावाड़) के यादव राजाओं के सम्बन्ध के विक्रम संवत् की पन्द्रहवी शताब्दी के आस-पास के बने हुए "मंडलीक-महाकाव्य" मे उन्हे सूर्यवंशी ही लिखा है,[२] पर भाटो ने उनको चन्द्रवशी तथा शक संवत् के प्रवर्तक शालिवाहन का जिसको जैन लेखक लकड़हारा[३] या कुम्हार का पुत्र[४] मानते हैं, वंशधर बना लिया[५]। पोरबन्दर (काठियावाड के जेठवा राजाओ को, जो कन्नौज के रघुवशी प्रतिहारो के वंशधर है, भाटो ने हनूमान

---

१ मुहणोत नैणसी की ख्यात जि० २, पृष्ठ ४५७–६०। कालीदास देवशंकर पड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती) पृष्ठ ३४६। अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पड्या; हिंद-राजस्थान (गुजराती) पृष्ठ ११३। मार्कण्ड एन० मेहता एण्ड मनु एन० मेहता, हिंद-राजस्थान (अंग्रेजी) पृष्ठ ४८७। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन सम्करण) जि० ३ पृष्ठ ३६१-२।

२ गंगाधर, मण्डलीक महाकाव्य, सर्ग ६, श्लोक २३। मूल अवतरण के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास' जिल्द २, पृष्ठ १३५५, टि० ३।

३ मेरुतुङ्ग, प्रबन्ध चिंतामणि (सातवाहन, शालिवाहन प्रबन्ध) पृष्ठ १०, निर्णयसागर संस्करण।

४ राजशेखर, चतुर्विंशति (प्रबन्ध कोष) पत्र ७३-८२। श्री हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली संख्या २०।

५ कालिदास देवशंकर पड्या, गुजरात राजस्थान (गुजराती) पृ० ३४६। अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या, हिंद राजस्थान (गुजराती) पृ० ११३। मार्कंड एन० मेहता एण्ड मनु एन० मेहता, हिंद राजस्थान (अङ्गरेजी) पृ० ४८७।

का वंशज माना है[१]। विक्रम सम्वत् की छठी से सौलहवीं शताब्दी तक सोलंकी अपने को चन्द्रवंशी मानते थे[२]। उनको भाटो ने अग्निवंशी लिख दिया[३]। मारवाड़ और कन्नौज के प्रतापी प्रतिहारो को, जो अपने को सूर्यवंशी लिखते रहे[४] तथा चौहानों को, जिनको बीसलदेव (चतुर्थ) के समय के चौहानों के इतिहास के शिलाओ पर खुदे हुए एक सस्कृत काव्य[५] तथा पृथ्वीराज (तृतीय) के "पृथ्वीराज विजय महाकाव्य[६]" मे सूर्यवंशी लिखा है, भाटो ने अग्निवंशी मान लिया[७]। अब ये सब अपने को, जैसा भाटों ने लिखा, वैसा ही मानने लगे है। भाटों की तैयार की हुई गाहड़वालों की वंशावली और सम्वन् कहाँ तक कल्पित हैं, यह नीचे दिये हुए नक्शे से स्पष्ट हो जायगा:—

जोधपुर राज्य की ख्यात से नाम	ख्यात मे दिया हुआ समय	ताम्रपत्रादि से नाम	ताम्रपत्रादि मे निश्चित ज्ञात समय
मेतुग	... ...	यशोविग्रह	.. ..
भरथ	वि. सं. ५१६-२६	महीचंद्र-महिपाल	... .
पुंज	... ..	चन्द्रदेव	वि० स० ११४८—५६
धर्म बभ	.. ...	मदनपाल	वि० सं० ११६३—६६
अभयचंद	... ...	गोविंदचन्द्र	वि० सं० ११७१—१२११
विजयचद	.. .	विजयचन्द्र	वि० स० १२२४—२५
जयचंद	वि.सं ११३२-८१	जयचन्द्र	वि० स० १२२६—५०
वरदाईसैन	.	हरिश्चन्द्र	वि.सं १२५३(जन्मवि.स १२३२)

---

१ गैजेटियर ऑफ दी बोम्बे प्रेसीडेंसी, जिल्द १, भाग १, पृ० १३५। कालीदास देवशकर पड्या, गुजरात राजस्थान, पृष्ठ २५३। अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिंद-राजस्थान; पृष्ठ १६५। मार्कंड एन० मेहता, हिंद राजस्थान, पृष्ठ ७०२।

२ देखो मेरा सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, भाग १, प्रकरण १, पृष्ठ १—१३।

३ पृथ्वीराजरासा, समय १, पृष्ठ ५४-५।

४ मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ७४-५।

५ मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, द्वितीय संस्करण ७२ और ७३ टि० १।

६ मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, द्वितीय संस्करण पृ० ७१ टि० १।

७ पृथ्वीराजरासा; समय, १ पृष्ठ ५४-५।

गाहड़वालों और राठौड़ों मे समानता का अनुमान करना निरा भ्रम ही है। हम ऊपर बतला आये हैं कि राष्ट्रकूटों (राठौड़ो) का बड़ा प्रतापी राज्य सर्व प्रथम दक्षिण में रहा[1]। दक्षिण का राज्य सोलंकियो द्वारा छीने जाने पर भी उनका कई जगह अधिकार बना रहा। दक्षिण, गुजरात, काठियावाड़, सौंदत्ति, हथूंडी, गया, बेतुल, पथारी, धनोप आदि से उनके शिला-लेख एवं ताम्र-पत्र मिले हैं[2]। उनमे उन्होने अपने आप को राष्ट्रकूट ही लिखा है। सौंदत्ति वाले अपने को बहुधा 'रट्ट' लिखते रहे, जो 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रकूट' (राठौड) का संक्षिप्त रूप है और दक्षिण के ताम्रपत्रो में भी कभी-कभी मिलता है। यदि गाहडवालों के साथ उनकी किसी प्रकार की भी समानता होती, तो इसका उल्लेख उन (राठौड़ो) के ताम्रपत्रो आदि में अवश्य होता। अथवा यदि गाहड़वाल ही अपने को राठौड़ों का वंशज मानते होते तो भी वे अपने ताम्रपत्रों आदि मे इसका उल्लेख गर्व के साथ अवश्य करते, क्योंकि राठौड़ वंश गाहड़वालो से अधिक प्रतापी रहा, जैसा कि उनके दक्षिण के इतिहास से स्पष्ट है।

जिन दिनो कन्नौज मे गाहड़वालों का राज्य था, उन्ही दिनो राष्ट्रकूटो की एक शाखा कन्नौज राज्य के अन्तर्गत बदायूँ मे राज्य करती थी, जिसका प्रवर्तक चन्द्र था। उसके तथा कन्नौज के गाहड़वाल चन्द्रदेव के नामों मे समानता होने के कारण कुछ लोगो ने दोनो को एक ही व्यक्ति मान कर उस (गाहडवाल चन्द्रदेव) के दो पुत्रों-मदनपाल एवं विग्रहपाल[3]-से क्रमशः कन्नौज और बदायूँ की शाखाओं का चलना मान लिया है, पर यह निर्मूल ही है। कन्नौज के चन्द्रदेव के लेख वि०सं०११४८ से वि०सं० ११५६ तक के[4] और उसके पुत्र मदनपाल के

---

१ देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द ४, भाग १, पृष्ठ ८८।

२ देखो मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द ४, पृष्ठ ८८– १३४।

३ विग्रहपाल कन्नौज के गाहडवाल चन्द्रदेव का पुत्र नहीं, किन्तु उससे भिन्न, बदायूँ के राठौड चन्द्र का पुत्र था। इन दोनों को एक ही व्यक्ति का पुत्र मानना सरासर गलती है।

४ डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, ए लिस्ट ऑफ दी इन्स्क्रप्शन्स ऑफ दी नॉर्दर्न इण्डिया संख्या १५४, १५७, १६२ और १६४।

वि०सं०११६१, ११६३ (११६४) और ११६६ के मिले है[1]। उधर बदायूँ के चन्द्रदेव के पाँचवें वंशधर मदनपाल के समय का एक लेख वि०सं० ११७६ का मिला है[2]। यह मदनपाल कन्नौज के चन्द्रदेव के दूसरे वंशधर गोविन्दचन्द्र देव का समकालीन था, जिसके वि०सं०११७६ के कई ताम्रपत्र मिले हैं।[3] इससे बदायूँ के चन्द्र का वि०सं० १०७६ मे विद्यमान होना निश्चित है। ऐसी दशा मे बदायूँ का चन्द्र और कन्नौज का चन्द्रदेव समकालीन एवं एक नहीं हो सकते। बदायूँ के चन्द्र को वहाँ के शिला-लेख मे वोदामयूता (बदायूँ) का पहिला राजा लिखा है[4] और गाहड़वाल चन्द्रदेव को उसके ताम्रपत्र मे गाधीपुर (कन्नौज) के राज्य को विजय करने वाला लिखा है[5]। इन विभिन्नताओं को देखते हुए तो यही अनुमान दृढ होता है कि ये दोनो एक नही, वरन् भिन्न २ व्यक्ति थे।

राजपूतों मे एक ही वंश मे परस्पर विवाह-सम्बन्ध नही होता। पहले भी राजपूताने मे कोई गाहड़वाल नही था और न अब है, पर संयुक्तप्रान्त मे गाहड़वाल और राठौड दोनो ही है। वहाँ के राठौड, राठौडो मे[6] और गाहडवाल, गाहड़-

---

१ उपर्युक्त संख्या १६८ और १७१।

२ आर्किआलाजिकल सर्वेऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिया (न्यू सीरिज़) जि० १ पृष्ठ ७१।

३ डा० देवदत्त रामकृष्ण भडारकर 'ए लिस्ट ऑफ दी इन्स्क्रप्शन्स ऑफ नार्दर्न इण्डिया' संख्या २०१, २०२ और २०३।

४ ' प्रख्याताकिल राष्ट्रकूट कुल जक्ष्मा पाल दोः पालिता। पाञ्चालाभिध देशभूषशकरी वोदामयूतापुरी॥ ···तत्रादितो भवदन्तु गुणो नरेन्द्र—श्चन्द्रः स्वखड्ग भयभीषित वैरीवृन्द।

—एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृष्ठ ६४।

५ आसीदशीतद्युति वशजातक्ष्मा पालमालासु दिवंगता सु। साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशो विग्रह इत्युदारः॥ तत्सुतो भून्महीचन्द्रश्चद्र धामनिभं निजम्। ·· ॥ तस्या भूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो विध्वस्तोद्धतधारियो धार्तमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृप.। ये नो···श्रीमद् गाधिपुराधिराज्यम समंदोर्विक्रमेणार्जितम्॥

—चन्द्रदेव के वि० स० ११४८ के दानपत्र से। (एपिग्राफिया इण्डिका, जि० ६, पृष्ठ ३०४।

६ ए० एच० बिंग्ले, राजपूतम् पृष्ठ १२१।

वालो मे [1]शादी नहीं करते, पर इन दोनों वंशो मे वहाँ परस्पर विवाह-सम्बन्ध होते है[2], जिसके कई ताजे उदाहरण भी विद्यमान है[3]। यदि गाहड़वाल और राठौड़ एक ही वंश के होते, तो ऐसा कभी न होता। इन दोनों वशो के गौत्र भी भिन्न हैं, पर गौत्र नये पुरोहित बनाने के साथ बदलते रहे हैं, जिससे इन पर विचार करना निरर्थक है।

गाहड़वाल राजपूताने मे आये हो, ऐसा पाया नहीं जाता। यदि वे राजपूताने में आये होते, तो उनकी बड़ी ख्याति हुई होती, परन्तु बाँकीदास के समय तक गाहडवाल भी राठौड़ हैं, ऐसा कोई मानता न था, क्योकि उसने राठौड़ो की शाखाओ और उप-शाखाओं के जो नाम दिये है, उनमे गाहड़वालो का नाम नहीं है[4]। अन्य ख्यातों आदि में न तो इनका अलग नामोल्लेख किया है और न इन्हे राठौड़ो की शाखाओ अथवा उपशाखाओ (खांपो) मे ही लिखा है। मुहणोत नैणसी की ख्याति में राठौड़ो के प्रसंग मे गाहडवालो का उल्लेख नही है[5], पर बुन्देलों के वृत्तान्त में उन्हे गाहड़वालों का वशज लिखा है[6]। पृथ्वीराजरासा' मे जहाँ छत्तीस राजवशों के नाम दिये है, वहाँ तो गाहड़वालों का नाम नहीं है, परन्तु आगे चल कर एक स्थल पर गाहडवालो का भी नामोल्लेख किया है[7]। टॉड ने

---

१ ए० एच० बिंग्ले, राजपूत्स पृष्ठ ७३।

२ ए० एच० बिंग्ले राजपूत्स पृष्ठ ७३, क्रुक, ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ दी नॉर्थवेस्टर्न प्रॉविंसेज जि० २, पृष्ठ ३७१। इलियट्, ग्लासरी (बीम्स) जि० १, पृष्ठ ४५ और १२१।

३ जुब्बल के राठौड़ राजा भगतचन्द की बहिन का विवाह वर्तमान ओरछा नरेश गाहड़वाल वीरसिंहजू देव के पिता स्वर्गवासी राजाबहादुर भगवतसिंहजू के साथ हुआ था। पुराहाट (चक्रधरपुर) के राठौड राजा नरपतिसिंह की पुत्री का विवाह रामगढ (पदमा) के स्वर्गवासी राजा दुर्गानारायणसिंह गाहड़वाल के साथ हुआ था। दुर्गानारायणसिंह के पुत्र राजा कामाख्यानारायणसिंह गाहडवाल इस समय विद्यमान हैं। ऐसे उदाहरण और भी मिलते हैं। —लेखक

४ कविराजा बॉकीदास; ऐतिहासिक बातें, सख्या १३५ और २३६।

५ मुंहणोत नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृष्ठ ४७।

६ नैणसी की ख्यात; जिल्द २, पृष्ठ २१२।

७ चन्देल बैस बांगरा सूर। चेरे सुमहस इक मल्हन न्र॥

अपने ग्रन्थ 'राजस्थान' में जहाँ राजपूतों के ३६ राजवंशों के परिशोधित नाम दिये हैं, वहाँ उसने इन दोनों को भिन्न माना है[1] और गाहड़वालों के विषय में तो यह लिखा है:—

'गहरवाल-राजपूत को राजस्थान में उसके राजपूत भाई कठिनता से जानते हैं, क्योंकि वे उसके अशुद्ध रक्त[2] को अपने मे मिलाना स्वीकार नही करेंगे, यद्यपि वीर योद्धा होने के कारण वह उनकी समानता के योग्य है[3]।'

प्रो० देवदत्त भंडारकर ने उत्तर भारत के शिलालेखों आदि की एक सूची प्रकाशित की है। उसमे उसने जयचन्द्र और उसके पूर्वजों के मिले हुए समस्त ताम्र-पत्रों आदि मे उनको गाहड़वाल ही लिखा है[4]। अब कोई पुरातत्व वेत्ता उनको गाहड़वाल मानने मे संकोच नहीं करता। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास लेखक वी० ए० स्मिथ ने स्वरचित 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थ मे इन दोनो जातियो को भिन्न माना है और लिखा है—"कन्नौज राठौड़ वंश कल्पना मात्र है। वहाँ के राजा गाहड़वाल अथवा गहरवाल जाति के थे, जैसा कि गोविंदचन्द्र के वि० स० ११६१ (ई० सन् ११०४) के बसाही के ताम्रपत्र से पूर्णतया स्पष्ट है

सोलंकी जद्दव सजि अनेक । सजि गहरवार गोहिल अनेक ॥

—पृथ्वीराजरासा, महोबा पृष्ठ २५०६ ।

१ टॉड राजस्थान जिल्द १ पृष्ठ ६८ के सामने का नक्शा ।

२ यह कर्नल टाड का भ्रम ही है, क्योंकि गाहड़वाल उच्चकुल के राजपूत हैं। कन्नौज का प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल थे। संयुक्त प्रान्त मे, जहाँ यह जाति अब तक विद्यमान है, उच्चकुल के शुद्ध राजपूत वंशों अर्थात् गौड, बैस, चन्देल, चौहान, राठौड, भदोरिया, कछवाहा, निकुंभ, पड़िहार आदि के साथ इनका विवाह सम्बन्ध होता है (कप्तान ए० एच० बिंग्ले, राजपूत पृष्ठ ७३, कप्तान लुअर्ड, सैन्ट्रल इण्डिया गैजेटियर सीरिज जिल्द ६ पृष्ठ १०, क्रुक, ट्राइब्स एण्ड कास्टस आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज, जिल्द २, पृष्ठ ३७१। इलियट् ग्लासरी, (बीम्स) जिल्द १ ,पृष्ठ ४५ और १२१)।

३ राजस्थान जिल्द १ पृष्ठ १३६।

४ डा० डी० आर० भंडारकर ए लिस्ट आफ दी इन्स्क्रप्शन्स आफ दी नार्दर्न इण्डिया संख्या १५४, १५७, १६२, १६४, १७१, १७४, १७८, १८५, १८७, १८८, १६२, १६३, १६५, २०१, २०२, २०३, २०५, २०७, २०६, २१७, २१८, २२१, २२७, २२८, २५१, २६२, २६६, २७१, २७६, २८१, ३३३, ३४५, ३६८, ३६६, ३७२, ३७४ ३७५, ३७८, ३८७, ३८८ ३८६, ४०६, ४३३ और १५२५।

और गौतम जाति की कथाओ से भी यही पाया जाता है। कन्नौज के राजाओं के साथ राठौड़ शब्द लगने का कारण मुख्यतया यह है कि जोधपुर के राठौड़ राजा अपने आपको राजा जयचन्द्र के वंश के एक बच कर निकले हुए बालक का वंशज मानते हैं। ऐसी बहुत सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, पर वे इतिहास के लिए सर्वथा निरुपयोगी है।"[1]

'मध्यभारत के विस्तृत गैजेटियर सीरीज' के कर्त्ता कैप्टिन ई० सी० लुअर्ड ने ओरछा राज्य के वृत्तान्त मे राठौड़ों और गाहड़वालों को भिन्न २ लिखा है[2] तथा डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी और डॉ० हेमचन्द्रराय ने भी इन दोनों वंशों को भिन्न ही माना है।

इन सब बातों पर विचार करने से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है कि वस्तुतः गाहड़वाल और राठौड़ दो भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं और इन मे परस्पर किसी प्रकार की भी समानता नहीं है। गाहडवाल एक अलग जाति है, जो सूर्यवशी[3] है, और राठौड़ इसके विपरीत चन्द्रवंशी है[4]। जैसा कि उनके शिलालेखो, दानपत्रो तथा प्राचीन पुस्तकों से निश्चित है। इनमे आपस मे विवाह सम्बन्ध होना भी इनके भिन्न होने का प्रबल प्रमाण है। राजपूताना के वर्तमान राठौडों के मूल पुरुष राव सीहा के मृत्यु स्मारक मे उसे राठौड ही लिखा है[5], तथा बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बीकानेर के क़िले की विक्रम सम्वत १६५० की बृहत् प्रशस्ति मे उसने अपने वश को राठौड़ वंश ही लिखा है। ऐसी दशा मे बुन्देलो के समान राजपूताना के राठौडो को गाहडवाल जयचन्द्रका वशधर मानने के लिए हम किसी प्रकार भी प्रस्तुत नहीं है। संभवत: राजपूताना के वतमान राठौड बदायूं के राठौडो के वशधर हो। राठौड सर्वत्र अपने लिये राष्ट्रकूट या राठौड ही लिखते रहे है। इसीलिए राठोड़ो के इतिहास मे हमने गाहडवालो का इतिहास दर्ज करना उचित नहीं समझा।

क्षत्रिय हितैषी, जयपुर, भाग २, खड २, सं० १२।

---

१ वी० ए० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (चतुर्थ संस्करण), पृष्ठ ३९१, टि० ५।

२ जिल्द, ६, ए०, पृष्ठ १०

३ देखो हमारा लिखा राजपूताने का इतिहास, जिल्द ४, भाग १, पृ० १४१, टिप्पणी २

४ देखो हमारा लिखा राजपूताने का इतिहास; जिल्द ४, भाग १, पृ० ८६।

५ इण्डियन एंटिक्वेरी, जिल्द ४०, पृष्ठ १८१, तथा ३०१।

८ काठियावाड़ के गोहिल*

मेवाड़ के राजवंश का संस्थापक गुहिल (गुहदत्त) हुआ, जिसके वंशजों को संस्कृत लेखों मे 'गुहिल', 'गुहिलपुत्र', 'गोभिलपुत्र', 'गुहिलोत' और गौहिल्य लिखा है तथा भाषा मे उन्हे 'गुहिल', 'गोहिल', गहलोत' और 'गैहलोत' कहते हैं। संस्कृत के 'गोभिल'[1] और 'गौहिल्य'[2] शब्दो का भाषा मे गोहिल रूप बना है।

काठियावाड़ के गोहिलों के दो प्राचीन शिलालेख मिले हैं, जिनमे से एक मांगरोल (काठियावाड़) मे सोढली वाव (वापी, बावली) में लगा हुआ वि०सं० १२०२ (वर्तमान) और सिंह संवत ३२ आश्विनवदि १३ सोमवार (ई०स०

---

१ अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्रन्तत्रा जनिष्ट नृपतिः किल हंसपाल. ।

मेराघाट का शिलालेख (ए०इ०, जि०२, पृ०११)।

२ यस्माद्धौ गुहिलवर्णनया प्रसिद्धा गौहिल्यवंशभवराजगणोऽत्रजातिम् ।

रावल समरसिंह की वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) की चित्तौड़ की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० ७५)।

---

* यह निबन्ध डा० ओझा के राजपूताना का इतिहास (जि० २, भाग ४, पृ०१३५०-५ और उदयपुर राज्य का इतिहास (जि० २ दसवां अध्याय, पृ० १०४०-४५) मे मुद्रित राजपूताने से बाहर के गुहिल (सीसोदिया) वंश के राज्य' शीर्षक प्रकरण के 'काठियावाड़ आदि के गोहिल' शीर्षक इतिवृत्त की प्रतिलिपि है, जिसको डा० ओझा ने उक्त इतिहास प्रकाशित होने के आस-पास ही सुधा पत्रिका, लखनऊ मे प्रकाशित करवाया था। (सं०टि०)

११४४ ता०२८ अगस्त) का है[1] और दूसरा मांगरोल के वास के घेलाणा गांव के कामनाथ के मन्दिर का वलभी संवत ६११ वि०सं०१२८७=ई०स०१२३० का[2] है।

पहले लेखका आशय यह है कि (सोलंकी राजा) सिद्धराज (जयसिंह) अपनी उत्तम कीर्ति से पृथ्वी को अलंकृत कर स्वर्ग को गया तो उसके राज सिंहासन पर कुमारपाल बैठा। गुहिल के वंश मे बड़ी कीर्तिवाला साहार हुआ। उसका पुत्र सहजिग (सेजक) चौलुक्य राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके बलवान पुत्र सौराष्ट्र (सोरठ) की रक्षा करने में समर्थ हुए। उनमे से वीर सोमराज ने अपने पिता के नाम पर सहजिगेश्वर नामक शिवालय बनाया, जिसकी पूजा के लिए उसके ज्येष्ठ भाई मुलूक (मूलुक) ने, जो सौराष्ट्र का शासक (हाकिम) था, शासन दिया अर्थात् राज्य के मांगरोल, चोरवाड़, वलेज, लाठोदरा, जूगटा, बंथली तालारा (तलोदरा) आदि स्थानों में उस मन्दिर के लिए अलग-अलग कर लगाये (जिनका विस्तृत वर्णन उस लेख मे है)। उक्त लेख में सहजिग और मूलुक के पूर्व 'ठ०' लिखा है, जो 'ठक्कुर' पदवी का सूचक है।

दूसरे शिलालेख से, जो वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) का है, पाया जाता है कि ठ० मूलु के पुत्र राणक (राणा) के राज्य समय वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) मे भृगुमठ मे देव पूजा के लिए आसन पट्ट दिया गया।

इन दोनो लेखो से निश्चित् है कि गुहिलवंशी (गोहिल) सेजक, सोलंकी राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके कई पुत्र हुए, जिनमे से दो के नाम मूलुक (मूलु) और सोमराज-उस लेख मे दिये है। मूलुक वि० स० १२०२ (ई० स० ११४४) मे सौराष्ट्र का शासक था। मुलूक का पुत्र राणक (राणा) हुआ, जो वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) तक जीवित था। उसके वंश मे भावनगर के राजा है।

---

१ भावनगर प्राचीन शोध संग्रह, भाग १, पृ० ५-७।

भावनगर इन्स्क्रिप्शन; पृ० १५८–५९।

२ भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १६१।

इन पुराने लेखो से यह स्पष्ट होता है कि काठियावाड़ के गोहिल गुहिलवशी हैं और वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के आस पास सोलंकी राजा सिद्धराज (जयसिंह) और कुमारपाल की सेवा मे रह कर सौराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी काठियावाड) पर शासन करते थे। उनके वंशज गोहिलो के राज्य अब भी काठियावाड मे हैं और उनके अधीन का काठियावाड का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा अब तक गोहिलवाड़ नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १६०० के पीछे भाटो ने अपनी पुस्तके बनाना शुरू किया और उन्होने अनिश्चित् जनश्रुति के आधार पर प्राचीन इतिहास लिखा, जिसमे उन्होंने कई राजवंशो का संबध किसी न किसी प्रसिद्ध राजा से मिलाने का उद्योग किया, कई नाम कल्पित धर दिये और उनके मन-माने संवत् लिख डाले, जिनके निराधार होने के कई प्रमाण मिलते है। ऐसे राजवंशों मे काठियावाड के गोहिल भी है। भाटो की पुस्तको के आधार पर लिखी हुई अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओ की पुस्तको में लिखा मिलता है "विक्रमादित्य को जीतने वाले पैठण (प्रतिष्ठान) नगर (दक्षिण मे) के चन्द्रवशी शालिवाहन के वंशज गोहिल है। उनका प्रथम निवास स्थान मारवाड़ मे लूनी नदी के किनारे जूना खेरगढ़ (खेड) था। उन्होने वह प्रदेश खेरवा नाम के भील को मार कर लिया और २० पुश्त तक वहां राज्य किया। फिर राठौडो ने उनको वहा से निकाल दिया[1]।"

उन्होने यह भी लिखा है, "राठौड़ सीहा ने गोहिल मोहदास को मारा, जिससे उसके बेटे झाझर के पुत्र सेजक (सहजिग) की अध्यक्षता मे वे ई० स० १२५० (वि० स० १३०७) के आस-पास सौराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी काठियावाड़) मे आये। उस समय राव महिपाल वहा राज्य करता था और उसकी राजधानी जूनागढ़ थी। उसने तथा उसके कुंवर खेगार ने सेजक को आश्रय दिया और अपनी सेवा मे रख कर शाहपुरा के आसपास के १२ गांव उसे जागीर मे दिये। फिर सेजक ने अपनी कुँवरी वालसवा का विवाह खेगार के साथ किया और महिपाल की आज्ञा से अपने नाम से सेजकपुर गाव बसाकर आसपास के कितने-

---

१ फॉर्ब्स, रासमाला; जि० १, पृ० २५६ (ऑक्सफर्ड संस्करण, ई० स० १६२४)।

एक गांव जीत लिये। सेजक की मृत्यु ई०स०१२६० (वि०स० १३४७) में हुई। उसके राणो, साहो और सारंग नाम के तीन पुत्र हुए। राणो के वंश में भावनगर के, साहो के वश में पालीताणा के और सारंग के वंश में लाठी के राजा हैं[१]।

भाटो की पुस्तकों के आधार पर लिखा हुआ उपर्युक्त कथन अधिकांश में कल्पित ही है। विक्रम को जीतने वाला एवं शक संवत् का प्रवर्त्तक, जो शालिवाहन माना जाता है, उसका राज्य कभी मारवाड़ में हुआ ही नहीं। वह तो दक्षिण के प्रसिद्ध पैठण नगर का राजा था। वह न तो चन्द्रवंशी और न सूर्यवंशी; किन्तु, आन्ध्र (सातवाहन) वंशी था। जैन लेखक, उसका जन्म एक कुम्हार (कुम्भकार) के घर में होना और पीछे से प्रतापी होना बतलाते है[२]। पुराणों में सूर्य और चन्द्रवंशो के अन्तर्गत उस वश का समावेश नहीं है। भाटों को इतना तो मालूम था कि काठियावाड़ के गोहिल शालिवाहन नामक किसी राजा के वशधर है, परन्तु किस शालिवाहन के, यह ज्ञात नहीं होने से उन्होंने दक्षिण के प्रसिद्ध शालिवाहन को उनका पूर्व पुरुष मानलिया। वास्तव मे जिस शालिवाहन को भाट लोग गोहिलों का पूर्वज बतलाते है, वह दक्षिण का आन्ध्रवंशी नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी नरवाहन का पुत्र शालिवाहन था। राजपीपला के गोहिलो के भाट की पुस्तक मे शालिवाहन के पुत्र का नाम नरवाहन लिखा है[३], परन्तु ये दोनो नाम उलट-पुलट है। खेड इलाके पर मेवाड के गुहिलवंशी राजाओ का अधिकार था, न कि आन्ध्र वंशियों का। भाटो की ख्यातो मे "गोहिल" नामकी उत्पत्ति के विषय मे कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु मांगरोल के उपरोक्त शिलालेख

---

१ अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पड्या, हिन्द-राजस्थान (गुजराती), पृ० ११३-१४। मार्कंड नदशंकर मेहता और मनु नदशंकर मेहता; हिन्दराजस्थान (अंग्रेजी); पृष्ठ ४८७-८८। वॉटसन्, बॉम्बे गेजेटियर, जि० ८, काठियावाड; पृ० ३८७-८८ (ई० स० १८८४ का संस्करण), नर्मदाशंकर लालशंकर, काठियावाड़ सर्व संग्रह (गुजराती), पृ० ५१२-१३। कालीदास देवशंकर पड्या, गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६-४७।

२ मेरुतुङ्ग, प्रबन्धचिन्तामणि; पृ० २४-३० (टिप्पण)।

३ बॉम्बे गेजेटियर, जि० ६, पृ० १०६ टिप्पण १ (ई० स० १८८० का (संस्करण)।

मे मे साहार और सहजिग का गुहिल वंशी[1] होना स्पष्ट लिखा है और ये ही गुहिलवंशी गोहिल नाम से प्रसिद्ध हुए।

राठौड़ सीहा-द्वारा खेड़ के गोहिल मोहदास के मारे जाने की कथा एवं उसके पौत्र (झांझर के पुत्र) सेजक का ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७) के आस पास सौराष्ट्र (सोरठ) में जाना और वि० स० १३४७ (ई० स० १२६०) मे उसकी मृत्यु होना भी कल्पित ही है; क्योकि सेजक (सहजिग) भाटों के कथनानुसार झांझर का पुत्र नही, किन्तु साहो (साहार) का पुत्र था और वि० स० १२०२ (ई० स० ११४४) के पूर्व ही उसका देहान्त हो चुका था। उक्त संवत मे तो उसका पुत्र मूलुक (मूलु) सौराष्ट्र मे शासन कर रहा था। राठौड़ सीहा की मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० स० ११७३) मे हुई, ऐसा उसके मृत्यु-स्मारक-शिलालेख से निश्चित है[2]। सीहा की मृत्यु से लगभग १२५ वर्ष पूर्व ही सेजक की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसी दशा मे सेजक के दादा का राठौड़ सीहा के हाथ से मारा जाना कैसे सम्भव हो सकता है।

सोरठ मे जाने पर जूनागढ के राजा महिपाल और उसके पुत्र खेंगार का सेजक को अपनी सेवा मे रखना और १२ गांव जागीर मे देना भी सर्वथा निराधार कल्पना है, क्योकि गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने वि० स० ११७२ (ई० स० १११५) के आस पास सोरठ पर चढ़ाई कर जूनागढ के राजा खेंगार को मारा और वहाँ पर अपनी तरफ का शासक नियत किया था, जो सभवतः सेजक ही होना चाहिए। उसके पीछे उसका पुत्र मूलु वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) मे सौराष्ट्र (सोरठ) का शासक था, जैसा कि ऊपर बतलाया जाचुका है। ऐसी स्थिति मे सेजक का महिपाल और खेंगार की सेवा मे रहना और उनसे जागीर पाने की बात भी कल्पित ही है।

भाटो का सेजक के तीन पुत्र पुत्र-राणो, साहो और सारंग- बतलाना भी गढ़न्त ही है, क्योंकि साहो (साहार) तो सेजक का पिता था और राणो (राणक)

---

१ राज्येऽमुष्य महीभुजो भव दिह श्रीगुहिलाख्यान्वये ।
श्रीसाहार इति प्रभूतगरिमाधारो धरामडनम् ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १५८ ।

२ इंडियन एन्टिक्वेरी, जिल्द ४०, पृ० ३०१ ।

पुत्र मूलुक (मूलु) का पुत्र था और वलमी सं० ६११ (वि० सं० १२८७) ाज्य कर रहा था, जैसा कि उसके घेलाणा के शिलालेख से निश्चित है। क के कई पुत्र थे, क्योंकि मांगरोल के लेख मे 'पुत्र' शब्द बहुवचन मे रखा है; तु नाम दो-मूलुक और सोमराज-के ही दिये है। ऐसी दशा मे सारंग के विषय नेश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।

खेड़के गोहिलो का राज्य राठौड़ सीहा ने नही; किन्तु उसके पुत्र आस्थान गोहिलों के मंत्री डाभी राजपूतो के विश्वासघात करने पर वि० सं० १३४० ० स० १२८३) के आसपास लिया था। उससे लगभग १५० वर्ष पूर्व ही सेजक पूर्वज (गोहिल) मारवाड छोड कर गुजरात मे चले गये थे और जो गोहिल ां (खेड मे) रहे, उनका राज्य आस्थान ने लिया था[1]। अब भी जोधपुर राज्य 'गोहिलो की ढाणी' नामका एक छोटा सा ठिकाना है, जहां गोहिल, मेवाड़ के जाओके वंशज माने जाते है[2]। अतएव काठियावाड आदि के गोहिलों का ाड के गुहिलवंशी राजाओ के वंशज और सूर्यवशीहोना सिद्ध है, जैसा कि ाठियावाड मे पहले माना जाता था।

वि० सं० की १५ वी शताब्दी के बने हुए 'मंडलीक काव्य' मे, जिसमे नागढ़ (गिरनार) क राजाओ का इतिहास है, काठियावाड के गोहिलो को सूर्य शी और झालो को चन्द्रवंशी लिखा है[3]। कर्नलटॉड[4] कर्नल वॉट्सन[5], दीवान बहा- ुर रणछोड़भाई उदयाराम[6] आदि विद्वानो ने भी उनको सूर्यवशी ही माना है।

---

१ एपिग्राफिया इण्डिका, जि० २० के परिशिष्ट मे प्रकाशित इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० १३२, लेख संख्या ९८२।

२ तवारीख जागीरदारान राज मारवाड, पृ० २५८।

३ रविविधूद्भवगोहिलझल्लकैर्व्यजनवानरभाजनधारव।
विविधवर्तनसंवितकारणैः ससमदै समदै समसेव्यत ॥

४ टॉड राजस्थान; जिल्द १, पृ० १२३, कलकत्ता संस्करण।

५ वॉटसन, बॉम्बे गेजेटियर; जि० ८; काठियावाड, पृ० २८२।

६ रासमाला (गुजराती अनुवाद); दूसरा संस्करण, पृ ७१० टिप्पण १।

ऊपर उद्धृत किये हुए प्रमाणों से स्पष्ट है कि काठियावाड़ आदि के गोहिल शक संवत् के प्रवर्त्तक आन्ध्र (सातवाहन) वंशी शालिवाहन के वंशज नहीं; किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी शालिवाहन के वंशज हैं और सूर्यवंशी है। भाटों ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण उनको चन्द्रवंशी बना दिया है।

सुधा (मासिक पत्रिका), लखनऊ,
वर्ष ६, ई०स० १९३२

---

६ एक परमार वंशीय दानपत्र

ई० स० १६३१ मे जब मैं रोहेडा (सिरोही राज्य) मे था, एक माली बड़े गुप्तरूप से एक ताम्रपत्र मेरे पास लाया; क्योंकि उसका ऐसा अनुमान था कि उसमे गड़े हुए धनका वर्णन है। उसे वापस करने के पूर्व मैंने उसकी छापें लेली और पीछे से मैंने उसका आशय राजपूताना म्यूजियम, अजमेर की ई० स० १६३१-३२ की वार्षिक रिपोर्ट मे प्रकाशित किया (पृष्ठ २-३)। इस ताम्रपत्र से आबू के परमार राजाओ की शृङ्खला पूर्ण होजाती है, अतएव इसे प्रकाशित करना मैं आवश्यक समझता हूं।

ताम्रपत्र की लंबाई ६ इंच और चौडाई ७॥ इ च है और यह एक ओर ही खुदा हुआ है। इसमे सब मिलकर १६ पंक्तियां है, जिनमे से अंतिम[१] की लेखन-शैली भिन्न है और उसका मूल लेख से कोई संबंध भी नही है। अक्षर गहरे खुदे है और उनकी औसत लम्बाई एक चौथाई इञ्च है। ताम्रपत्र के बीच के भाग मे बीचो बीच एक छिद्र है, जिससे प्रकट होता है कि यह ताम्रपत्र पहले दो पत्रो का था, जो एक कडी के द्वारा आपस मे जुड़े हुए थे। मूल ताम्रपत्र का असंपूर्ण होना दूसरे पत्रे के अस्तित्व का परिचय देता है, पर उसका पता नही चलता। पत्रे के किनारे कुछ मुड़े हुए है, जो संभवत. लेख को सुरक्षित रखने के लिए ऐसे बनाये गये हो। पत्रा अच्छी दशा मे है और अक्षर सर्वथा सुस्पष्ट है।

---

१ उन्नीसवीं पंक्ति इस प्रकार है —खा (खे) त्र वीयडा त्रिभाग। कुमार जब पिडा ४ माइ सत कपास श्र ।

लेख की भाषा संस्कृत और अक्षर नागरी है। अन्तिम अर्थात् अट्ठारहवीं पंक्ति को छोड़ कर ताम्रपत्र की शेषांश श्लोक बद्ध है। कहीं-कहीं लेखक दोष से कुछ अशुद्धियां रह गई है, जिनके शुद्ध रूप ताम्रपत्र के अक्षरांतर के नीचे टिप्पणों मे दिये गये हैं।

लेखन शैली के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

संपूर्ण लेख मे 'ब' के स्थान मे 'व' का प्रयोग हुआ है। 'रेफ' के नीचे का व्यंजन कहीं-कही द्वित्व किया गया है, यथा 'वैरिवर्ग (पं-७) और पुरर्णपाल (पं-८)। पृष्ठ मात्रा का जगह जगह उपयोग हुआ है, यथा जटा जूटे (पं० २) मालिकायते (पं० २), अर्बुदे (पं० ३), सुतो (पं० ४), कृष्णराज (पं० ५), महीपालो (प० ६), धराधीशो (पं० ७), मंडले (पं० ७), पुरर्णपालो (पं० ८), योगराजो (पं० ६), संभूतो (प० १०) इत्यादि। 'इ' का प्राचीन रूप ॰͜॰ भी एक जगह पाया जाता है जैसे इत्यभिधयां (पं० ३)।

वशिष्ट के अग्निकुण्ड से गाधेय (विश्वामित्र) का गर्व हरण करने वाला परमार नामक राजा हुआ। उसके वश मे उत्पलराज हुआ। उसका पुत्र राजा अरण्यराज, उसका पुत्र राजा कृष्णराज, उसका पुत्र राजा धरणीवराह, उसका पुत्र धूर्भट[1] उपनाम महीपाल हुआ। महीपाल के पुत्र धंधुक ने शत्रुओं को पराजित कर अपने मण्डल का राज्य किया। उसके तीन पुत्र पूर्णपाल, दन्तिवर्मा और कृष्णदेव हुए, जिन्होने क्रमशः राज्य किया। दन्तिवर्मा का पुत्र भोगराज और कृष्णदेव का राजा काकल हुआ। भोगराज का पुत्र रणकुशल रामदेव हुआ और काकलदेव का पुत्र विक्रमसिंह राजा हुआ। रामदेव का पुत्र राजा यशोधवल हुआ, जिसने मालवे के राजा बल्लाल को रण मे मारा। उसका पुत्र धारावर्ष, परमार वश का भूषण, राजाओ का अग्रणी, शास्त्र और शस्त्र आदि कलाओ मे निपुण, प्रजा का प्यारा, बड़ा प्रतापी, अर्बुदभूमि मण्डल का स्वामी हुआ। राजा विक्रमसिंह के पुत्र रणसिंहदेव ने मालवा के वीरो को पर्णा के तट पर परास्त किया और अन्तरा की जागीर प्राप्त की। उसने अपनी बुद्धि, भक्ति और पराक्रम से अपनी प्रजा को प्रसन्न किया। उसकी कृपा से

---

१ इस पत्र का धूर्भट और वि०स० १२८७ के आबू के शिलालेख का धुवभट एक ही व्यक्ति हैं।

धारावर्ष को अपना राज्य पीछा प्राप्त हुआ। उस (धारावर्ष) की राणी चौहान वंश के केल्हणदेव की पुत्री········ ···थी। (यहाँ ताम्रपत्र का अन्त होता है)।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है आबू के परमार राजाओं की वंशावली की पूर्ति करने में यह ताम्रपत्र बडा सहायक सिद्ध हुआ है। जिन दो दूसरे शिलालेखों मे इन परमार राजाओं की वंशावलियाँ मिलती हैं, उनमे से पहला वि०सं० १०६६[1] का बसन्तगढ़ का है और दूसरा वि०स० १२८८[2] का आबू का। बसन्तगढ़ के लेख मे उत्पलराज से लगाकर पूर्णपाल तक की वंशावली मिलती है। आबू का शिलालेख हमे इससे आगे ले चलता है और ध्रुवभट, धन्धुक आदि का नामोल्लेख करने के अनन्तर रामदेव से कृष्णराजदेव तक इन राजाओ की वंशावली देता है। इन दोनों शिलालेखों में मिलने वाली वंशावलियाँ निम्नानुसार हैं:—

बसन्तगढ़ के शिलालेख से

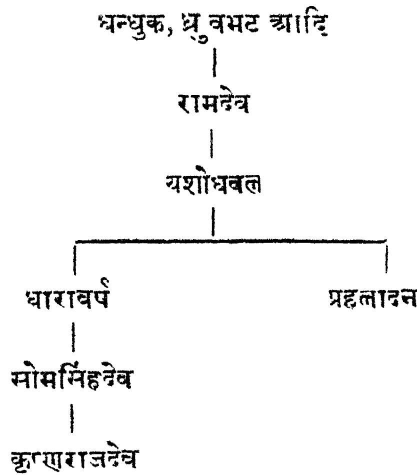
उत्पलराज
|
अरण्यराज
|
कृष्णराज
|
धरणीवराह
|
महीपाल
|
धन्धुक
|
पूर्णपाल

आबू के शिलालेख से

धूमराज
|

१ एपिग्राफिया इंडिका; जि० ६, पृष्ठ १२-५।

२ वही; जि० ८, पृ० १०८-१३।



यद्यपि आबू के शिलालेख मे हमे इन परमार राजाओ के आगे के कई नाम ज्ञात होते है, तथापि उससे यह पता नही चलता कि रामदेव का बसन्तगढ़ के लेख मे आये हुए अंतिम राजा पूर्णपाल से क्या सम्बन्ध था ? जान पड़ता है कि इस लेख मे बीच के राजाओ के कुछ नाम अज्ञानता वश अथवा जान बूझ कर छोड दिये गये है। हेमचन्द्र अपने "द्वयाश्रय महाकाव्य" मे लिखता है "जब गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने अजमेर के चौहान राजा आना पर चढ़ाई की उस समय आबू का राजा विक्रमसिंह उसके साथ था।[1]" जिनमडनोपाध्याय अपने "कुमारपालप्रबध" मे लिखता है-"युद्ध के समय विक्रमसिंह आना से जा मिला, जिससे कुमारपाल ने उसे कैद कर उसका आबू का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को देदिया[2]" इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि आबू के परमार राजाओ की शृङ्खला मे विक्रम नामका एक राजा हुआ था, परन्तु उसका नाम आबू के शिलालेख मे नही है। प्रस्तुत दानपत्र मे केवल उसका नाम ही नही, बल्कि कई दूसरे नाम भी मिलते है और इस प्रकार आबू के परमार राजाओ के धारावर्ष तक की वशावली पूर्ण हो जाती है। उससे पाया जाता है कि पूर्णपाल के दो और भाई

---

१ सर्ग १६, श्लोक ३३-४। २ पत्र ४०-४३ (वि० स०१९७१ का निर्णयसागर का सस्करण), श्री आत्मानद ग्रथ रत्नमाला सिरीज मे प्रकाशित, सख्या ३-४।

दन्तिवर्मा और कृष्णदेव थे, जो क्रमशः राजा हुए। दन्तिवर्मा के एक पुत्र योगराज था। उसको राज्य न मिलकर कृष्णदेव का राजा होना यही बतलाता है कि उस (योगराज) का राज्य उसके चाचाने हड़प लिया होगा। कृष्णदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र काकलदेव और काकलदेव का विक्रमसिंह हुआ। उसका पुत्र रणसिंह था, परन्तु उसे राज्य न प्राप्त हुआ। विक्रमसिंह के बाद उसका राज्य उसके भतीजे यशोधवल को मिला जो पूर्णपाल के भाई दतिवर्मा के पौत्र रामदेव का पुत्र था। यह कैसे और क्योहुआ, इसका निराकरण ऊपर दिये हुए जैन लेखकों के उद्धरणों से अच्छी तरह हो जाता है। वस्तुत सोलंकी कुमारपाल ने अजमेर पर दो चढाईयां की थी, परन्तु पिछले जैन लेखको ने दोनो को मिला दिया। पहली चढ़ाई वि० सं० १२०१ (ई०स० ११४४) के आस-पास हुई, जिसमे कुमारपाल की सफलता मे संदेह होता है, परन्तु वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) के आस-पास होने वाली दूसरी चढ़ाई मे वह विजयी हुआ[१]। विक्रमसिंह के समय पहली चढ़ाई हुई होगी, क्योकि अजाहारी गांव (सिरोहीराज्य) मे यशोधवल के समय का एक शिलालेख वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) का मिला है, जिसमे उसको महामडलेश्वर कहा है। इस चढाई के समय विक्रमसिंह शत्रु से मिल गया, जिससे उसे राज्य से हाथ धोना पड़ा।

प्रस्तुत दानपत्र मे लिखा है कि यशोधवल के उत्तराधिकारी धारावर्ष ने रणसिंह (विक्रमसिंह का पुत्र) की कृपा से अपना गया हुआ राज्य पाया, परन्तु उसका यह कथन माननीय नही कहा जा सकता। धारावर्ष का राज्य ५६ वर्ष तक रहा था; उसके समय का एक ताम्रपत्र और १४ शिलालेख वि० सं० १२२० से लगा कर १२७६[२] तक सिरोही राज्य मे मिल गये है। उनको देखते हुए तो यही

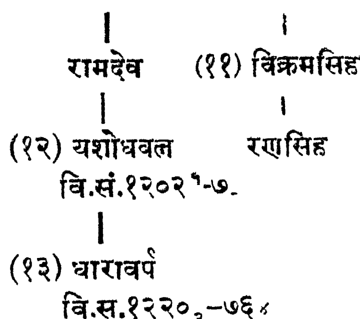
१ इंडियन एंटिक्वेरी, जि० ४१, पृष्ठ १६५–६। २ हाथला का वि० स० १२२० का दानपत्र। कायंद्रा का वि० स० १२२० का शिलालेख। पीडवाडा का विक्रम संवत् १२३३ का शिलालेख। झाडोली का वि० स० १२४२ का शिलालेख। मधुसूदन मदिर का वि० सं० १२४२ का शिलालेख। अजाहरी का वि० सं० १२४७ का शिलालेख। बामणवासी का वि० सं० १२४९ का शिलालेख। झाडोलीका वि०सं० १२५५ का शिलालेख। पींडवाड़ा का वि० स० १२५६ का शिलालेख। ओरिया का वि० स० १२६५ का शिलालेख। गेहेडा का वि० स० १२७१ का शिलालेख।

कहना पड़ता है कि धारावर्ष का राज्य बीच में कभी भी नहीं छूटा था। फिर यह कैसे संगत माना जा सकता है कि उसे रणसिंह की कृपा से, जो एक मामूली जागीरदार था, अपना गया हुआ राज्य पीछा प्राप्त हुआ। मेरी सम्मति से ताम्रपत्र का इस सम्बन्ध का कथन अतिशयोक्ति से पूर्ण है। सम्भवतः यह दानपत्र रणसिंह की आज्ञा से लिखा गया था, जिसकी प्रशंसा करना लेखक का ध्येय था। धारावर्ष की दो राणियां शृङ्गारदेवी और गीगादेवी[1] नाडोल के चौहान शासक केल्हणदेव की पुत्रियां थी, जिनमे से एक का उल्लेख इस दानपत्र मे है, पर उसका नाम नहीं दिया है, सम्भवत. दूसरे पत्रे मे रहा होगा।

इस दानपत्र के अनुसार आबू के परमारो का वश-वृत्त निश्चित ज्ञात सम्वतो के साथ नीचे दिया जाता है:—

१ उत्पलराज
२ अरण्यराज
३ कृष्णराज प्रथम (वि०स० १०२४)[2]
४ धरणी वराह
५ धूर्भट उपनाम महीपाल
६ धन्धुक
७ पूर्णपाल (८) दन्तिवर्मा (९) कृष्णदेव दूसरा
वि०स०१०९९[3] –११०२[4] | । वि.स.१११७[5]-२१[6]
योगराज (१०) काकलदेव

काटल का वि० सं० १२७४ का शिलालेख। मकावल का वि० स० १२७६ का शिलालेख। रोहेडा का बिना संवत् का शिलालेख और मेरा सिरोही राज्य का इतिहास, पृ०२२–७७।
(१) शान्तिनाथ (झाडोली) के मन्दिर का वि० मं० १२५५ का शिलालेख और झाड़ोली की बावड़ी का वि० सं० १२४२ का शिलालेख (मेरा सिरोही राज्य का इतिहास पृ० २४–२५)।
(२) राजपुताना म्यूजियम अजमेर की ई०स०१९३६-७ की वार्षिक रिपोर्ट पृ०२, स० २। सिरोही राज्य के अन्तर्गत घानाजी से प्राप्त अप्रकाशित शिलालेख। (३) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ९, पृष्ठ १२ (४) जर्नल ऑव दि बाम्बे ब्राच ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, जि० २३, पृ० ७८।
(५) बाम्बे गैजेटियर जि० १, खड १, पृ ४७२ स० ४। (६) वही, जिल्द १, खं० १, पृ० ४७३,



प्रस्तुत दानपत्र मे कई स्थानो का उल्लेख आया है। उनमे मे अर्बुद वर्तमान आबू और उसके आस-पास का प्रदेश तथा मालव वर्तमान मालवा है। पर्ला नदी और अन्य का परिचय ज्ञात नही होसका। अन्तरा सभवतः उस जागीर का नाम हो, जो रणसिंह को उसके पिता विक्रमसिंह के क़ैद किये जाने के बाद मिली होगी।

अन्त मे बल्लाल के विषय मे, जिसका नाम इस दानपत्र मे आया है, कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। दानपत्र मे उसे "मालव भूपाल" अर्थात् मालवा का राजा लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वह मालवा के परमारो का वंशधर रहा होगा। यद्यपि उसका नाम मालवा मे प्राप्त किसी दूसरे ताम्रपत्र में नहीं मिलता है, तो भी अन्यत्र कई स्थल पर उसका नामोल्लेख हुआ है। वि० सं० १२८७[5] के आबू के शिलालेख, सोमेश्वर विरचित "कीर्त्ति कौमुदी,[6] बालचंन्द्रसूरि रचित 'वसंत विलास' [7] और हेमचन्द्राचार्य के "द्वयाश्रय महाकाव्य"[8] मे उसका नाम मिलता है। वह गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल और आबू के परमार राजा यशोधवल का समकालीन था। यह माना जासकता है कि वह शक्तिशाली व्यक्ति रहा होगा। उसने यशोवर्मन की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त अपने पूर्वजो

सख्या ५।) (१) इ० एं० जि० ५६, पृ० १२। (२) ए० इ०, जिल्द ६, पृ० ४२२। (३) इं० एं०, जि० ५६, पृ० ५१। (४) प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव दि आर्किआलाजिकल सर्वे ऑव आर्च० इ० वे० सर्कल, ई० स० १६१६-१७, पृ० ६१। (५) ए० इ०, जि० ८ पृ० २११, श्लोक ३५। (६) सर्ग २, पृ० १३, श्लोक ४८ (काठवाड़े संस्करण बम्बई ई० स० १८८३)। (७) सर्ग ३, श्लोक २६ (गायकवाड ओरिएंटल सिरीज मे प्रकाशित सख्या ७, ई० स० १६१७)। (८) श्लोक १२५, पृ० ५५२ (बम्बई की संस्कृत और प्राकृत सिरीज मे प्रकाशित, स० ७६, सन् १६२१)।

का गया हुआ मालवा का राज्य हस्तगत करने का उद्योग किया होगा और वहाँ का कुछ भाग अपने अधिकार मे कर अपनी उपाधि "मालव भूपाल" अथवा "मालव पति" निर्धारित की होगी। पीछे से यशोधवल के हाथों, जो कुमारपाल का अधीनस्थ शासक होने के कारण उसकी सेना मे रहा होगा, मारा गया। यशोधवल का पहला लेख वि० सं० १२०२ का मिला है और उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी धारावर्ष का पहला लेख वि० सं० १२२० का है, अतएव बल्लाल की मृत्यु वि० सं० १२०२ और १२२० के बीच किसी समय हुई होगी।

श्रीयुत डी० सी० गांगुली ने बल्लाल को द्वारसमुद्र के होयसल वंश का बल्लाल माना है, जो निर्मूल कल्पना है[1]। द्वारसमुद्र के होयसल वंश में बल्लाल[2] नामके तीन राजा हुए, पर उनमे से एक भी कुमारपाल अथवा यशोधवल का समकालीन नहीं था।

बल्लाल किसी राजा का नाम था, अथवा उसकी उपाधि, इसका निर्णय नहीं हो सका।

ॐ ॥ [3]देवपायान् सव. श्रीमान् श्रृंगारी[4] गिरिजाप्रियः। य (२)स्य गंगा जटाजूटे मालतीमालिकायते ॥ १ श्रीमच्छ्रेष्टवशिष्ट कुंड (३) हुतभुक् जन्मा[5] बुंदे[6] यो भवत् भूपालः परमार इत्यभिधया गांगे[7]य (४) दपोपहः। तद्वंश्योत्पलराजभूपतिसुतो यारण्यराजो नृप स्तन्मूर्त रव (५) तीर्णवान् क्षितिपति. श्रीकृष्णराजो जयी ॥२ श्रीधरणीवराहोभूत्प्रभु (६) भूमेस्तदंगजः। श्रीधूर्भट महीपालौ[8] तत्सुनौ[9] दधुतुमही ॥३श्री धंधु[10]का (७) धरावीशा महीपाल तनूद्रय[11]। निः सार्व वैरिवग्ग[12] यश्चक्रे राज्य स्वमंडले[13] ॥४(८)तत्सुत. पूर्णपालो भूद्गानिवर्मा द्विर्नायकः।

---

(१) इ० ए०, जि० ५६, पृ० १६५। (२ बल्लाल नाम के किसी राजा के अस्तित्व का पता होल्कर राज्य के नीमाड जिले के ऊन गाव में पाये जाने वाले बल्लालेश्वर नामक मन्दिर से भी चलता है। इस मन्दिर का नामकरण इसके निर्माणकर्त्ता के नाम पर हुआ है। मन्दिर के बनवाने वालों के नाम पर मन्दिरों का नामकरण करने की प्रथा अब भी जारी है। (३) Indicated bv a symbol शुद्धपाठ (४) श्रृङ्गारी (५) हुतभुग्जन्मा (६) अबुंदे (७) गाधेय। ८. महीपालो। ६. सुतो। १० धंधुको। ११ तनुद्भव। (१२) ग(अपने पुराने रूप मे)। १३. मंडले।